

Barcode - 5990010121149
Title - Braj Bhasha Sur Khosh Part 1
Subject - Literture
Author - Dr. Prem Narayan Tandan
Language - hindi
Pages - 190
Publication Year - 1950
Creator - Fast DLI Downloader
<https://github.com/cancerian0684/dli-downloader>
Barcode EAN.UCC-13



ब्रजभाषा सूर-कोश

(प्रथम खंड)

निर्देशक

डॉ० दीनदयालु गुप्त, एम० ए०, एल०एल० बी०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिंदी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

संपादक

प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०
रिसर्च एवं मोदी स्कॉलर, लखनऊ विश्वविद्यालय



प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक—

लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण
संवत् २००७

शब्द-संख्या—४२१६

मूल्य

एक प्रति ३।
डाकव्यय सहित ३।।

मुद्रक

पृष्ठ १ से द्द तक—नवज्योति प्रेस, लखनऊ
शेषांश—नवभारत प्रेस, नादानमहल रोड, लखनऊ

‘व्रजभाषा सूर-कोश’ के दानदाता-



सेठ श्री गूजरमल मोदी, मोदीनगर

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ गूजरमल्ल मोदी, मोदी-नगर, ने ६०००) नकद और ६०००) का वचन देकर हिंदी-विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिंदी-अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग 'व्रजभाषा सूर-कोश' के निर्माण और प्रकाशन में किया जा रहा है। इसकी वृद्धि से प्रकाश के और कोश भी प्रकाशित होंगे जिनसे हिंदी-साहित्य का यह अंग समृद्ध होगा। सेठ श्री मोदी जी की अनुकरणीय उदारता के लिए हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त
अध्यक्ष हिंदी-विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

निवेदन

सन् १९४६ के अंतिम चतुर्थांश में 'सूर-कोश' के निर्माण का कार्य आरंभ हुआ था। चार वर्ष के निरंतर परिश्रम के उपरांत इस कोश का इतना भाग तैयार हो गया है कि उसका प्रकाशन किया जा सके। खंड-रूप में अब यह कोश प्रकाशित हो रहा है और ऐसा प्रबंध किया गया है कि प्रति तीसरे मास एक खंड पाठकों की सेवा में पहुँचता रहे। इस प्रकार लगभग दो वर्ष में ही यह संपूर्ण कोश प्रकाश में आ जाने की संभावना है।

आरंभ में विचार था कि केवल महाकवि सूरदास द्वारा प्रयुक्त शब्दों का ही कोश प्रस्तुत किया जाय। लगभग दो वर्ष तक इसी के अनुसार कार्य भी किया गया, परंतु बाद में अन्य प्रतिष्ठित कावियों के विशिष्ट ब्रजभाषा-प्रयोग भी इस उद्देश्य से इसमें सम्मिलित कर लिये गये कि इस प्रकार उस बृहत् ब्रजभाषा-कोश की विस्तृत रूप-रेखा तैयार हो जाय जिसका अभाव लगभग पिछली दो शताब्दियों से खटक रहा है और जिसके लिए अनेक प्रयत्न होने पर भी सफलता अभी तक किसी को नहीं मिली है। सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों के प्रयोग अपना लेने से एक लाभ यह भी सोचा गया कि कोश का व्यावहारिक मूल्य बहुत बढ़ जायगा और हिंदी-साहित्य के सभी प्रेमियों के लिए यह उपयोगी संदर्भ-ग्रंथ का काम देगा। महुँगी के इस युग में ४०) या ५०) के मूल्य का एकांगी उपयोगी ग्रंथ खरीदने में सबको असुविधा ही होगी, यह बात भी सामने थी। जायसी और तुलसी के आवश्यक अवधो-प्रयोग भी इसी उद्देश्य से इस कोश में दिये गये हैं। अंतर केवल इतना है कि सूरदास द्वारा प्रयुक्त शब्द के साथ, अर्थ की पुष्टि और स्पष्टता के लिए, अपेक्षित उद्धरण भी दिये गये हैं, पर अन्य कवियों के नहीं। इस प्रकार कोश का नाम भी सार्थक हो जाता है।

प्रस्तुत कोश में शब्दों के विभिन्न रूपों को प्रायः उसी रूप में दिया गया है जिसमें वे सूरदास तथा अन्य कवियों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं। ब्रजभाषा की प्रवृत्ति और उसके व्याकरण से जिनका परिचय नहीं है उन्हें एक शब्द के लिंग, वचन और काल के अनुसार परिवर्तित विभिन्न रूपों को पहचानने में कठिनाई होती है। दूसरी बात यह कि मूल शब्द, मुख्यतः क्रिया, के अनेक अर्थों में से किसमें उसके रूप-विशेष का प्रयोग किया गया है, यह जानना भी साधारण पाठक के लिए सरल नहीं होता। तीसरे, हिंदी के राष्ट्रभाषा-रूप में स्वीकृत हो जाने पर उसके साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन की रुचि जिस द्रुत गति से बढ़ रही है उसको उत्साहित करने में सहयोग देने के लिए भी एक शब्द के प्रायः सभी प्रचलित रूपों को कोश में सम्मिलित करना आवश्यक समझा गया है। इस प्रकार कई सौ शब्द इस कोश में ऐसे आये हैं जिनका समावेश हिंदी के अन्य प्रामाणिक कोशों में भी नहीं है।

ब्रजभाषा में जो शब्द अर्द्धतत्सम अथवा तद्भव रूप में प्रयुक्त हुए हैं उनके तत्सम रूप भी यथास्थान देने का प्रयत्न किया गया है। मूल तत्सम, अर्द्धतत्सम अथवा तद्भव शब्द के साथ उसके वे सभी अर्थ दिये गये

हैं जिनमे वह साहित्य मे प्रयुक्त हुआ है, परंतु लिग, वचन और काल के अनुसार उसके परिवर्तित रूप के साथ केवल वही अर्थ दिया गया है जिसमें उद्धृत अवतरण मे वह आया है। इससे विशेष अध्ययन करनेवालों के साथ-साथ सामान्य जानकारी प्राप्त करनेवालों को भी सुविधा होगी।

भाषा के रूप अथवा कवि-विशेष-सम्बन्धी कोश के लिए शब्दार्थ के साथ आवश्यक अवतरण देना स्पष्टता और रोचकता, दोनों की वृद्धि के लिए वाछनीय होता है। प्रस्तुत कोश मे भी अपेक्षित उदाहरण यथावसर दिये गये हैं। इनकी संख्या जहाँ एक से अधिक है वहाँ प्रयत्न यह किया गया है कि सभी अवतरण न एक ही स्कंध के हों और न एक ही प्रसंग के। विस्तार-भय से अधिक लंबे अंश या पूरे पद उदाहरण-रूप में कहीं नहीं दिये गये हैं; हाँ, यह प्रयत्न अवश्य रहा है कि संदर्भ की दृष्टि से ये पूर्ण हों। यत्र-तत्र आयी हुई अतिरिक्तार्थ भी प्रायः पूर्ण ही दी गयी हैं। आशा है, इनसे पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन भी होगा।

कोश का निर्माण-कार्य आरंभ करने के पूर्व से ही 'सूरसागर' के एक प्रामाणिक संस्करण का अभाव खटकता रहा है। सभा का जो संस्करण कई वर्ष पूर्व निकला था, वह तो अधूरा है ही, जो नया संस्करण इधर प्रकाशित हुआ है उसका पाठ भी बंबई, लखनऊ और कलकत्ते के संस्करणों से भिन्न है। इंडियन प्रेस तथा हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के संक्षिप्त संस्करणों और विभिन्न स्थानों से प्रकाशित स्फुट सकलनों के पाठों मे भी बहुत अंतर है। इन सबका पाठ मिलाने का प्रयत्न यद्यपि कहीं कहीं किया है, तथापि न यही प्रधान लक्ष्य था और न पाठ-शुद्धि ही। सभा की प्रति में जो पुराने पाठ छूटे हैं, कोश मे कहीं कहीं वे भी कोष्ठक में दे दिये गये हैं और उनके अर्थ भी देने का प्रयत्न किया गया है, यद्यपि संख्या इनके साथ नये पदों की ही दी गयी है। इससे अनुशीलन की दृष्टि से पाठ का मिलान करने में विशेष सुविधा होगी। लखनऊ, बंबई और कलकत्ते की पुरानी प्रतियों मे जो शब्द तत्सम रूप मे आये हैं, उनके सर्वमान्य ब्रजभाषा-रूप ही, सभा-संस्करण के ढंग पर, इस कोश मे दिये गये हैं। सूर-साहित्य का संपूर्ण संस्करण सामने न आने तक यही ढंग उपयोगी जान पड़ा है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा के प्रथम संस्करण में १४३२ पद हैं। इनके उद्धरण देते समय इसी क्रम-संख्या से काम चलाया गया है और शेष के लिए वेंकटेश्वर प्रेस के प्रथम संस्करण की पद-संख्या से। पदों की संख्या इस संस्करण मे भी सर्वत्र ठीक नहीं है; अतएव निश्चित संकेत के लिए कोश में कहीं-कहीं पृष्ठ-संख्या का भी उल्लेख करना पड़ा है। सभा-संस्करण के प्रथम स्कंध में ३४३ पद हैं। दो से नौ तथा ग्यारहवे स्कंधों की पद-संख्या इससे कम है; केवल दसवाँ स्कंध पहले से बहुत बड़ा है। इसलिए ३४३ पदों तक तो दसवें स्कंध की १०वीं संख्या उद्धरणों में दी गयी है, उसके बाद नहीं। उद्धृत अवतरणों के पद-संकेत देखते समय पाठक इसका ध्यान रखने की कृपा करे।

शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए अन्य कोशों से अधिक सहायता 'हिंदी शब्द-सागर' से ली गयी है। इस वृहत् संदर्भ-ग्रंथ मे कुछ भूले भले ही रह गयी हो, तथापि इसमें संदेह नहीं कि हिंदी-कोश-संबंधी कोई भी कार्य इसकी सहायता लिये बिना पूर्ण नहीं हो सकता। प्रस्तुत कोश में जो मूल शब्द हैं उनके साथ तो संस्कृत, पाली, प्राकृत,

अपभ्रंश और पुरानी हिंदी के प्राप्त प्राचीन रूप देने का प्रयत्न किया गया है जिससे उनके विकास का क्रम जानने में सरलता हो, परंतु परिवर्तित रूपों के साथ व्युत्पत्ति बताने के लिए केवल मूल शब्द का उल्लेख है। इससे अनेक स्थलों पर अनावश्यक विस्तार से छुटकारा मिल गया है। शब्द-विशेष का अर्थ 'अन्यत्र' देखने का उल्लेख इस कोश में कहीं नहीं है। इससे उस असुविधा-जन्य भुँभलाहट से मुक्ति मिल जायगी जो कोश के एक भाग में प्रयुक्त शब्द का अर्थ दूसरे या तीसरे में देखने पर अथवा कभी-कभी वहाँ भी ऐसा ही उल्लेख पाकर होती है।

कोश के समाप्त हो जाने पर परिशिष्ट रूप में एक खंड और जोड़ा जायगा। इसमें सूर-साहित्य के समस्त छूटे हुए शब्द और अर्थ दिये जायेंगे। यद्यपि इस कोश का निर्माण करते समय प्रयत्न सर्वत्र यह रहा है कि कम से कम सूर-साहित्य का कोई शब्द या शब्द-रूप छूटने न पाये, तथापि प्रामाणिक पाठ के अभाव में अथवा कहीं-कहीं संगत अर्थ न बैठने के कारण कुछ शब्द रोकने पड़े हैं। इतने बड़े कोश के शब्दों की कुछ स्लिपें भी, संभव है, इधर-उधर हो गयी हों, जिससे कुछ शब्द इसमें सम्मिलित होने से कदाचित् छूट गये हों। इसके लिए अपने साहित्य-प्रेमी विद्वानों और पाठकों से हमारा नम्र निवेदन है कि ऐसे जिन शब्दों का उन्हें पता लगे, अथवा जिन शब्दों की उन्हें इस कोश में मिलने की आशा हो, पर मिले नहीं, उनकी सूचना समय-समय पर देते रहने की कृपा करें। उनके इस अमूल्य सहयोग से कोश का नया संस्करण पूर्ण करने में विशेष सहायता मिलेगी।

अंत में हम विभिन्न कोशों और व्रजभाषा—विशेषतया सूर-साहित्य—के स्फुट संकलनों के उन संपादकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिनके ग्रंथों का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग इस कोश के निर्माण में किया गया है।

दीनदयालु गुप्त
प्रेमनारायण टंडन



संकेत-सूची

अ. = अरबी भाषा
 अनु. = अनुकरण शब्द
 अप. = अपभ्रंश
 अर्द्धमा. = अर्द्धमागधी
 अल्पा. = अल्पार्थक प्रयोग
 अव्य. = अव्यय
 उ. = उदाहरण
 उप. = उपसर्ग
 उभ. = उभयलिङ्ग
 क्रि. = क्रिया
 क्रि. अ. = क्रिया, अकर्मक
 क्रि. प्र. = क्रिया प्रयोग
 क्रि. वि. = क्रिया विशेषण
 क्रि. स. = क्रिया, सकर्मक
 गुज. = गुजराती भाषा
 तु. = तुरकी भाषा
 देश. = देशज
 पं. = पंजाबी भाषा
 पर्या. = पर्याय
 पा. = पाली भाषा
 पु. = पुलिङ्ग
 पु. हि = पुरानी हिंदी
 पू. हि = पूर्वी हिंदी

प्रत्य. = प्रत्यय
 प्रा. = प्राकृत भाषा
 प्रे. = प्रेरणार्थक क्रिया
 फा. = फ़ारसी भाषा
 बंग. = बंगला भाषा
 बहु. = बहुवचन
 बुं. खं. = बुंदेलखंडी बोली
 भाव. = भाववाचक
 मुहा. = मुहावरा
 यू. = यूनानी भाषा
 यौ. = यौगिक या एक से अधिक शब्दों के पद
 वा. = वाक्य
 वि. = विशेषण
 सं. = संस्कृत
 संयो. = संयोजक अव्यय
 संयो. क्रि. = संयोजक क्रिया
 स. = सकर्मक
 सर्व. = सर्वनाम
 सवि. = सविभक्ति
 सा. = साहित्यलहरी
 सारा. = सूरसारायली
 सा.उ. = साहित्यलहरी उत्तरार्द्ध
 स्त्रि. = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
 स्त्री. = स्त्रीलिङ्ग
 हि. = हिंदी भाषा

विशेष—(१) उद्धरणों के साथ जहाँ ३४३ से अधिक पद-संख्या है, वहाँ दसवाँ स्कंध समाप्त है।

(२) जिन उद्धरणों के साथ पद-संख्या नहीं है वे कवि के पदों के विभिन्न संकलनों से दिये गये हैं।



व्रजभाषा सूर-कोश

प्रथम खंड

अ

अ—देवनागरी वर्णमाला का प्रथम अक्षर । कंठ्य वर्ण ।
मूल व्यंजनों का स्वतंत्र उच्चारण इस अक्षर की सहा-
यता से होता है ।

निषेधात्मक उपसर्ग; जैसे—प्ररूप, असुंदर ।

अंक—संज्ञा पु [स०] (१) चिह्न, छाप । (२) लेख,
अक्षर, लिखावट । उ०—प्रद्भुत राम-नाम के अंक—
१-६० (३) लेखा, लेखन । उ०—जोग जुगुति, जप-
तप, तीरथ-व्रत इनमें एकौ अंक न भाल—१-१२७ ।
(४) गोद, अंकवार, क्रोड़ ।

मुहा.—अंक भरि लीन्हो, लीन्हो अंक भरी—
हृदय से लगा लिया, गोद में ले लिया । उ०—(क)
पुत्र-कबन्ध अंक भरि लीन्हो धरति न इक छिन धीर
—१-२६ । (ख) धन्य-धन्य बडभागिनि जसुमति
निगमनि सही परी । ऐसे सूरदास के प्रभु कौ लीन्हो
अंक भरी—१०-६६ । अंक भरि लेत—छाती से
लगा लेते हैं, गोद में लेते हैं । उ०—छिरकत हरद
दही हिय हरषत, गिरत अंक भरि लेत उठाई—१०-
१६ । अंक भरै—गोद में लेती है, दुलार करती है ।

उ०—जैसे जननि जठर-अन्तरगत सुत अपराध करै ।
तौऊ जतन करै अरु पोषै निकसै अंक भरै—१-११७ ।

(५) बार, मर्तबा । (६) संख्या का चिह्न ।

अंकम—संज्ञा पु० [स० अंक] गोद, अंकवार, क्रोड़ ।
उ०—आनंदित ग्वाल-बाल, करत बिनोद ख्याल,
भरि-भरि धरि अंकम महर के—१०-३० ।

मुहा.—अंकम भरि—छाती से लगाकर । उ०—

हँसि हँसि दोरे मिले अंकम भरि हम-तुम एकै ज्ञाति—
१०-३६ । अंकम भर्यौ—[भूत.] (स्नेहवश) छाती से
लगाया, गले लगाया । उ०—(क) माता ध्रुव कौ
अंकम भर्यौ—४-६ । (ख) कबहुँक मुरछित ह्वै नृप
पर्यौ । कबहुँक सुत कौ अंकम भर्यौ—६-५ । अंकम
भरि लेइ—अपने में लीन करती है । उ०—पत दरस
कबहुँ जौ होइ । जग सुख मिथ्या जानै सोइ । पै
कुबुद्धि ठहरान न देइ । राजा को अंकम भरि लेइ—
४-१२ । अंकम लैहै—[भवि०] गोद में लेगा । उ०—
अब उहि मेरे कुँअर कान्ह को छिन-छिन अंकम लैहै-
२७०५ ।

अंकमाल, अंकमाल—संज्ञा पु० [स. अंक] आलिंगन,
परिरभण, गोद, गले लगाना । उ०—सूर स्याम बन
ते ब्रज आए जननि लिए अंकमाल—२३७१ ।

मुहा.—दै अंकमाल—आलिंगन करके, गले लगाकर,
गोद लेकर । उ०—जुवति अति भई बिहाल, भुज
भरि दै अंकमाल, सूरदास प्रभु कृपाल, डार्यो तन
फेरी—१०-२७५ ।

अंकवार—संज्ञा पु० [सं० अंकपालि, अंकमाल] गोद,
छाती ।

मुहा.—अंकवार भरत—आलिंगन करते हैं, गले या
छाती से लगाते हैं । उ०—(सखा) बनमाला पहिरा-
वत स्यामहि, बार-बार अंकवार भरत धरि—४२६ ।

अंकवारि—संज्ञा स्त्री० [हि० अंकवार] गोद, छाती ।

मुहा.—भरि धरौ अंकवारि—छाती से लगा लूँ,
आलिंगन कर लूँ । उ०—कोउ कहति, मैं देखि

पाऊँ, भरि धरौँ अँकवारि—१०-२७३ । भरि दीन्ही (लीन्ही) अँकवारि—छाती से लगा लिया ।
उ०—(क) भूठेहि मोहिं लगावति ग्वारि । खेलत ते मोहिं बोलि लियौ इहि, दोउ भुज भरि दीन्ही अँकवारि—१०-३०४ । (व) बाहँ पकरि चोली गहि फारी भरि लीन्ही अँकवारि—१०-३०६ । (ग) सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हो तब जननी भरि लग अँकवारि—४३० ।

(२) आलिंगन । उ०—नैन मूँदति दरस कारन सवन सब्द बिचारि । भुजा जोरति अक भरि हरि ध्यान उर अँकवारि—७८१ ।

अंकित—वि [स अक] (१) चिह्नित । उ०—कनक कलस मधुपान मनौ कर भुज निज उलटि धसी । ता पर सु दरि अचर भाँप्यो अकित दस तसी—सा. उ. २५ ।
(०) लिखित, खिचित । (३) वर्णित ।

अंकुर, अँकुर—सज्ञा पु [स.] अँखुआ, गाभ । उ—(क) ग्वालनि देखि मनहिं रिस काँपै । पुनि मन मै भय अंकुर थापै—५८५ । (ख) अदभुत रामनाम के अक । धर्म अंकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-बधू ताटक—१-६०

अँकुरनो, अँकुरानो—क्रि अ [स अकुर] अँकुर फोड़ना, उगना, उत्पन्न होना ।

अँकुरित—वि [स० अकुर] (१) अँखुवाया हुआ, जिसमें अँकुर हो गया हो । (२) उत्पन्न हुए, उगे, प्रकटे । उ—(क) अकुरित तरु-पात, उकठि रहे जे गात, बन-बेली प्रफुलित कलनि कहर के—१०-३० । (ख) फूले फिरै जादौकुल आनँद समूल मूल, अकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के—१०-३४ ।

अंकुस—सज्ञा पु [सं अकुश] (१) हाथी को हँकने का टेढ़ा काँटा, अंकुश । उ०—न्यारो करि गयंद नू अजहूँ, जान देहि का अकुस मारी—२५८६ । (२) प्रतिबन्ध, दबाव, रोक । उ—मन बस होत नाहिंनै मेरै । ... । कहा कहौ, यह चरचौ बहुत दिन, अकुस बिना मुकरै—१-२०६ । (३) ईश्वर के अवतार राम, कृष्ण, आदि के चरणों का एक चिह्न जो अंकुश के आकार का माना जाता है । उ—ब्रज जुवती हरि चरन मनावै । ... । अकुस-कुलिस-बज्र-ध्वज परगट तरुनी-मन भरमाए—६३१ ।

अँकुर—सज्ञा पु [स अकुर] अँखुआ, अँकुर ।

अँकोर—सज्ञा पु [हि. अँकवार] अंक, गोद, छाती ।
उ (क) खेलत कहूँ रहौ मै बाहिर, चितै रहहि सब मेरी ओर । बोलि लेहि भीतर घर अपने, मुख चूमति, भरि लेति अँकोर—३६८ । (ख) भूठे नर काँ लेहि अँकोर । लावहि साँचे नर को खोर—१२-३ ।
(२) भेंट, घूस, रिश्वत, उत्कोच । उ—(क) सूरदास प्रभु के जो मिलन को कुच श्री फल सो करति अँकोर । (ख) गए छँडाय तोरि सब बन्धन दै गए हँसनि अँकोर—३१५३ ।

अँकोरी—सज्ञा स्त्री. [हि अकोर (अल्प प्र.) + ई] (१) गोद । (२) आलिंगन ।

अँकोरे—सज्ञा पु. सवि [हि. अँकवार, अँकोर] अंक, गोद, छाती । उ.—तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दोरे । फूँकति बदन रोहिनी ठाढी, लिए लगाए अँकोरे—१०-२२४ ।

अंकित—वि० [स० अकित] चिह्नित, अंकित । उ०—तापर सुन्दर अचर भाँप्यो अकित दस तसी—२३०३ ।

अँखड़ी—सज्ञा स्त्री० [प० अँख + हि० डी] (१) आँख । (२) चितवन ।

अँखियन—सज्ञा पु० बहु० [हि० आँख] आँखों (में)
उ०—कीनी प्रीति प्रगट मिलिबे की अँखियन सम गनाए—८३२ ।

अँखियाँ—सज्ञा स्त्री० बहु० [हि० आँख] आँखें, नेत्र ।
उ०—अँखियाँ हरि दरसन की भूखी—३०२६ ।

अँखियानि—सज्ञा स्त्री० [हि० आँख] नयनों के (को)
उ०—अपने ही अँखियानि दोष तै रबिहिं उलूक न मानत—१-२०१ ।

अंग, अँग—सज्ञा पु० [सं०] (१) शरीर, तन, गात्र ।
उ० (क) आमिष, रुधिर, अस्थि अँग जोलो तौलों कोमल चाम—१-७६ । (ख) प्रकृति जो जाके अंग परी । स्वान पूछ को कौटिक लागे सूधी कहूँ न करी—३०१० । (२) अवयव, शरीर के भाग ।
उ०—(क) गर्भवास अति त्रास मै (रे) जहाँ न एकौ अंग—१-३२५ । (ख) अंग-अंग-प्रति-छबि - तरंग-गति 'सूरदास' क्यौ कहि आवै—१-६६ । (ग) सकल भूषन मनिनि के बने

सकल अंग, बसन बर अरुन सुन्दर सुहायो—८-८।
(३) भेद, प्रकार, भाँति उ०—दधिसुत-धर-रिपु सहे
सिलीमुख सुष सब अंग नसायो—सा० ४६। (४)
सहायक, स्वपक्ष का। (५) गोद।

मुहा०—अंग छुअत हौं—शपथ खाता हूँ। उ०—
सूर हृदय ते टरत न गोकुल अंग छवत ही तेरो—१०-
उ०-१२४। अंग करै—अपना ले, अंगीकार कर ले।
उ०—जाको मनमोहन अंग करै। ताको केस खसै
नहि सिरतै जो जग बैर परै—१-३७। अंग भरै—
गोद में लेती है। उ०—मुख के रेनु भारि अचल सौ
जसुमति अंग भरै—२८०३।

अंगज—वि० [स० अंग + ज=उत्पन्न] शरीर से उत्पन्न।
सज्ञा पु०—(१) पुत्रा(२)बाल,रोम। (३)
कामदेव।

अंगजा,अंगजाई—सज्ञा स्त्री० [म०] कन्या, पुत्री।
अंगद—सज्ञा पु० [स०] (१) किष्किंधा के राजा
बालि का पुत्र जो श्रीराम की सेना में था। (२)
बाहु में पहनने का एक गहना, बाजूबंद। उ०—उर
पर पदिक कुसुम बनमाला, अंगद खरे बिराजै।
चित्रित बाँह पहुँचिया पहुँचै, हाथ मुरलिया छाजै—
४५१।

अंगदान—सज्ञा पु० [सं०] (१) युद्ध से भागना,
पीठ दिखाना। (२) तन-समर्पण, सुरति। (३)
पीठ, पीढ़ा, आसन। उ०—अंगदान बल को दै बैठी।
मदिर आजु आपने राधा अतर प्रेम उमेठी—सा०
१००।

अंगन—सज्ञा पुं [स० अंगण, हिं० आँगन] आँगन,
सहन, चौक। उ०—(क) विरह भयौ घर अंगन
कोने। दिन दिन बाढत जात सखी री ज्यौ कुरखेत
के डारे सोने—२८६६। (ख) एक कहत अंगन
दधि माड्यौ—१०५१।

सज्ञा पु० बहु० [स० अंग] शरीर के अंग,
इंद्रियाँ। उ०—जब ब्रजचंद चंद-मुख लषिहै। तब यह
बान मान की तेरी अंगन आपु न रषिहै—सा० ६७।

अँगना—सज्ञा पुं [हिं० आँगन] आँगन, सहन,
चौक। उ०—ललिता बिसाषा अँगना लिपावो
चौक पुरावो तुम रोरी—२३६५।

अँगना—सज्ञा स्त्री० [स०] अच्छे अँगवाली स्त्री,
कामिनी।

अँगनाइ,अँगनाई—सज्ञा स्त्री० [हिं पुं० आँगन]
आँगन,चौक, अजिर। उ०—(माई) बिहरत गोपाल
राइ मनिमन रचे अँगनाइ लरकत पररिगनाइ,
घुटरुनि डोलै—१०-१०१।

अंगभंग—सज्ञा पु० [म०] अंग का भंगया खंडितहोना।
वि०—अपाहिज, लूला, लुंज।

अंगभंगी—सज्ञा स्त्री० [स] (१) मोहित करने की
स्त्रियों की क्रिया। अंगों को मोड़ना, मरोड़ना। (२)
आकृति

अंगराग—सज्ञा पु० [सं.] (१) शरीर में लगाने का
सुगंधित लेप। (२) वस्त्राभूषण। (३) महावर
आदि स्त्रियों के लेप।

अँगवना—क्रि स [स अंग] (१) अंगीकार करना।
(२) सहना।

अँगवान्यो—क्रि. स. [सं. अंग] अंग में लगाया, शरीर
में मला। उ०—चंदन और अरगजां आन्यो। अपने
कर बल के अँगवान्यो—२३२१।

अंगहीन—वि [सं अंग + हीन=रहित] खंडित अंग
का, लंगड़ा-लूला।

सज्ञा पु०—कामदेव

अंगा—वि० [स अंग] अंगोंवाली। उ०—मनौ गिरिवर
तै आवति गगा। राजति अति रमनीक राधिका यहि
बिधि अधिक अनूपम अगा - १०-१६०५।

सज्ञा पु०—(१) अंगरखा, चपकन। (२) अंग।
उ० नखसिख लौं मीन जाल जड्यो अंग-अगा-६-६७।
(३) मोटी रोटी या रोट (अंगाकरी) बड़ी जीटी।

अंगार, अंगार—सज्ञा पु [स] (१) दहकता हुआ
कोयला। उ०—पद-नख-चन्द-चकोर बिमुख मन, खात
अंगार मई-१-२६६। (२) चिनगारी। उ०—(क)
उचटत भरि अंगार गगन लौ, सूर निरखि ब्रज-जन
बेहाल—५६४। (ख) अति अगिनि-भार, भंभार
धुधार करि, उचटि अंगार भभार छायाँ—५६६।

अँगिया—सज्ञा स्त्री. [स. अगिका, प्रा. अँगिया] चोली,
अधपेटी।

अँगिरा, अंगिरा—सज्ञा पु [सं अंगिरस] एक प्राचीन

ऋषि जिनकी गणना दस प्रजापतियों में है और जो अथर्ववेद के कर्त्ता माने जाते हैं। इनके पिता का नाम उरु और माता का आग्नेयी था। इनकी चार स्त्रियाँ थीं—स्मृति, स्वधा, सती और श्रद्धा। इनकी कन्या का नाम ऋचस् और पुत्र का मनस् था।

अंगीकार—सज्ञा पु [स] स्वीकार, ग्रहण।

अँगूठा—सज्ञा पु [स अगुष्ठ, प्रा अगुठु, हि अँगूठा] अँगूठा। उ - कग गहे चरन अँगूठा चचोरे-१०-६२।

अंगुर—सज्ञा पु [म. अगुल] (१) एक नाप जो अग्न जौ के पेट की लंबाई के बराबर होती है। उ०—अगुरि द्वे घटि होति सबनि सौ पुनि पुनि और मँगायौ—१०-३४२। (२) एक अँगुली की मोसई भर की नाप।

अंगुरिनि—सज्ञा स्त्री० बहु० [स० अँगुरी, हि० उँगली] उँगलियों में। उ—प्रग अभुषन अँगुरिनि गोल—१०-६४।

अँगुरियनि—सज्ञा स्त्री, बहु. सवि. [हि. उँगली] उँगलियों से। उ.—दुहत अँगुरियनि भाव बतायौ—६६७।

अँगुरिया—सज्ञा स्त्री [स अँगुरी-अल्प.] छोटी उँगली उ०—गहे अँगुरिया ललन की, नँद चलन सिखावत—१०-१२२।

अँगुरी—सज्ञा स्त्री. [स अँगुरी] उँगली। उ.—चौथ मास कर-अँगुरी सोइ—३-१३।

अँगुरीनि—सज्ञा स्त्री० बहु० [स० अँगुली] उँगली, उँगलियों (को) (से)।

मुहा०—अँगुरीनि दत दै रह्यौ—चकित हुआ, अचंभे में आ गया। उ०—रे तो जे हरे है, ते तौ सोवत परेहै, ये करे हे कौनै आन, अँगुरीनि दत दै रह्यौ—१०-४८४।

अँगुसा—सज्ञा पु० [स० अकुश=टेढी नोक] अंकुर, अखुआ, गाभ। (२) अँगुसी।

अँगूठी—सज्ञा स्त्री० [हि० अँगूठा+ई] उँगली में पहनने का छरन्ना, मुँदरी, मुद्रिका।

अंगूर—सज्ञा पु० [स० अकुर] अंकुर, (१) अखुआ। (२) एक फल जिसको सुखा कर किशमिश या दाख बनती है।

अँगोजना—क्रि० स० [स० अग=गरीर+एज=हिलना, कँपना] (१) सहन करना। (२) स्वीकार करना, अपनाना।

अँगोरना—क्रि० सं० [स० अग+ईर=जाना] (१) अंगीकार करना। (२) सहना।

अँगोछि—क्रि० अ० [हि० अँगोछना] अँगोछे या कपड़े से पोछ कर। उ०—उत्तम बिधि सौ मुख पखरायौ ओदे बसन अँगोछि—१०-६०६।

अँगोछे—क्रि० अ० [हि० अँगोछना] गीले कपड़े से पोछ दिये। उ०—प्रति सरस बसन तन पोछ। लै कर-मुख-कमल अँगोछे—१०-१८३।

सज्ञा पु बहु०—अनेक अँगोछे या देह पोछने के कपड़े।

अँचयो, अँचयौ—क्रि० स० भूत० [स० आचमन, हि० अचवना] पिया, पान किया। उ०—(क) कछु कछु खाइ दूध अँचयौ तब जम्हात जननी जाने—१०-२३०। (ख) ग्वाल सखा सबही पय अँचयौ—३६६।

(२) भोजन के पश्चात हाथ-मुँह धोकर कुल्ली की।

अँचर—सज्ञा पु० [स० अचन] अचल, अँचल, साड़ी का छोर, पल्ला। उ०—निकट बुलाइ बिठाइ निरखि मुख, अचर लेत बलाइ—६-८३।

अँचरा—सज्ञा पु० [स० अचल] अँचल, पल्ला। उ०—(क) जसुमति मन अभिलाष करे। कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौ भगरै—१०-७६। (ख) अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौ दूध पिलावति—१०-११०।

अँचल, अँचल—सज्ञा पु० [स०] (१) साड़ी का छोर, अँचल, पल्ला। उ०—(क) इतनी कहत, सुकाग उहाँ ते हरी डार उड़ि बैठ्यौ। अँचल गाँठि दई, दुख भाज्यौ, सुख जु आनि उर पैठ्यौ—६-१६४। (ख) तेजु बदन भाँप्यौ भुकि अँचल इहै न दुष मेरे मन मान—सा० उ० १५। (२) दुपट्टा, दुशाखा। उ०—लोचन सजल, प्रेम पुलकित तन, गर अँचल, कर-माल—१-१८६।

मुहा०—(लियौ) अचल—अँचल ढाल कर थोड़ा मुँह ढक लिया। उ०—रुद्र कौ देखि के मोहिनी लाज करि, लियो अचल, रुद्र तब अधिक मोह्यौ—८-१०। अचल जोरे—दीनता दिखाकर। उ०—

अचल जोरे करत बीनती, मिलिबे को सब दासी—
३४२२*। अचल दे—अँचल की ओट करके, घूँघट
काढ़ कर। उ०—गीताम्बर वह सिर तें ओढत अचल
दै मुसुकात—१०-३३८।

अँचवत—क्रि० स० [हि० अचवना] पीते (हुए) पान
करते (ही)। उ०—अँचवत पय तातौ जब लाग्यो,
रोवत जीभ डढै—१०-१७४।

अँचवति—क्रि० स० स्त्री. [हि० अचवना] आचमन
करती है, पीती है। उ०—माधौ, नैकु हटकौ गाइ।
.....अष्टदस घट नीर अँचवति, तृषा तउ न
बुझाति—१-५६।

अँचवन—सज्ञा पु [हि० अचवना] भोजन के पीछे
हाथ-मुँह धोना, कुल्ली करना, और आचमन का
जल या आचमन किया हुआ जल। उ०—अँचवन
ले तब धोए कर-मुख—३६६। (ख) सूरस्याम
अब कहत अघाने, अँचवन माँगत पानी—४४२।

अँचवौ—क्रि० स० [हि० अँचवना, अचवना] आचमन
करूँगा, पान करूँगा, पिऊँगा। उ०—आजु अजोध्या
जल नहि अँचवौ, मुख नहि देखौ माई—६-४७।

अँचै—क्रि० स० [हि० अचवना] आचमन करके,
पीकर। उ०—(क) सुत-दारा कौ मोह अँचै बिष,
हरि-अमृत-फल डार्यौ—३६६। (ख) दवानल
अँचै ब्रजजन बचायौ—५६७।

अँजत—क्रि० स० [हि० अँजना, अँजना] अंजन या
सुरमा लगाता है। उ०—प्यारी नैननि को अंजन
लै अपने लोचन अंजत है—पृ० ३११।

अँजन—सज्ञा पु० [स०] (१) सुरमा, काजल।
उ०—अंजन आड तिलक आभूषन सचि आयुध बड
छोट—सा० उ० १६। (२) रात। उ०—उदित
अंजन पै अनोषी देव अग्नि जराय—सा. ३२।
(३) स्याही।

वि०—काला, सुरमई। उ०—रवि-ससि-ज्योति
जगत परिपूरन, हरति तिमिर रजनी। उडत फूल
उडगन नभ अतर, अंजन घटा घनी—२-२८।

अंजनि—सज्ञा स्त्री. [स. अंजनी] हनुमान की माता
अंजना जो कुंजर नामक बानर की पुत्री और केशरी
की स्त्री थी।

अंजल—सज्ञा पु. [सं. अन्न+जल] अन्नजल।

अंजलि, अंजली—सज्ञा स्त्री. [म.] (१) दोनों
हथेलियों को मिलाकर बनाया गया संपुट, अंजुली।
(२) अंजुली में भरा हुआ जल आदि द्रव अथवा
अन्य वस्तु। उ०—प्यारी स्याम अंजली डारै। वा
छवि कौ चित लाइ निहारै। मनो जलद-जल डारत
डारै—१८४४।

अँजवाना—क्रि. स. [स. अंजन] अंजन या सुरमा
लगावाना।

अँजाइ—क्रि. स. [हि. अंजन, अँजाना] अंजन, सुरमा
या काजल लगवाकर। उ०—दोऊ अलबेले बन जु
आए आँखि अँजाइ—२४४२।

अँजाय—क्रि. स. [हि. अंजन,] काजल या सुरमा
लगवाकर। उ०—आपुन हँसत पीत-पट मुख दै आए
हो आँखि अँजाय—२४४६ (३)।

अंजुरी—सज्ञा स्त्री. [सं. अँजली] दोनों हथेलियों को
मिलाकर बनाया हुआ संपुट।

सुहा.—अंजुरी को पानी—शीघ्र ही चू जाने या
समाप्त होनेवाली वस्तु। उ०—जोवन रूप दिवस दस
ही को ज्यो अंजुरी को पानी—२०४४।

अंजुलि—सज्ञा स्त्री. [सं. अंजली] हथेलियों को मिलाने
से बना हुआ संपुट। उ०—सिर पर मीच, नीच नहि
चितवत, आयु धटति ज्यौ अंजुलि पानी—१-१४६।

अँजोर—सज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल, हि. उजाला, उजेरा]
उजाला, प्रकाश, चाँदनी।

अँजोरना—क्रि. स. [हि. अँजुरी] छीनना, हरना,
लेना, मूसना।

क्रि. स. [सं. उज्ज्वल] जलाना, प्रकाशित
करना।

अँजोरा—सज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल] प्रकाश।

अँजोरि—क्रि. स. [हि. अँजुरी, अँजोरना] छीनकर,
हरण करके, मूसकर। उ०—(क) सूरदास ठगि रही
ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि—१०-२७०।
(ख) मारग तौ कोउ चलन न पावत, धावत गोरस
लेत अँजोरि—१०-३२७। (ग) सूर स्याम चितवत
गए मो तन, तन मन लियौ अँजोरि—६७०।

अँजोरी—संज्ञा स्त्री. [हि. अँजोर+ई] (१) प्रकाश, चमक । (२) चाँदनी ।

वि. स्त्री.—उजेली, प्रकाशमयी, उज्ज्वल ।

अँटकाए—क्रि. स. [हि. अटकाना] फँसाए या उलझाए (हुए) । उ.—मनि आभरन डार डारनि प्रति, देखत छबि मनही अँटकाए—७८४ ।

अँटकावत—क्रि. स. [हि. अटकाना] रुकता है, बाधक होता है । उ.—भीतर तै बाहर लो आवत । घर-आँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत—१०-१२५ ।

अँटक्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि. अटकना] फँस गया, उलझा, लगा रहा । उ.—सूर सनेह ग्वालि मन अँटक्यौ अतर प्रीति जाति नहि तोरी—१०-३०५ । (ख) पद-रिपु पट अँटक्यौ न सम्हारति, उलट-पलट उबरी—६५६ ।

अँटना—क्रि. अ. [सं. अट्=चलना] (१) समा जाना । (२) पूरा होना, खप जाना ।

अँड—संज्ञा पु० [सं०] (१) ब्रह्मांड, लोकपिंड, विश्व । उ०—(क) सब्दादिक तै पंचभूत सुदर प्रगटाए । पुनि सबकौ रुचि अँड, आपु मै आपु समाए—२-३६ । (ख) तिनतै पंचतत्व उपजायौ । इन सबकौ इक अँड बनायौ—३-१३ । (ग) एक अँड कौ भार बहत है, गरब धरचौ जिय सेष—५७० । (२) कामदेव । उ०—अति प्रचंड यह अँड महा भट जाहि सबै जग जानत । सो मदहीन दीन ह्वै बपुरो कोपि धनुष सर तानत—३३६२ । (३) अँडा ।

अँडा—संज्ञा पु० [सं० अँड] (१) मादा जीव जन्तुओं से उत्पन्न गोल पिंड जिसमें से बाद को बच्चा निकलता है । उ०—यह अँडा चेतन नहि होइ । करहु कृपा सो चेतन होइ—३-१३ । (२) शरीर ।

अंत—संज्ञा पु० [सं०] (१) समाप्ति, इति, अवसान । उ०—लाज के साज मै हुती ज्यों द्रोपदी, बढ्यौ तन-चीन नहि अंत पायौ—१-५ । (२) शेष भाग, अंतिम अंश । उ०—सूरदास भगवत भजन करि अंत बार कछ लहियै—१-६२ । (३) सीमा, अवधि, पराकाष्ठा । उ०—भुजा बाम पर कर छवि

लागति उपमा अंत न पार—६८७ । (ख) सोभा सिन्धु न अंत रही री—१०-२६ । (४) अंतकाल, मरण, मृत्यु । उ०—(क) छनभगुर यह सबै स्याम बिनु अंत नहि सँग जाइ—१-३१७ । (ख) पर्यौ जु काज अंत की बिरियाँ तिनहुँ न आनि छुडायौ—२-३० । (५) फल, परिणाम ।

संज्ञा पु० [सं० अंतर] (१) अंतःकरण, हृदय (२) भेद, रहस्य । उ०—(क) पूरन ब्रह्म पुरान बखानै । चतुरानन सिव अंत न जानै—१०-३ । (ख) जाको ब्रह्मा अंत न पावै—३६३ ।

मं० पु० [सं० अंत्र] अँत, अँतडी ।

क्रि० वि०—अंत में, निदान ।

त्रि० वि० [सं० अन्यत्र—अनत—अंत] दूसरे स्थान पर, अलग, दूर, । उ० कुज कुज मे क्रीडा करि करि गोपिन कौ सुख दैहो । गोप सखन सँग खेलत डोलौ तिन तजि अंत न जैहौ ।

अंतक—संज्ञा पु० [सं०] (१) अंत करनेवाला, यमराज, काल । उ०—भव अगाध-जल-मग्न महा सठ, तजि पद-कूल रह्यो । गिरा रहित, ब्रूक-असित अजा लौ, अन्तक आनि गह्यो—१-२०१, (२) सन्निपात ज्वर का एक भयंकर भेद जिसमें रोगी किसी को नहीं पहचानता । उ०—ब्याकुल नद सुनत ए बानी । डसि मानौ नागिनी पुरानी । ब्याकुल सखा गोप भए ब्याकुल । अंतक दशा भयौ भय आकुल—२६४६

अंतकारी—संज्ञा पु० [सं०] अंत या संहार करने वाला, विनाशक । उ०—भक्त भय हरन असुर अंतकारी—१० उ०—३१ ।

अंतगति—संज्ञा स्त्री [सं०] अंतिम दशा, मृत्यु ।

अंतत—क्रि. वि० [हि अंत] अंत में । उ०—जाति स्वभाव मिटै नहि सजनी अंतत उबरी कुबरी—३१८८ ।

अंतर—संज्ञा पु० [सं०] (१) भेद, भिन्नता, अलगाव ।

उ० (क) जब जहाँ तन बेष धारौ तहाँ तुम हित जाइ । नैकु हूँ नहि करौ अंतर, निगम भेद न पाइ ६८३ । (ख) जो जासौ अंतर नहि राखै सो क्यो अंतर राखै—११६२ [२] मध्यवर्ती काल, बीच का समय । उ० (क) इहि अंतर नृपतनया आई ।

(ख) पिता देखि मिलिबे को धाई—६-३ । तेजु बदन भाँप्यो भुकि अंचल इहै न दुख मेरे मन मान । यह पै दुसह जु इतनेहि अंतर उपजि परै कछु आन—सा० उ. १५ । (३) ओट, आड़ । उ. (क) जा दिन ते नैनन अंतर भयो अनुदिन अति बाढति है बारि २७६५ । (ख) एक दिवस किन देखहू, अंतर रही छपाई । दस को है धौ बीस को नैननि देखौ जाइ—१०६८ । (ग) कठिन बचन सुनि सवन जानकी सकी न बचन सँभारि । तून अंतर दै दृष्टि तरौधी, दियो नयन जल ढारि—६-७६ । (घ) पट अंतर दै भोग लगायो आरति करी बनाइ—२६१ ।

वि. अंतर्धान, छुप्त । उ.—गर्व जानि पिय अंतर ह्वे रहे सा मं बृथा बढायौ री—१८१६ ।

क्रि. वि.—दूर, अलग, पृथक । उ.—कहाँ गए गिरिधर तजि माकौ ह्यो कैसे मे आई । सूर स्याम अंतर भए मोते अपनी चूक सुनाई—१८०३ ।

संज्ञा पुं. [सं. अंतर] हृदय, अंतःकरण, मन । उ.—(क) गोविंद प्रीति सबनि की मानत । जिहि जिहि भाइ करत जन सेवा, अंतर की गति जानत—१-१३ । (ख) सूर सो सुहृद मानि, ईश्वर अंतर जानि, सुनि सठ भूठौ हठ-कपट न ठानि—१-७७ । (ग) राजा पुनि तब क्रीड़ा करै । छिन भरहू अंतर नहि धरै—४-१२ । (घ) अंतर ते हरि प्रगट भए । रहत प्रेम के बस्य कन्हाई युवतिन को मिल हर्ष दए—१८३२ । (२) हृदय या मन की बात । उ.—तब मै कह्यौ, कौन है मोसी, अंतर जानि लई—१८०३ ।

क्रि. वि. (१) भीतर, अंदर । उ.—(क) ज्यौ जल मसक जीव-घट अंतर मम माया इमि जानि—२-३८ । (ख) हौ अलि केतने जतन बिचारौ । वह मूरति वाके उर अंतर बसी कौन बिधि टारौ—सा ७५ । (२) ऊपर, पर । उ.—निरखि सुन्दर हृदय पर भृगु-पाद परम सुलेख । मनहुँ सोभित प्रभु अन्तर सम्भु-भूषन बेष—६६५ ।

वि —आंतरिक । उ —(क) मलिन बसन हरि हेरि हित अंतर गति तन पीरो जनु पातै—सा. उ.

४६ । (ख) अंगदान बल को दै बैठी । मंदिर आजु आपने राधा अंतर प्रेम उमेठी—सा. १०० । अंतरगत—संज्ञा पु. [म. अतर्गत] हृदय, अंतःकरण, चित्त । उ. — ज्यो गूंगे मीठ फल को रस अतरगत ही भावै—१-२ ।

अंतरजामी, अंतरजामी—वि. पु. [सं. अतर्यामी] हृदय की बात जानने वाला । उ.—(क) कमल-नैन, करुना-मय, सकल-अतरजामी—१-१२४ । (ख) सूर बिनती करै, सुनहु नंद-नंद तुम कहा कहौ खोलि कै अंतर-जामी—१-२१४ ।

अंतरदाह—संज्ञा पु. [स.] हृदय की जलन; हृदय का सताप । उ.—अंतरदाह जु मिट्यौ ब्यास कौ इक चित ह्वे भागवत किये—१-८६ ।

अंतरधान—संज्ञा-पु. [सं. अतर्धान] लोप, अदर्शन । वि.—गुप्त, अलक्ष्य, अदृश्य । उ.—करि अंतरधान हरि मोहिनी रूप कौ, गरुड असवार ह्वे तहाँ आए—८-८ ।

अंतरध्यान—संज्ञा पु. [सं. अतर्धान] अदृश्य, अतर्हित, छुप्त । उ.—भयै अंतरध्यान बीते पाछिला निस जाम-सा. ११८ ।

अंतरपट—संज्ञा पु. [स.] (१) परदा, आड़, ओट । (२) छिपाव, दुराव । (२) अधोवस्त्र ।

अंतरा—संज्ञा पु. [सं. अतर] मध्यवर्ती काल, बीच का समय । उ.—जब लगि हरत निमेष अतरा युगसमान पल जात—१३४७ ।

क्रि. वि. [स] (१) मध्य । (२) अतिरिक्त । (३) पृथक ।

संज्ञा पु.—गीत की स्थाई या टेक के अतिरिक्त पद या चरण ।

अंतराना—क्रि. स. [सं. अतर] (१) पृथक करना । (२) भीतर ले जाना ।

अंतराय—संज्ञा पु. [स.] (१) बाधा । (२) ज्ञान का बाधक ।

अंतराल—संज्ञा पु. [सं.] (१) घेरा, मंडल । (२) मध्य, बीच ।

अंतरिक्ष—संज्ञा पु. [सं.] (१) आकाश । (२) स्वर्गलोक । वि.—अंतर्धान, गुप्त ।

अंतरिच्छ—संज्ञा पु. [सं. अंतरिक्ष] (१) आकाश, अधर ।

उ.—जोजन बिस्तार सिला पवनसुत उपाटी । किकर करि बान लच्छ अंतरिच्छ काटी—१-६६ । (२) अधर, ओठ । उ.—(क) अंतरिच्छ श्री बंधु लेत हरि त्यौ ही आप आपनी घाती—सा. ५० । (ख) अंतरिच्छ मे परो बिबफल सहज सुभाव मिलावो—सा. उ. १०३ ।

अंतरिच्छन—संज्ञा पु. बहु. [सं. अंतरिक्ष] दोनों अधर, ओठ । उ.—अंतरिच्छन सिधु-सुत से कहत का अनुमान—सा. ७८ ।

अंतरिछ—संज्ञा पु. [सं. अंतरिक्ष] ओठ, अधर । उ.—(क) लगे फरकन अंतरिछ अनूप नीतन रंग—सा. ७५ । (ख) हरि को अंतरिछ जब देखी । दिग्गज सहित अनूप राधिका उर तब धीरज लेखी—सा. ८३ ।

अंतरित—[सं.] (१) छिपा हुआ, गुप्त । (२) ढका हुआ ।

अंतरीक—संज्ञा पु. [सं. अंतरिक्ष] आकाश ।

अंतरौटा—संज्ञा पु. [सं० अंतरपट] महीन साडी के नीचे पहनने का वस्त्र जिससे शरीर दिखाई न दे । उ.—चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते (हो) । अंतरौटा अवलोकि कै असुर महा मदमाते (हो)—१—४४ ।

अंतर्गत—वि. [सं०] (१) भीतर, छिपा हुआ, गुप्त । (२) हृदय के, हार्दिक ।

संज्ञा पु —मन, हृदय, चित्त । उ —(क) रुक्म रिसाई पिता सौ कह्यौ । सुनि ताकौ अंतर्गत दह्यौ—१०३-७ । (ख) बारंबार सती जब कह्यौ । तब सिव अंतर्गत यौ लह्यौ—४-५ ।

अंतर्गति—संज्ञा स्त्री [सं] (१) चितवृत्ति, मनोकामना, भावना । (२) हृदय में । उ—करि समाधि अंतर्गति ध्यावहु यह उनको उपदेस—२६८८ ।

अंतर्दृष्टि—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) ज्ञानचक्षु, प्रज्ञा । (२) आत्मचिंतन ।

अंतर्धान—संज्ञा पु० [सं० अन्तर्धान] लोप, तिरोधान । वि०—गुप्त, अदृश्य, अंतर्हित । उ.—कै हरि जू भए अन्तर्धान—१-२८६ ।

अंतर्धाना—वि [सं. अंतर्धान] गुप्त, अदृश्य, अंतर्हित ।

उ.—राधा प्यारी सङ्ग लिए भए अन्तर्धाना—१७६२ ।

अंतर्बोधि—संज्ञा पु. [स.] (१) आत्मज्ञान । (२) आंतरिक अनुभव ।

अंतर्यामी—वि. [सं.] हृदय की बात जानने वाला । उ —सूरदास प्रभु अंतर्यामी भक्त संदेह हर्यौ—२५५२ ।

अंतर्हित—वि. [स.] अंतर्धान, अदृश्य, लुप्त ।

अंतावरी, अंतावली—संज्ञा स्त्री. [हि. अंत + स. आवलि] अँतें, अँतड़ी-समूह ।

अंतःकरण—संज्ञा पु. [स.] (१) हृदय, मन, चित्त, बुद्धि । (२) नैतिक बुद्धि, विवेक ।

अंत पुर—संज्ञा पु [सं.] महल का मध्यभाग जहाँ रानियाँ रहती हैं, रनिवास । उ.—नृप सुनि मन आनन्द बढायौ । अन्त पुर मै जाइ सुनायौ—४-६ ।

अँदरसे—संज्ञा पु. बहु. [फा. अंदर + सं. रस] एक मिठाई जो चौरेटे या पिसे हुए चावल की बनती है । उ. सुंदर अति सरस अँदरसे । ते घृत दधि-मधु मिलि सरसे—१०-१८३ ।

अँदेस, अँदेस—संज्ञा पु [फा अदेशा] (१) सोच, चिंता, फिक्र । उ —इन पै दीरघ धनुष चढै क्यो, सखि यह संसय मोर । सिय- अँदेस जानि सूरज-प्रभु लियो करज की कोर—६-२३ । (२) भय, डर, आशंका । उ.—(क) सूर निगुन ब्रह्म धरि के सजहु सकल अँदेस—१६७४ - (ख) छिन बिनु प्रान रहत नहि हरि बिन निसदिन अधिक अँदेस—१७५३ । (३) संशय, अनुमान । (४) हानि । (५) दुविधा, असमजस ।

अँदेसो—संज्ञा पु. [फा. अंदेशा] (१) चिंता सोच । उ. समै पाइ सम्भाइ स्याम सो हम जिय बहुत अँदेसो—३४३१ । (२) हानि, दुख । उ.—रवि के उदय मिलन चकई को ससि के समय अँदेसो .—३३६५ । (३) आशंका, भय, डर । उ.—भली स्याम कुस-लात सुनाई सुनतहि भयौ अँदेसो — ३१६३ ।

अंदोर—संज्ञा पु० [सं. अदोल=भूलना, हलचल] हलचल, हल्ला, कोलाहल । उ.—भहरात भहरात

दवा (नल) आयी । घेरि चहुँ ओर, करि सोर
अदोर बन, धरनि आकास चहुँ पास छायो—५६६ ।
अंध—वि [स०] (१) नेत्रहीन । (२) अज्ञानी,
अविवेकी । (३) अन्धकारपूर्ण । उ.—जैसे अंधौ
अंधकूप में गनत् न खाल-पनार—१-८४ । (४)
असम्बधान, अचेत । (५) उन्मत्त, मतवाला ।
उ.—काम अंध कछु रही न सँभारि । दुर्वासा रिषि
को पग मारि—६-७ । (६) प्रखर, तीव्र । उ.—
क्यौ राधा फिर मौन गहौ री । जैसे नउआ अंध
भँवर खर तैसहि तै यह मौन कहौ री—१३१० ।
सज्ञा पु—(१) नेत्रहीन प्राणी । (२)
अंधकार । (३) छतराष्ट्र ।
यौ—अधसुत— छतराष्ट्र के पुत्र । उ—अंबर
गहत द्रौपदी राखी, पलटि अधसुत लाजै—१-३६ ।
अंधकार—सज्ञा पु [स] (१) अँधेरा, तम । (२)
अज्ञान, मोह । (३) उदासी, कांतिहीनता ।
अंधकाल—सज्ञा पु [सं अंधकार] अँधेरा ।
अंधकाला—सज्ञा पु [सं अंधकार] अँधेरा, अंधकार ।
उ.—ऐसे बादर सजल करत अति महाबल चलत
घहरात करि अंधकाला—६४६ ।
अंधकूप—सज्ञा पु [स] (१) सूखा कुआँ । (२)
अँधेरा ।
अंधधुंध—सज्ञा पु [सं अंध=अंधकार + हि धुंध]
(१) अंधकार, अँधेरा । उ—अति बिपरीत
तूनावर्त आयौ । बात चक्र मिस ब्रज के ऊपर नद
पौरि के भीतर आयौ । अंधधुंध (अँधाधुंध) भयौ
सब गोकुल जो जहाँ रह्यो सो तहाँ छपायो—१०-
७७ । (२) कोउ लै ओट रहत बृच्छन की अंधधुंध
दिसि बिदिसि भुलाने—६५१ । (३) अंधधुंध मग्न
कहूँ न सूझै—१०५० । (४) अँधेरा, अनरीति ।
अंधवाई—सज्ञा स्त्री [सं अंधवायु] धूलभरी आँधी,
अंधड़ । उ—स्याम अकेले आँगन छाँड़ि, आपु गई
कछु काज धरै । यहि अतर अंधवाई उठी (अंधवाह
उठ्यो) इक गरजत गगन सहित घहरै—१०-७६ ।
अंधमति—वि [स] नासमझ, मूर्ख । उ—रे दसकध,
अंधमति, तेरी आयु तुजानी आनि—६-७६ ।
अंधर—वि [सं अंधकार] अंधकारमय ।

अँधरा—सज्ञा पु [सं. अंध] अंधा प्राणी ।

वि—जो अंधा हो ।

अँधवाह—सज्ञा स्त्री [सं अंधवायु, हि अँधवाई]
आँधी । उ—(क) इहि अतर अँधवाह उठ्यो
इक, गरजत गगन सहित घहरै—१०-७६ । (ख)
धावहु नन्द गोहारि लगौ किन, तेरो सुत अँधवाह
उड़ायो—१०-७७ ।

अँधाधुंध—सज्ञा स्त्री [हि अंधा + धुंध] (१) बड़ा
अँधेरा, घोर अंधकार । उ—अति बिपरीत तूनावर्त
आयो । बात-चक्र-मिस ब्रज ऊपर परि, नंद पौरि के
भीतर धायो । । अँधाधुंध भयौ सब गोकुल,
जो जँह रह्यो सो तही छपायो—१०-७७ । (२)
अँधेरा, अविचार ।

अंधार—सज्ञा पु [सं अंधकार, प्रा अँधयार] अँधेरा,
अंधकार ।

अँधियार—सज्ञा पु [सं अंधकार, प्रा अँधयार]
अँधेरा, अंधकार ।

वि.—अंधकारपूर्ण, तमाच्छादित । उ—भय-
उदधि जमलोक दरसै निपट ही अँधियार—१-८८ ।

अँधियारा—सज्ञा पु [सं अंधकार, प्रा. अँधयार]
(१) अँधेरा, अंधकार (२) धुंधलापन ।

वि—(१) प्रकाशरहित । (२) धुंधला । (३)
उदास, सूना ।

अँधियारी—सज्ञा स्त्री [प्रा. अँधयार + हि ई=अँधारी]
(१) तेज आँधी जिससे अंधकार छा जाय, काली आँधी ।
उ—ता संग दासी गई अपार । न्हान लगी सब
बसन उतार । अँधियारी आई तहँ भारी । दनुज सुता
तिहि तै न निहारी । बसन सुक तनया के लीन्है ।
करत उतावाँल परे न चीन्है—६-१७४ । (२)
अंधकार ।

वि—अंधकारपूर्ण, अँधेरी । उ—अँधियारी
मादों की रात—१०-१२ ।

अँधियारै—सज्ञा सवि [हि० अँधियारा] । अँधेरे में ।
उ—सूर स्याम मंदिर अँधियारै, (जुबति)
निरखति बारंबार—१०-२७७ ।

वि—अंधकारमय, प्रकाशरहित । उ—अँधियारै
घर स्याम रहे दुरि—१०-२७८ ।

अंधियारौ—संज्ञा पुं० [हि० अंधियारा] (१)
अंधकार । (२) धुँधलापन ।

वि — (१) प्रकाशरहित । उ.—जब तै हौ हरि
रु निहारौ । तब तै कहा कहौ री सजनी लागत जग
अंधियारौ—सा ४० । (२) धुँधला । (३) उदास,
सूना, निराशापूर्ण । उ०—कहो सँदेस सूर के प्रभु को
यह निर्गुन अंधियारौ—३२६४ ।

अंधु—वि० [सं० अंध] अंधकारपूर्ण, अज्ञानतायुक्त ।
उ०—गुम्हरी कृपा बिनु सब जग अंधु—पृ० ३६१ ।

अंधेरना—क्रि० सं० [हि० अंधेर] अंधेर करना, अंधकार-
मय करना ।

अंधेरा—संज्ञा पुं० [सं० अंधकार, प्रा० अंधयार,
हि० अंधेर] (१) अंधकार । (२) अन्याय, अविचार,
अव्याचार । (३) उपद्रव, गड़बड़, धींगार्थीगी,
अनर्थ । उ०—नहामत्त, बुधबल को हीनो, देखि
करे अंधेरा—१-१८६ । (४) उदासी, उत्साहहीनता ।

अंधेरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० अंधारी] (१) अंधकार ।
(२) अंधेरी रात ।

अंधेरी—वि० स्त्री० [हि० पुं० अंधेरा + ई] अंधकारमय,
प्रकाशरहित । उ०—निसि अंधेरी, बीजु चमकै, सघन
बरषे मेढ़—१०-५ ।

संज्ञा स्त्री०—(१) अंधियारी (२) अंधेरी रात ।
(३) अंधी ।

अंधेरे—संज्ञा पुं० सवि० [हि० अंधेरा] अंधकारपूर्ण
स्थान में । उ०—कृष्ण कियौ मन ध्यान असुर दक
बसत अंधेरे—१०-४३१ ।

अंधेरौ—संज्ञा पुं० [हि० अंधेरा] (१) अंधकार ।
(२) धुँधलापन । (३) उदासी, उत्साहहीनता, निराशा,
उ०—गछे चढो बिमान मनोहर बहुरौ जदुपति होत
अंधेरौ—२५३२ ।

वि० (१) अंधकारमय । (२) अंधा । उ०—
एक अंधेरौ हिये की फूटी दौरत पहिर खराऊ—
३४६६ ।

अंधौ—संज्ञा पुं० [सं० अंध, हि० अंधा] अंधा प्राणी,
नेत्रहीन व्यक्ति । उ०—जैसे अंधौ अंध कूप में गनत
न खाल-पनार—१-८४ ।

अंध्यारी—वि० स्त्री० [हि० पुं० अंधियार] अंधेरी,

प्रकाशरहित । उ०—भादी की अधराति अंध्यारी—
१० ११ ।

संज्ञा स्त्री०—श्यामता, कोलिमा । उ०—असक
वारत अंध्यारी तिलक भाल सुदेस—१४१३ ।

अंध्यारै—संज्ञा पुं० सवि० [हि० अंधियारा] अंधेरे में ।
उ०—कबहुँ अघासुर बदन समाने, कबहुँ अंध्यारै
जात न घाम—४६७ ।

अंध्यारौ—संज्ञा पुं० [हि० अंधेरा] अंधेरा । उ०—
आवहु बेगि चलो घर जैऐ, बनही होत अंध्यारौ—
५०५ ।

अंध—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब] (१) आम का
पेड़ । उ०—अब सुफल छाँडि, कहा सेमर को धाऊँ—
१-१६६ । (२) माता ।

अंबर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्त्र, कपड़ा, पट । उ०—
नृपति रजक अंबर नृप धोवत—२५७४ । (२) स्थियों
को धोती, सोरौ । उ०—करषत सभा द्रुपद-तनया को
अंबर अछुय कियो—१-१२१ । (३) आकाश, आकाशमय ।
उ०—रिपु कच गहत द्रुपद-तनया जब सरन सरन
कहि भाषी । बढे दुकूल-कोट अंबर लौ, सभा-मोक्ष
पति राखी—१-२७ ।

अंबरबानी—संज्ञा स्त्री० [सं० अंबर=आकाश+वाणी]
(१) आकाशवाणी । (२) गर्जन । उ०—अंबरबानी
भई सजल बादलें दल छाए—१० उ०—६ ।

अंबरई—संज्ञा स्त्री० [सं० अंबर+राजी=पंक्ति] आम
का बगीचा । उ०—अति दरेर की भरैर टपकत सब
अंबरई—१५६५ ।

अंबरव—संज्ञा पुं० [सं० अंबर+राजी=पंक्ति]
आम का बगीचा ।

अंबरीष, अंबरीष—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के एक
सूर्यवंशी राजा । इन्हें कहीं अशुभक का पुत्र कहा
गया है और कहीं नाभाग का । राजा इक्ष्वाकु से भे
अट्ठाईसवीं पीढ़ी में हुए थे । ये विष्णु के बड़े भक्त
थे और उनके चक्र ने परम क्रोधी दुर्वासा मुनि के
शाप से इनकी रक्षा की थी ।

अंबा—संज्ञा स्त्री [सं०] (१) माता, जननी । (२)
गौरी, देवी ।

संज्ञा पुं० [सं० आपाक=प्रादाँ, हि० आँका

अँवा] वह गढ़ा जिसमें कुम्हार मिट्टी के बरतन पकाते हैं । उ.—विधि-कुलाल कीने काचे घट ते तुम आनि पकाए । । ब्रजकरि अँवा जोग ईवन सम सुरति आगि सुलगाए—३१६१ ।

संज्ञा पु० [सं० आम्र, हि० आम] आम ।

अँबा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता, जननी । (२) गौरी, देवी । (३) अँवा ।

अँबावन—संज्ञा पु० [सं०] इलावृत खंड का एक स्थान जहाँ जाने से पुरुष, स्त्री हो जाता था । उ.—पुनि सुद्युम्न बसिष्ठ सौ कह्यौ । अँबावन में तिय हूँ गयो—६-२ ।

अँबिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माता, माँ । (२) दुर्गा, भगवती । उ.—गए सरस्वती तट इक दिन सिव-अंबिका पूजन हेत—२२६१ । (३) काशी के राजा इंद्रद्युम्न की मफली कन्या जिसे हर कर भीष्म ने विचित्रवीर को ब्याह दिया था । विचित्रवीर की मृत्यु के बाद इससे व्यास जी ने नियोग किया जिससे धृतराष्ट्र का जन्म हुआ ।

अँबिकावन—संज्ञा पु० [सं०] पुराणों के अनुसार इलावृत खंड का एक स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाते थे । उ.—एक दिवस सो अखेटक गयो । जाइ अँबिकावन तिय भयो—६-२ ।

अँबु—संज्ञा पु० [सं०] (१) जल, पानी । (२) आँसू । उ.—सारंग मुख ते परत अँबु ढरि मनु सिव पूजति तपति बिनास—सा० उ० २८ ।

संज्ञा पु० [सं० आम्र, प्रा० अंब] आम का पेड़ । उ.—जबुबूक्ष कहौ क्यो लंपट फलवर अँबु फरै—३३११ ।

अँबुआ—संज्ञा पु० [सं० आम्र, प्रा० अंब, हि० आम] आम, रसाल । उ.—द्वादस बन रतनारे देखियत चहुँ दिसि टेसू फूले । भौरे अँबुआ अरु द्रुम बेली मधुकर परिमल भूले—२३६१ ।

अँबुज—संज्ञा पु० [सं०] (१) जल से उत्पन्न वस्तु । (२) कमल ।

अँबुनिधि—संज्ञा पु० [सं०] समुद्र, सागर ।

अँबूजी—संज्ञा पु० [सं० अँबु=जल+जा (स्त्री० जल से उत्पन्न वस्तु)] कमलिनी । उ.—अनुदिन काम

बिलास बिलासिनि वै अलि तू अँबूजी—२२७५ ।

अँबोधि—संज्ञा पु० [सं० अँबुधि] समुद्र, सागर ।

अँभ—संज्ञा पु० [सं० अभस्] जल, पानी । उ.—ससि चंदन अरु अँभ छाँड़ि गुन बपु जु दहत मिलि तीर—२८६६ ।

अँभोज—संज्ञा पु० [सं०] कमल ।

अँमर—संज्ञा पु० [सं० अंबर] आकाश, गगन । उ.—चढ़ि चढ़ि अमर-विमान परम सुख कौतुक अँमर छाए—२६२२ ।

अँवदा—वि [सं० अवोध] (१) औंधा, उलटा (२) नीचे की ओर मुँहवाला ।

अँवा—संज्ञा पु० [सं० आपाक=आवाँ, हि० आवाँ, अवा] कुम्हार का आँवा ।

अँरा—संज्ञा पु० [सं०] (१) भाग, विभाग । (२) हिस्सा ।

संज्ञा पु० — [सं० अश्रु] आँसू । उ.—प्रेमघट

उच्छवलित हैहै अंश नैन बहाइ—२४८६ ।

अँशी—वि [सं० अंशिन्] अंशधारी, अंश रखनेवाला । उ.—द्वारपाल इहै कही जोधा कोउ बचे नाहि, काँधे गजदंत धरे सूर ब्रह्मांशी—२६१० ।

अँशु—संज्ञा पु० [सं०] (१) किरण, प्रभा । (२) लेश, बहुत सूक्ष्म भाग । उ.—दुख आवन कछ अटक न मानत सूनो देखि अगार । अँशु उसास जात अतर ते करत न कछ बिचार—२८८८ ।

अँशुक—संज्ञा पु० [सं०] उपरना, उत्तरीय, दुपट्टा ।

अँशुमान—संज्ञा पु० [सं०] अयोध्या के सूर्यवंशी राजा जो सगर के पौत्र और असमंजस के पुत्र थे । सगर के साठ हजार पुत्रों के भस्म हो जाने पर अश्वमेध का घोड़ा खोजने ये ही निकले थे और इन्हें ही सफलता मिली थी ।

अँशुमाली—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य ।

अँस, अँस—संज्ञा पु० [सं० अश] (१) भाग, शक्ति । उ.—(क) बिष्णु-अंस सौ दत्तऽवतरे । रुद्र-अस दुर्वासा धरे । ब्रह्मा - अंस चंद्रमा भयो—४-३ ।

(ख) राजा मंत्री सौ हित मानै । ताकै दुख दुख, सुख-सुख जानै । नरपति ब्रह्मा, अस सुख-रूप । मन मिलि परचौ दुख कै कूप—४-१२ । (२) कला,

सोजहवाँ भाग । उ.—हरि उर मोहनि बेलि लसी ।
ता पर उरग प्रसित तब सोभित पूरन अंस ससी—स.
उ.—२५ । (३) आत्मीयता, अपनत्व, अधिकार, संबंध ।
उ.—इनके कुल ऐसी चलि आई सदा उजागर बस ।
अब इन कृपा करी ब्रज आए जानि आपनो अस—
३०४६ । (४) कंधा । उ.—बाम भुजहि सखा अंस
दीन्हे, दच्छिन कर द्रुम-डरिया—४७० ।

अंसक—वि [सं. अशक] अंश रखनेवाला, अंशी,
अंशधारी ।

अंसु—संज्ञा पु. [सं. अंशु] किरण, प्रभा । उ.—(क)
मुख-छवि देखि हो नद-घरनि । सरद-निसि को अंसु
अगनित इहु आभा हरनि—३५१ । (ख) जागिये
गोपाल लाल, प्रगट भई अंसु-माल, मिट्यौ अंधकाल,
उठौ जननी-सुखदाई—६१६ ।

संज्ञा पु [सं. अश] कंधा । उ.—सखा अंसु
पर भुज दीन्हे, लीन्हे मुरलि, अघर मधुर, बिस्व
भरन—६२४ ।

अंसुपात—संज्ञा पु [सं. अश्रु+हि. पात] आँसू, आँसू
की झड़ी । उ.—इहि बिधि सोच करत अति ही नृप,
जानकि ओर निरखि बिलखात । इतनी सुनत
सिमिटि सब आए, प्रेम-सहित धारे अंसुपात—
६-३८ ।

अंसुमान—संज्ञा पु. सं. [अशुमान] अयोध्या के एक
राजा जो सूर्यवंशी राजा सगर के पौत्र और असमंजस
के पुत्र थे । राजा-सगर के अश्वमेध का घोड़ा कपिल
सुनि के यहाँ से ये ही जाए थे ।

अंसुव—संज्ञा पु. [सं. अश्रु, पा. प्रा. अस्सु, हि. आँसू]
आँसू । उ.—हृदय ते नहि टरत उनके स्याम नाम
सुहेत । अंसुव सलिल प्रवाह डर मनौ अरघ नैनन
देत—३४८३ ।

अंसुवा—संज्ञा पु. [सं. अश्रु, पा. प्रा. अस्सु, हि. आँसू]
आँसू । उ.—(ख) देखि माई हरि जू की लोटनि ।
यह छवि निरखि रही नंदरानी, अंसुवा ढरि-ढरि
परत करोटनि—१०-१८७ । (ख) चपल दृग, पल
भरे अंसुवा, कछुक ढरि-ढरि जात—३६० ।

अंसुवाना—क्रि. अ. [सं. अश्रु] डबडबा आना, आँसू
आ जाना ।

अइयै—क्रि० अ०, [हि० आना, आइए] पधारिए ।

उ०—चरन धोइ चरनोदक लीन्हों, तिथा कहै
प्रभु अइयै—१-२३६ ।

अऊत—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अउत्त] निपूता,
निसंतान ।

अऊलना—क्रि० अ० [सं० उल्=जलना] जलना, गरम
होना ।

क्रि० अ० [सं० आ=अच्छी तरह+शूलन प्रा०
सूलन, हि० हूलना] छिदना, चुभना ।

अएरना—क्रि० स० [सं. अगीकरण, प्रा० अंगिअरण,
हि० अंगरना] स्वीकार करना, धारण करना ।

अकंटक—वि० [सं०] (१) बिना काँटे का । (२) निर्विघ्न,
बाधा रहित, बिना खटके का ।

अकथ—वि० [सं० अकथनीय] न कहने योग्य,
अकथनीय ।

अकथ—वि० [सं०] जो कहा न जा सके, वर्णन के
बाहर, अकथनीय, अवर्णनीय । उ.—(क) अकथ
कथा याकी कछू, कहत नही कहि आई (हो)—
१-४४ । (ख) ये अब कहति देखावहु हरि की
देखहु री यह अकथ कहानी—१-१२७६ । (ग)
सिंह रहै जबुक सरनागत, देखी-सुनी न अकथ
कहानी—पृ० ३४३ । (घ) कमलनैन जगजीवन के
सखी गावत अकथ कहानी—२७६६ । (ङ) किनहूँ के
संग धेनु चरावत हरि की अकथ कहानी—३४११ ।

अकथन—वि० [सं० अकथ, अकथ्य] जो वर्णन न
किया जा सके, अवर्णनीय, अकथनीय । उ०—मन,
बच करि कर्म रहित बंदहु की बानी । कहिये जो
निबहिबे अकथन कहूँ साही । सूरस्याम मुख सुचंद्र
लीनि जुवति मोही—३२८६ ।

अकथक—संज्ञा पु० [सं० धू=बड़कना, काँपना]
आशंका, भय, डर ।

अकनत—क्रि० स० [सं० आकर्णन = सुनना, हि०
अकनना] ध्यान से, कान लगाकर, आहट लेकर ।
उ०—गर सोर अकनत सुनत अति रहि उपजावत
—२५६१ ।

अकनना—क्रि० स० [सं० आकर्णन = सुनना] कान
लगाकर सुनना, आहट लेना ।

अकना—क्रि० अ० [सं० आकुल] ऊबना, उकताना ।

अकनि—क्रि० सं० [सं० आकर्णन=सुनना, हि० अकनना] सुनकर ।

यौ०—अकनि रहत—कान लगा कर या खुपचाप सुनते रहते (हैं) ध्यान में मग्न । उ०—मालस-गात जात मनमोहन, सोच करत, तनु नाहिन चैन । अकनि रहत कहूँ, सुनत नही कछु, नहिँ मो-रभम बालक-बैन—५०१ ।

अकनी—क्रि० सं० [सं० आकर्णन=सुनना, हि० अकनना] आहट ली, सुनी । उ०—कह्यो तुम्हारो सब कही में और कछु अपनी । सवनन बचन सुनत हे उनके जो घट मँह अकनी—३४६५ ।

अकनै—वि० [सं० आकर्ण्य=पुनना, हि० अकनना] सुनने को, सुनने योग्य, सुनने की चाह से युक्त, इष्ट । उ०—सौ हरि प्रान प्रनतबल्लभ मोहनलीला है अकनै । आवत है कछु कह्यो सूर प्रभु नहिँ तौ रहौ तुम मौन बनै—३२१२ ।

अकबक—सज्ञा पु० [सं० अवाक्य, अवाच्य] (१) असंबद्ध प्रलाप । (२) धड़क, चिंता । (३) चतुराई, सुध ।

वि०—[सं० अवाक्] भौचक्का, अवाक्, चकित ।

अकबकात—क्रि० अ० [सं० अवाक्, हि० अकबकाना] चकित होते हैं, भौचक्के रह जाते हैं, धबड़ाते हैं । उ०—सकसकात तन, धकधकात उर अकबकात सब ठाढ़े । सूर उपँगसुत बोलत नाही अति हिरदै ह्वै गाढ़े—२९६६ ।

अकबकाना—क्रि० अ० [सं० अवाक्] चकित होना, भौचक्का रह जाना ।

अकरखना—क्रि० सं० [सं० आकर्षण] (१) खींचना, तानना । (२) चढ़ाना ।

अकरतौ—क्रि० अ० [हि० आ=प्रच्छी तरह+कड्ड=कड़ापन, हि० अकडना] अभिमान दिखाता, घमंड करता, अकड़ जाता । उ०—कबहुँक राज-मान मद पूरन, कालहु तै नहि डरतौ । मिथ्या बाद आप-जस सुनि-सुनि, मूछहि पकरि अकरतौ—१-२०३ ।

अकरन—वि० [स. प्र = नहीं+करण, अकरणीय] (१)

न करने योग्य । उ०—दयानिधि तेरी मति लखि न परै ।

धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि, अकरन करन करै—

१-१०४ । (२) बिना कारण का, अकारण ।

अकरम—सज्ञा पु० [सं० अकर्म] न करने योग्य कार्य, बुरा काम, दुष्कर्म । उ०—अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति । जाकौ नाम लेत अघ उपजै, सोइ करत अनीति—१-१२६ ।

अकराथ—वि० [स. अकार्यार्थ, प्रा. अकारियत्थ] अकारथ, व्यर्थ, निष्फल ।

अकरी—वि० स्त्री० [सं० अकृत्य, हि० अकरा (पु.)] (१) मँहगी, अधिक दाम की । उ०—ऊधौ तुम बूज मे पैठ करी । लै आए हो नफा जानि कै सब बस्तु अकरी—३१०४ । (२) खरी, श्रेष्ठ, उत्तम, अमूल्य ।

अकरुन—वि० [सं० अकरुण] निर्दयी, निष्ठुर ।

अकर्ता—वि० [सं०] कर्म न करनेवाला, कर्म से निर्जिप्त ।

अकर्म—सज्ञा पु० [स.] न करने योग्य कार्य, बुरा काम ।

अकर्म—वि० [स.] काम न करने वाला, काम के लिए अनुपयुक्त ।

अकर्षि—क्रि० सं० [सं० आकर्षण, हि० आकर्षना] खींच कर, आकर्षित करके । उ०—जेहि माया बिरंचि सिव मोहे, वहे बानि करि चीन्हौ । देवकि गर्भ अकर्षि रोहिनी, आप बास करि लीन्हौ—१०-४ ।

अकलंक—सज्ञा पु० [सं० कलंक] दोष, लांछन ।

अकलंकता—सज्ञा स्त्री० [स.] कलंकहीनता, निर्दोषिता ।

अकलंकित—वि० [स.] निष्कलंक, निर्दोष, शुद्ध, निर्मल । उ०—अलक तिलक राजत अकलंकित मृगमद अंग बनी—पृ. ३१६ ।

अकल—वि० [स.] (१) अखंड, सर्वांगपूर्ण । उ०—प्रेम पिये बर बारुनी बलकत बल न सँभार । पग डगडग जित तित धरति मुकुलित अकल लिलार—११८२ । (२) परमात्मा का एक विशेषण । उ०—(क) पहिलै हौ ही हो तब एक । अमल, अकल, अज, भेद-बिबजित, सुनि बिधि बिमल बिदेक—२-३८ । (ख) फिरत बन बन बिकल सहस सोरह सकल ब्रह्मपूरन अकल नही पावै— । १८०६ ।

सज्ञा स्त्री० [अ. अकल] बुद्धि, समझ, ज्ञान । उ०—इंद्र ढीठ बलि खाइ हमारी देखौ अकल गमाई—६८५ ।

वि. [सं. अ = नहीं + कला] बिना कला या चतुराई का ।

वि. [सं. अ = नहीं + हि कल = वैन] विकल, व्याकुल, बेचैन ।

अकलै—वि. [सं. अकल] बिना कला या चतुराई का, निगुणी ।

संज्ञा [सं. अ = नहीं + हि कल = वैन] (१) विकलता, व्याकुलता । (२) गुणहीनता । उ.—जगर, ठीठ, गुमानी, टूँडक, महा मसखरा, रूखा । मचला, अकले-मून, पानर, खाऊँ खाऊँ करि भूखा—१-१८६ ।

अकस—संज्ञा पु. [अ.] बैर, द्वेष, डाह, ईर्ष्या, विरोध, होड़ ।

अकसना—क्रि. स [हि अकस] बैर या शत्रुता करना, गार ठानना ।

अकस—क्रि. वि. [सं. एक + तर (प्रत्य.)] अकेले, बिना किसी को साथ लिए ।

अकह—वे. [सं. अकथ, प्रा. अकह] (१) जो कही न जा सके, अकथनीय, अवर्णनीय । (२) अनुचित, बुरी ।

अकहुवा—वि. [सं. अकथ, प्रा. अकह] जो कहा न जा सके, अकथनीय ।

अकाज—संज्ञा पु. [सं. अ = नहीं + हि. काज] (१) कार्य हानि, बिघ्न, बिगाड़ । (२) दुष्कर्म, खोटा काम ।

क्रि. वि.—व्यर्थ, निष्प्रयोजन ।

वि.—महत्त्वहीन । उ.—अबलौ नान्हे-नून्हे तारे, ते सब बूथा-अकाज । सॉचे बिरद सूर के तारत लोकनि-लोक अवाज—१-६६ ।

अकाजना—क्रि. अ. [हि. अकाज] (१) हानि होना, खो जाना । (२) मर जाना ।

क्रि. स.—हानि करना, बिघ्न डालना ।

अकाजी—वि. [हि. अकाज] कार्य की हानि करनेवाला, बाधक, बिघ्नकारी ।

अकाथ—क्रि. वि. [सं. अकृतार्थ] अकारथ, व्यर्थ, निष्फल, निरर्थक । उ.—(क) कर्म, धर्म, तीरथ बिनु राधन, ह्वै गए सकल अकाथ । अभय दान दै अपनौ कर धरि सूरदास के माथ—१-२०८ । (ख) रह्यौ न परै सु प्रेम आतुर अति जानी रजनी जात अकाथ—२-७३६ ।

वि. [सं. अकथ्य] न कहने योग्य, अकथनीय, अनिर्वचनीय ।

अकाम—वि. [सं. अ = नहीं + काम = इच्छा] कामनारहित, निस्पृह, इच्छारहित ।

अकामी—वि. [सं. अकामिन्] कामनारहित, इच्छा-हीन ।

अकार—संज्ञा पु० [सं० आकार] (१) स्वरूप, आकृति, मूर्ति, रूप । उ०—कुच युग कुंभ सुडि रोमावलि नाभि सुहृदय अकार । जनु जल सोखि लयौ से-सविता जोवन गज मतवार—२०६२ । (२) सादृश्य, साम्य । उ०—तैन जलद निमेष दामिनि आँसु बरषत धार । दरस रबि ससि दुत्यौ धीरज स्वास पवन अकार—२८३४ । (३) बनावट, संघटन । (४) चिह्न ।

अकारज—संज्ञा पु० [सं० अकार्य] हानि, कार्य की हानि ।

अकारथ—वि० [सं० आकार्यार्थ, प्रा० अकारियत्थ] निष्फल, निष्प्रयोजन, व्यर्थ, बूथा ।

क्रि० वि०—व्यर्थ, निष्प्रयोजन । उ०—(क) आछौ गात अकारथ गारचौ । करी न प्रीति कमल-लोचन सौ, जनम जुवा ज्यौ हारचौ—१-१०१ । (ख) रे मन, जनम अकारथ खोइसि । हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्ही, उदर भरे परि सोइसि—१-३३२ । (ग) पाँच बान मोहि सकर दीन्हे, तेऊ गए अकारथ—१-२८७ ।

अकारन—वि० [सं० अकारण] (१) बिना कारण का । (२) निस्वार्थ । (३) जो किसी से उत्पन्न न हो ।

अकार्थ—वि० [सं० अकार्यार्थ, प्रा० अकारियत्थ, हि० अकारथ] व्यर्थ, निष्प्रयोजन ।

क्रि० वि०—व्यर्थ, निष्प्रयोजन । उ०—साधु-सग भक्ति बिना तन अकार्थ जाई—१-३३० ।

अकाल—संज्ञा पु० [सं०] अनुपयुक्त समय, कुसमय । उ०—यह बिनती हो करौ कृपानिधि, बार-बार अकुलाइ । सूरजदास अकाल प्रलय प्रभु, मेटौ दरस दिखाइ—६-११० ।

अकास—संज्ञा पु० [सं० आकाश] (१) अंतरिक्ष, आसमान,

गगन । २) शून्य । उ०—जदुपति जोग जानि जिय
साँचे नयन अकास चढायो—२६२२ ।

मुहा०—गहौ अकास—अनहोनी या असंभव बात
करते हो । उ०—बातनि गहौ अकास सुनहि न आवै
साँस बोलि तौ कछू न आवै ताते मौन गहियै—
१२७३ ।

अकास गुण—सज्ञा पुं० [स० आकाश + गुण] आकाश
का गुण, शब्द । उ०—गुन अकास को सिद्ध साधना
सास्त्र करत बिस्तार—सा० १०४ ।

अकासबानी—सज्ञा स्त्री० [स० आकाशबानी] आकाश
से कहे हुए शब्द, देववाणी । उ०—भई अकासबानी
तिहि बार । तू ये चारिं श्लोक बिचार—२-३७ ।

अकासै—सज्ञा० पुं० सवि० [स० आकाश] आकाश
में, आकाश को । उ०—यह कहिकै सो चली
पराई । जैसे तडित अकासै जाई—६-२ ।

अकीरति—सज्ञा स्त्री० [स० अकीर्ति] अग्रश, अपयश ।

अकुंठ—वि० [स०] (१) तीक्ष्ण, पैनी । (२) तीव्र,
तेज ।

अकुंचत—क्रि० अ० [हि० संकुचन-अकुंचन] भलिन
या उदास होता है । उ०—काहे को पिय सकुंचत
हो । अब ऐसो जिनि काम करौ कहूँ जो अति ही
जिय अकुंचत हो—२१५३ ।

अकुल—वि० [स०] (१) कुलरहित, परिवारहीन । (२)
नीचे वंश का ।

अकुलाइ, अकुलाई—क्रि० अ० [हि० अकुलाना] घबड़ा
कर, व्याकुल होकर, दुखी होकर । उ०—(क) रोवत
देखि कह्यो अकुलाई, कहा कर्यो तै बिप्र अन्ध्याई—
१०-५७ । (ख) बिरह-बिथा तन गई लाज छुटि,
बारंबार उठै अकुलाई—६-५६ । (ग) मै अज्ञान
अकुलाई अधिक लै, जरत माँझ धृत नायौ—
१-१५४ । (ग) निसि दिन पथ जोहत जाइ । दधि
को सुत-सुत तासु आसन बिकल हो अकुलाई—
सा० २२ ।

अकुलाए—क्रि० अ० [हि० अकुलाना] (१) उतावले
हुए, ऊब गए, उकता गए । उ०—(क) लिखि मम
अपराध जनम के चित्रगुप्त अकुलाए—१-१२५ ।
(ख) रथ तै उतरि अबनि आतुर ह्वै, चले चरन

अति धाए । भू संचित भू-भार-उत्तरन, त्रिपल भाइ
अकुलाए—१-२७३ । (२) घबड़ाए, व्याकुल हुए ।

अकुलात—क्रि० अ० [हि० अकुलाना] (१) व्याकुल
या दुखी हैं, घबड़ाते हैं । उ०—(क) दसरथ-सुत,
कोसलपुरवासी, क्रिया हरी तातै अकुलात—
६-६६ । (ख) विधि लिखी नहिं टरत कैसेहु, यह
कहत अकुलात—२६१७ । (ग) सूरदास प्रभु तुम्हरे
मिलन को अति आतुर अकुलात—सा० उ० ३ ।
(२) जल्दी करता है, उतावला है । उ०—कल्प-समान
एक छिन राघव, क्रम-क्रम करि है चितवत । तातै
हो अकुलात, कृपानिधि ह्वै पैडो चितव—
६-८७ । (३) धीरज खोता है, बेचैन है । उ०—
उ०—पूछौ जाइ तात सौ बात । मै बलि जाउँ
मुखारबिद की तुमही काज कस अकुलात—५३० ।

अकुलान—क्रि० अ० [हि० अकुलाना] घबड़ाया,
व्याकुल हुआ, बेचैन हुआ । उ०—डोलत महि
अधीर भयो फनिपति कूरस अति अकुलान—६-२६ ।

अकुलानी—क्रि० अ० स्त्री० [हि० अकुलाना] (१)
व्याकुल हुई, दुखी या बेचैन हुई । उ० (क) परै ब्रज
या नृपति-सभा पै कहति प्रजा अकुलानी—१-२५० ।
(ख) जब ज्ञानी जननी अकुलानी । आपु बंधायो
सारंगपानी—३६१ । (२) घबरा गई, चकपका गई ।
उ०—कर तै साँटि गिरत नहिं जानी, भुजा छाँड़ि
अकुलानी । सूर कहै जसुमति मुख मूंदौ, बलि गई
सारंगपानी—१०-२५५ ।

अकुलाने—क्रि० अ० [हि० अकुलाना] (१) घबड़ाए,
व्याकुल हुए, बेचैन हुए । उ०—(क) हरि
पीवत जब पाइ । बढ्यो बृच्छ बंट, सुर अकुलाने,
गगन भयो उतपात । महाप्रलय के मेघ उठे करि जहाँ
तहाँ आघात—१०-३४ । (२) आवेग में आए,
झुंझलाए । उ०—अति रिसही तै तनु छीजै, सुठि
कोमल अंग पसीजै । बरजत बरजत बिरभाने । करि
क्रोध मनहिं अकुलाने—१०-१८३ ।

अकुलानै—क्रि० अ० [हि० अकुलाना] उतावला होकर,
घबराकर । उ०—बालभाव अनुसरति भरति दृग,
अग्र अमुकन आनै । जनु खजरीट जुगल जठरातुर
लेत सुभष अकुलानै—२०५३ ।

अकुलानौ—क्रि० अ० [हि० अकुलाना] घबड़ाने लगा,
झाँकुंज हुआ। उ०—यह सुनि दूत गयी लका में,
सुनत नगर अकुलानौ—६-१२१।

अकुलान्यौ—क्रि० अ० [हि० अकुलाना] घबड़ाया, दुखी
या बेचैन हुआ। उ०—यह सुनि नंद डराइ, अतिहिं
मन-मन अकुलान्यौ—५८६।

अकुलाथ—क्रि० अ० [हि० अकुलाना] व्याकुल होकर,
घबड़ाकर। उ०—गोपपति लबन के बैरी आन के
अकुलाय। पक्षिराज सुनाथ पतिनी भोगिबो चित
चाय—सा. उ. ४५।

अकुलायो—क्रि० अ० [हि० अकुलाया] (१) व्याकुल
हुआ। (२) चकित हुआ, चकपकाया। उ०—कपिल
कुलाहल सुनि अकुलायो—६-६।

अकुलाही—क्रि. अ. [हि. अकुलाना] दुखी होती है,
घबड़ाती है। उ०—माध-तुषार जुवति अकुलाही।
हयाँ कहूँ नंद-सुवन तो नाही—७६६।

अकुलीन—वि. [सं.] बुरे कुल का, नीच वंश का।
उ०—गुरुष अरु नारि कौ भेद भेदा नहीं कुलिन
अकुलीन आवत ही काके—२६३५।

अकूत—वि. [सं. अ+हि. कूतना] जिसका अनुमान न
लगाया जा सके, जो कूता न जा सके, असीम,
अपरिमित। उ०—(क) धन्य नंद, धनि धन्य जसोदा,
जिन जायो अस पूत। धन्य भूमि, ब्रजबासी धनि-
धनि, आनंद करत अकूत—१०-३६। (ख) निसि
सपने को तृप्ति भए अति मुन्यो कंस को दूत। सूर
नारि नर देखन धाए घर घर सोर अकूत—२४६२।

अकूहल—वि. [देश.] बहुत, अधिक, असंख्य। उ०—
खलत हँसत करे कौतूहल। जुरे लोग जहँ तहाँ
अकूहल—१०२२।

अकृत—वि. [सं.] (१) निकम्मा, कर्महीन, मंद।
उ०—नाहिन मेरै और कोउ, बलि, चरन-कमल
बिनु ठाउँ। हौँ असौज, अकृत (अक्रित) अपराधी,
सन्मुख होत लजाउँ—१-१२८। (२) प्राकृतिक।
(३) त्रित्य, स्वयंभू।

संज्ञा स्त्री. [सं. आकृति] आकृति। उ०—ताटक
तिलक सुदेस झलकत खचित चूनी लाल। अकृत
बिकृत बदन प्रहसित कमल नैन बिसाल—२२६०।

अकृपा—संज्ञा स्त्री. [सं. अ+कृपा] कृपा का अभाव,
क्रोध। उ०—बदन-प्रसन्न-कमल सनमुख हँ देखत
हौँ हरि जैसे। विमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिरि
चितयो तो तैसे।

अकेल—वि. [सं. एक+हि. ला (प्रत्य)=प्रकेला] बिना
संगी-साथी का, अकेला, एकाकी। उ०—(क) भारत-
जुद्ध बितत जब भयो। दुरजोधन अकेल रहि गयो—
१-२८६। (ख) बैठी आजु रही अकेल। आइगो
तब लौ बिहारी रसिक रुच बरबेल—सा १०१।

अकेली—वि. स्त्री. [सं. एक+हि. ली (प्रत्य)] (१)
जिसके साथ कोई न हो, एकाकी। उ०—(क) अहो
बंधु, काहूँ अवलोकी इहि मग बधू अकेली—६-६४।
(ख) आजु अकेली कुज भवन में बैठी बाल बिसूरत—
सा ३। (ग) कुजभवन ते आज राधिका अलस
अकेली आवत—सा. १३। (२) केवल, सिर्फ।
उ०—दूध अकेली धोरी कौ यह तन कौ अति
हितकारि—४६६।

अकेलौ—वि. [सं. एक+हि. ला (प्रत्य)=प्रकेला]
जिसके साथ कोई न हो, बिना साथी का। उ०—मग
लगाइ बीचही छाड़्यौ, निपट अनाथ अकेलौ—१-
१७५।

अकोट—वि. [सं. कोटि] करोड़ों, असंख्य।

संज्ञा पु. [हि. कोट] कोट के भीतर का कोट, अंत-
दुर्ग। उ०—रही दे घूँघट पट की ओट। मनो कियो
फिरि मान मवासो मनमथ बिकटे कोट। नहसुत
कील कपाट सुलच्छन दै दूग द्वार अकोट। भीतर
भाग वृष्ण भूपति को राषि अधर मधु मोट—सा. उ.
१६।

अकोर—संज्ञा पु. [सं. अंकपालि या अंकमाल, हि. अंकवार
अंकोर] (१) भेंद, घूस, रिश्चत। उ०—(क) फूले
फिरत दिखावत औरन निडर भए दै हँसनि अकोर—
२१३१। (ख) गए छँड़ाइ तोरि सब बंधन दै गए
हँसनि अकोर—३१५३। (२) गोद।

अकोरी—संज्ञा स्त्री. [सं. अंकपालि, अंकमाल, हि. अंक-
वार] गोद, छाती। उ०—यहि ते जो नेकु लुबुधियो
री। गहत सोइ जो समात अकोरी—३३४५।

अकोविद—वि. [सं.] मूर्ख, अज्ञानी।

अकोसना—क्रि. स. [सं. आक्रोशन] कोसना, गालियाँ देना ।

अक्रम—वि. [सं.] क्रमरहित, बेसिलसिले ।

अक्रित—वि. [सं. अकृत] निकम्मा, बेकाम, कर्महीन, मंद । उ.—हौ असौच, अक्रित, अपराधी, सनमुख होत लजाउँ । तुम कृपाल, करुनानिधि, केसव, अधम उधारन-नाउँ—१-१२८ ।

अक्रूर—संज्ञा पु. [सं.] एक यादव जो श्रीकृष्ण का चाचा लगता था । यह श्वफल्क और गाँदिनी का पुत्र था । कस की आज्ञा से श्रीकृष्ण-बलराम को यही मथुरा बुला ले गया था ।

अक्षयवृक्ष—संज्ञा पु. [सं.] प्रयाग और गया में बरगद का एक वृक्ष जो प्रलय में भी नष्ट न होने के कारण 'अक्षय' कहलाता है । उ.—प्रक्षय वृक्ष बट बढतु निरंतर कहा ब्रज गोकुल गाइ—६४५ ।

अक्षौ—वि. [सं. अक्षय] जिसका क्षय न हो, कभी न चुकनेवाला । उ.—हरि-पद-सरन अक्षौ फल पावे—१६२४ ।

अक्षोनि—संज्ञा पु. [सं. अक्षौहिणी] अक्षौहिणी सेना ।

अखंड—वि. [सं.] (१) समूचा, पूरा, जो खंडित न हो । (२) जिसका क्रम, सिलसिला या धार न टूटे, अटूट । उ.—सलिल अखंड धार धर टूटत कियौ इद्र मन सादर । मेघ परस्पर यह कहत है धोइ करहु गिरि खांदर—६४८ । (३) निर्विघ्न ।

अखंडल—वि. [सं. अखंड] (१) अखंड, अटूट । (२) पूरा, सारा ।

अखंडित—वि. [सं.] (१) भागरहित, अविच्छिन्न । (२) संपूर्ण, पूरा । उ.—(क) सर्वोपरि आनंद अखंडित सूर-मरम लषिटानी—१-८७ । (ख) वे हरि सकल ठौर के वासी । पूरन ब्रह्म अखंडित मंडित पंडित मुनिन बिलासी । (३) निर्विघ्न, बाधारहित । (४) लगातार ।

अखर—संज्ञा पु. [सं. अक्षर] अक्षर ।

अखर्ब—वि. [सं. अ=नहीं + हि. खर्ब=छोटा] जो छोटा न हो, बड़ा, जंबा ।

अखाद—वि. [सं. अखाद्य] न खानेयोग्य, अभक्ष्य ।

उ.—खाद-अखाद न छाँडै अब लौ, सब मै साधु कहावे—१-१८६ ।

अखारा—संज्ञा पु. [सं. अक्षवाट, प्रा. अक्खआडो, हि. अखाडा] सभा, दरबार, रंगशाला । उ.—तहाँ देखि अप्सरा-अखारा । नृपति कछु नहि बचन उचारा—६-४ ।

अखिल—वि. [सं.] (१) संपूर्ण, समग्र । उ.—(क) तुम सर्वज्ञ, सबे बिधि पूरन, अखिल भुवन निज नाथ १-१०३ । (ख) तुम हर्ता तुम कर्ता एकै तुमहो अखिल भुवन के साँई—२५५८ । (२) सर्वांगपूर्ण, अखंड । उ.—तुमही ब्रह्म अखिल अविनासी भवतन सदा सहाय ।

अखीन—वि. [सं. अक्षीण, प्रा. अक्खीण] स्थिर, नित्य, अक्षीण ।

अखुटित—वि. [सं. अ=नहीं + खुटना=समाप्त होना] निरंतर, असमाप्त । उ.—अखुटित रहत समीत ससकित सुकृत सबद नहि पावे—१-४८ ।

अखूट—वि. [सं. अ=नहीं + खडन=रोटना, खंडित करना] अखंड, अक्षय, बहुत, अधिक । उ.—नैना अतिही लोभ भरे । । लूटत रूप अखूट दाम को स्याम बस्य भो मोर । बडे भाग मानी यह जानी इनते कृपिन न और—१८३३ ।

अखेट—संज्ञा पु. [सं. आखेट] अहेर, शिकार, मृगया । उ.—जब अखेट पर इच्छा होइ । तब रथ साजि चलै पुति सोइ—४-१२ ।

अखेटक—संज्ञा पु. [सं. आखेटक] शिकार, अहेर । उ.—(क) सब दिन याही भाँति बिहाइ । दिन भर, बहुरि अखेटक जाइ—४-१२ । (ख) इक दिन ताते अनुज सौ मागी लै गयो अखेटक राजा—१० उ.—२६ ।

अखेलत—वि. [सं. अ=नहीं + केलि=खेल] (१) अचंचल, अलोल । (२) आलस्ययुक्त, उनींदा ।

अखै—वि. [सं. अक्षय] अक्षय, अविनाशी ।

अखोलि—क्रि. वि. [सं. अ=नहीं + हि. खोलना] कसकर, दृढ़तापूर्वक । उ.—रसना जुगल रसनिधि बोलि । कनकबेलि तमाल अरुभी सुभुज बघ अखोलि सा. उ.—५ ।

अख्यान—संज्ञा पु. [स आख्यान] (१) वर्णन, वृत्तान्त ।
(२) कथा, कहानी ।

अग—वि [म.] न चलनेवाला, अचर, स्थावर । उ—
अग जग जीव जल थल गनत सुनत न सुधि लहौ—
१० उ.—२४ ।

वि [स अज्ञ] मूढ़ अनजान ।

अगड़—मज्ञा पु. [हि अकड़] अकड़, ऐंठ ।

अगति—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) दुर्दशा, दुर्गति । (२)
मृत्यु के पीछे की बुरी दशा, मोक्ष की अप्राप्ति, नरक ।
उ.—(क) सूरदास हरि भजौ गर्ब तजि, विमुख
अगति कौ जाही—२-२३ । (ख) कहौ तौ लक
उखारि डारि देउँ, जहाँ पिता संपति कौ । कहौ तौ
मारि सँहारि निसाचर, रावन करौ अगति कौ—
६-८४ ।

अगतिक—वि० [सं०] अनाथ, निराश्रित ।

अगतिनि—सज्ञा पु. बहु [स. अगती + नि (हि. प्रत्य)]
पापी मनुष्य, कुमार्गी व्यक्ति, वे जो मोक्ष के अधिकारी
न हों । उ.—जय जय जय जय माधवबेनी । जग
हित प्रगट करी करुनामय, अगतिनि कौ गति दैनी—
६-११ ।

अगती—वि० [स अगति] कुमार्गी, दुराचारी ।

अगजत, अगनित—वि. [सं. अगणित] (१) अनगिनती,
असंख्य, अनेक, बहुत । उ.—(क) बंदौ चरन-सरोज
तिहारे । । जे पद-पदुम रमत बृदावन
अहि-सिर धरि अगनित रिपु मारे—१-६४ । (ख)
अगनित गुन हारिनाम तिहारै—१-१५७ । (२)
महान्त, अपार । उ.—सूरदास प्रभु-अगनित महिमा,
भगतनि कै मन भावत—१-१२५ ।

अगनिय—वि. [सं. अगनी + हि. गिनना] अगणित,
अनगिनती । उ.—जुवत स्याम नद की कनियाँ.....
.... । बरी, बंरा, बेसन बहु भौतिन, व्यंजन् बिबिध,
अगनियाँ—१०-२३८ ।

अगनू, अगनेउ, अगनेत—संज्ञा स्त्री० [सं० आग्नेय]
अग्निकोण ।

अगम—वि० [सं० अगम्य] (१) जहाँ कोई जा न
सके । पहुँच के बाहर । उ.—(क) जीव जल थल
जिते, बेष धरि धरि तिते, अटत दुरगम अगम अचल ।

भारे—१ १२० । (ख) देखत बन अति अगम डरौ वै
मोहि डरपावै—४३७ । (२) न मिलने योग्य, दुर्लभ ।
उ.—भक्त जमुने सुगम, अगम औरै—१-२२२ । (३)
अपार, अत्यंत, बहुत । उ.—समुक्ति अब निरखि जानकी
मोहि । बडौ भाग गुनि, अगम दसानन, सिव बर
दीनौ तोहि—६-७७ । (४) न जानने योग्य, बुद्धि से
परे, दुर्बोध । उ०—(क) मन-बानी कौ अगम-
अगोचर, जो जानै सो पावै—१-२ । (ख) ब्रह्म
अगोचर मन-बानी तै, अगम अनत प्रभाव—२-३४ ।
(५) अथाह, बहुत गहरा । उ.—(क) अगम सिंधु
जतननि सज्जि नौका, हठि क्रम-भार भरत । सूरदास
ब्रत यहै, कृष्ण-भजि, भव-जलनिधि उतरत—१-५५ ।
(ख) सूर मरत मीन तुरत मिले अगम पानी—२६५२ ।
(६) विशाल बड़ा । उ.—(क) लंका बसत दैत्य
अरु दानव उनके अगम सरीर—६-८६ । (ख) कैमै
बचे अगम तरु के तर मुख चूमति, यह कहि
पछितावति—३६० ।

सज्ञा पु० [सं० आगम] अवाई, आगमन । उ.—
दादुर मोर कोकिला बोलै पावस अगम जनावै—
२८२५ ।

अगमति—वि० [सं० अगम + अति] बहुत अधिक,
बड़ी । उ.—आजु हौ राजकाज करि आऊँ । बेगि
सँहारौ सकल घोष-सिसु, जौ मुख आयसु पाऊँ । मोहन
मुर्छन-बसीकरन पढि, अगमति देह बढाऊँ—१०-४६ ।
अगमन—क्रि० वि० [सं० अग्रवान] आगे, पहले,
प्रथम । उ.—सो राजा जो अगमन पहुँचै, सूर सु
भवन उताल—१०-२२३ ।

अगमने, अगमनै—क्रि० वि० [सं० अग्रवान, हि०
अगमन] आगे, आगे से, प्रथम ही । उ.—(क)
इह लै देहु मारि सिर अपने जासो कहत कंत तुम मेरी ।
सूरदास सो गई अगमने सब सखियन सो हरि मुख
हेरी—६०३ । (ख) पौढे हुते पर्यंक परम रुचि
रुक्मिनि चमर डुलावति तीर । उठि अकुलाइ अगमने
लीने मिलत नैन भरि आये तीर—१० उ.—६१ ।
(ग) मोहन बदन बिलोकि थकित भए भाई री ये
लोचन मेरे । मिले जाइ अकुलाइ अगमने कहा भयो
जो घूँघट घेरे—१० ३३१ ।

अगमैया—वि. [स. अगम्य, हि. अगम] (१) न जानने योग्य, अगम, गहन । (२) अपार, अत्यंत, बहुत । उ. ब्रज मै को उपज्यौ यह भैया । संग सखा सब कहत परस्पर, इनके गुन अगमैया —४२८ ।

अगम्य—वि. [सं.] न जाने योग्य, गहन । (२) अज्ञेय, दुर्बोध ।

अगर—सज्ञा पु. [स. अग्र] एक पेड़ जिसकी लकड़ी सुगंधित होती है । उ—वदन अगर सुगंध और घृत, बिधि करि चिता बनायौ—६-२० ।

अगरता—क्रि. अ. [स. अग्र] आगे आगे जाना, बढ़ना ।

अगरी—स्त्री. [सं. अनर्गल] (१) अनुचित बात, बुरी बात । (२) धृष्टतायुक्त बात, अनुचित कथन । उ.—गेडुरि दई फटकारि कै हरि करत है लंगरी । नित प्रति ऐसेई ढग करै हमसो कहै अगरी—२५८ । (३) असंगत बात ।

अग्र—सज्ञा पु. [स.] अगर की लकड़ी, उद ।

अगरे—क्रि. वि. [स. अग्र] सामने, आगे ।

अग्रौ—वि. [स. अग्र, हि. अग्रो] (१) बढ़कर, श्रेष्ठ, उत्तम । उ.—(क) हम-तुम सब बैस एक, कातै को अग्रौ । लियौ दियौ सोई कछु, डारि देहु भगरो—१०-३३६ । (ख) सूर सनेहु ग्वारि मन अटक्यो छाँडहु दिए परत नहि पगरो । परम मगन ह्वै रही चितै मुख सबते भाग यही कौ अग्रौ—पृ. २३५ । (ग) हम तुम एक सम कौन कातै अग्रौ—१०५६ । (२) अधिक ज्यादा । उ—प्रोजन बीस एक अरु अग्रो डेरा इहि अनुमान । ब्रजबासी नर नारि पंति नहि मानो सिंधु समान—६२२ ।

सज्ञा पु. [स. आकर=वान, हि. आगर] (१) खान, आकर (२) समूह, ढेर । उ.—सूरदास प्रभु सब गुननि अग्रौ । और कहूँ जाइ रहे छाँडि ब्रज बगरो—१०५६ ।

वि. [स. आकर=पेष्ठ] चतुर, दक्ष, कुशल । उ.—सूर स्वाम तेरौ अति गुननि माहि अग्रौ । चोली अरु हार तोरि छोरि लियौ सगरौ—१० ३३६ ।

अगवना—क्रि. अ. [हि. आगे+ना (प्रत्य.)] किसी काम के लिए प्रस्तुत होना, आगे बढ़ना ।

अगवाई—सज्ञा स्त्री. [स. अग्र=आगे+आयान=आना] आगे से जाकर लेना, अभ्यर्थना ।

सज्ञा पु. [सं. अग्रगामी] आगे चलनेवाला, अग्रग्रा ।

अगवान—सज्ञा पु. [स. अग्र+वान] विवाह में बारात का स्वागत करनेवाले कन्या पक्षके लोग ।

सज्ञा पु. [स. अग्र+यान] (१) आगे से जाकर लेना । (२) विवाह में बारात का स्वागत करने कन्या पक्षवालों का जाना ।

अगवानी—सज्ञा स्त्री. [स. अग्र+यान] (१) आने वाले का आगे पहुँचकर स्वागत करना, पेशवाई । (२) आगे चलने की क्रिया । उ.—गँच - पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे । सुनी तगीरी, बिसरि गई सुधि मो तजि भए नियारे—१-१४३ ।

सज्ञा पु. [सं. अग्रगामी] अग्रग्रा, अग्रसर, पेशवा । उ.—सखी री पुर बनिता हम जाना । याही तै अनुमान होत है षटपद-से अगवानी—३४०२ ।

क्रि. अ.—आगे चली, अग्रगामिनी हुई । उ०—क्यो करि पावै बिरहिन पारहि बिन केवट अगवानी—२७६६ ।

अगमार, अगसारी—क्रि. वि. [सं. अग्रसर] आगे ।

अगस्त्य—सज्ञा पु. [सं.] (१) एक ऋषि जो मित्रा वरुण के पुत्र थे । ऋग्वेद में इ-की ऋचाएँ हैं (२) एक ऊँचे पेड़ की फली जिसकी तरकारी बनती है । उ.—फूल करील करी पाकर नम । फली अगस्त्य करी अमृत सम—२३२१ ।

अगह—वि० [सं० अग्राह्य] (१) जो पकड़ी न जा सके, अति चंचल । उ०—माधौ नेंकु हटकौ गाइ । भुमत निसि-त्रासर अपथ पथ, अगह गहि नहिँ जाइ—१-५६ । (२) जो वर्णन और चिंतन से बाहर हो । उ०—अगमते अगह अपार आदि अविगत है सोऊ । आदि निरजन नाम ताहि रजै सब कोऊ—३४४३ । (३) न धारण करने योग्य । उ०—ऊधौ जो तुम हमहिँ बतायौ । ... । जोग जाचना जबहिँ अगह गहि तबहीँ सौँ है ल्यायौ ।

अगहर—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्र+हि० हर (प्रत्य०)] (१) आगे । (२) पहले, प्रथम ।

अगहुँड़—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्र+हिं० हुँड़ (प्रत्य०)]
अगुआ, आगे चलनेवाला ।

क्रि० वि०—आगे, आगे की ओर ।

अगा—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे ही, पहले ही,
अभी से । उ०—सोवत कहा चेत रे रावन, अब क्यों
खात दगा ? कहति मँदोदरि, सुनु पिय रावन, मेरी
बात अगा—६-११४ ।

अगाउनी—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे ।

अगाऊ—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्र+हिं० आऊ (प्रत्य०)]
अगला, आगे का । उ०—जब हिरनाच्छ जुद्ध
अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरबाऊ । धरि बाराह
रूप सो मार्यौ, लै छिति दत्त-अगाऊ—१०-२२१ ।

क्रि० वि०—आगे, अगाड़ी, पहिले । उ०—(क)
हौ डरपौ, काँपौ अरु रोवौ, कोउ नहिं धीर
धराऊ । थरसि गयौ नहिं भागि सकौ, वै भागे
जात अगाऊ—४८१ । (ख) प्रीतम हरि हमको सिधि
पठई आयौ जोग अगाऊ—३११० ।

अगाध—वि० [सं०] (१) अथाह, बहुत गहरा ।
(२) जिसका कोई पार न पा सके, जो समझ में न
आए, दुर्बोध । उ०—(क) मनसा और मानसी सेवा
दोउ अगाध करि जानौ—१-२११ । (ख) ऐसी कहि
मोहिं कहा सुनावत तुमको यही अगाध—११२७ ।
(ग) सूरज प्रभु गुन अथाह धन्य धन्य श्री प्रियानाह,
निगमन कौ अगाध सहसानन नहिं जानै—२५५७ ।
(४) केसी अध पूतना निपाती लीला गुननि अगाध—
२१८० । (ड) रसना रटत सुनत जस स्रवनन इतनी
अगम अगाध—२७७८ । (३) अपार, असीम,
अत्यंत, बहुत । उ०—षोडस सहस नारि संग मोहन
कीन्हो सुख अगाध—१८३८ ।

अगाधा—वि० [सं० अगाध] (१) अपार, असीम,
अत्यंत । उ०—(क) जननी निरखि चकित रही
झाडी, दपति-रूप अगाधा—७०५ । (ख) भृकुटी
धनुष नैन सर साधे बदन बिकास अगाधा—१२३४ ।
(२) जो समझ में न आवे, अद्भुत, विचित्र ।
थाह या अनुमान से परे । उ०—मोको संग बोलि
तू लेती करनी करी अगाधा—१४७६ ।

अगाधो—वि० [सं० अगाध] अपार, असीम, बहुत ।

उ०—(क) करिहै कहा अक्रूर हमारी दैहै प्राण
अगाधो—२५०८ । (ख) सूरदास राधा बिलपति है
हरि कौ रूप अगाधो—२७५८ ।

अगान—वि० [सं० अज्ञान] अनजान ।

अगामै—क्रि० वि० [सं० अग्रिम] आगे ।

अगार—संज्ञा पु० [सं० आगार] (१) घर, निवास-
स्थान, धाम । उ०—दुख आवन कछु अटक न मानत
सूनो देखि अगार—२८८८ । (२) राशि, समूह ।

क्रि० वि०—आगे, पहले ।

अगास—संज्ञा पु० [सं० आकाश] आकाश । उ०—
का यह सूर अजिर अवनी तनु तजि अगास पिय
भवन समैहौ—१२०७ ।

अगाह—वि० [सं० अगाध] (१) अथाह, गहरा । (२)
अत्यंत, बहुत ।

क्रि० वि० [हिं० आगे] आगे से, पहले से ।

अगिआई—क्रि० अ० [सं० अग्नि, हिं० अगियाना]
सुलग जाय, बले । उ०—और कवन अबलन अत
धार्यौ जोग समाधि लगाई । इहि उर आनि रूप
देखे की आगि उठै अगिआई—३३४३ ।

अगिद्धा—वि० [सं० अग्नि+दग्ध] आग से जला हुआ ।
अगिदाह—संज्ञा पु० [सं० अग्नि + दाह] आग में
जलाना, भस्म करना ।

अगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] आग ।

वि० [सं० अ=नही+हिं० गिनना] अगणित
अपरिमित । उ०—साब कौ लक्ष्मण सहित लाए
बहुरि दियो दायज अगिन गिनी न जाइ—१० उ.
४६ ।

अगिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, हिं० अगिन] आग ।
उ०—अब तुम नाम गहौ मन-नागर । जातै काल-
अगिनि तै बाँचौ, सदा रहौ सुखसागर—१-६१ ।

अगिनित—वि० [सं० अगणित] अनगिनती, असंख्य ।
उ०—कटक अगिनित जुर्यो, लंक खरभर पर्यो,
सूर कौ तेज धर-धूरि-ढाँप्यो—६, १०६ ।

अगियाना—क्रि० अ० [सं० अग्नि] । जल उठना,
सुलग जाना ।

अगिलेऊ—वि० [सं० अग्र, हिं० अगला+ऊ (प्रत्य०)]
अगला भी, भावी भी, आगामी भी । उ०—रे पापी

तू पंखि पपीहा पिउ पिउ पिउ अधराति पुकारत ।
 ... । सूर स्याम बिनु ब्रज पर बोलत हठि
 अगिलेऊ जनम बिगारत—२८४६ ।

अगीठा—सज्ञा पु० [सं० अगीत=प्रागे, स० अग्र, प्रा०
 अग्न+स० इष्ट, प्रा० इट्ठ (प्रत्य०)] आगे का
 भाग ।

अगुसरना—क्रि० अ० [स० अग्रसर+ना (प्रत्य०)]
 आगे बढ़ना, अग्रसर होना ।

अगूठा—सज्ञा पु० [स० अगूढ] घेरा ।

अगेह—वि० [स० अ=नहीं+गेह=घर] जिसका घर न
 हो, गृहहीन ।

अगोचर—वि० [स०] (१) इंद्रियाँ जिसका अनुभव न
 कर सकें, इंद्रियातीत, अव्यक्त । उ०—मन बानी कौं
 अगम अगोचर जो जानै सो पावै—१-२ ।
 (२) दिखाई न देना, अदृश्य । उ०—जब रथ भयो
 अदृष्ट अगोचर लोचन अति अकुलात—२५४१ ।

अगोट—सज्ञा पु० [स० अग्र=हि० ओट=प्राङ्]
 (१) रोक, ओट, आड़ । उ०—नहसुत कील कपाट
 सुलक्षण दै दूग द्वार अगोट । भीतर भाग कृष्ण
 भूपति कौ राखि अधर मधु मोट—२२१८ । (२)
 आश्रय, आधार ।

अगोटना—क्रि० स० [सं० अग्र, प्रा० अग्न+हि०
 ओट+ना (प्रत्य०)] (१) रोकना, घेरना । (२) पहरें
 में रखना, बंदी करना । (३) छिपाना ।

क्रि० स० [स० अग्र=शरीर + हि० ओटना
 (प्रत्य०)] (१) अंगीकार करना । (२) पसंद करना ।

क्रि० अ०—रुकना, अड़ना ।

क्रि० स० [स० अगूढ] चारों ओर से घेरना ।

अगोटी—क्रि० अ० [हि० अगोटना] रुकी हुई, फँसी
 हुई, उलझी हुई । उ०—दोउ भैया भैया पै माँगत, दै
 री भैया, माखन-रोटी । सुनत भावती बात सुतनि की,
 भूठहिं धाम के काम अगोटी—१०-१६५ ।

अगोरना—क्रि० स० [सं० अग्र=प्रागे] (१) बाट जोहना,
 प्रतीक्षा करना । (२) रखवाली करना । (३) रोकना,
 छेकना ।

अगोरि—क्रि० स० [सं० अग्र=प्रागे, हि० अगोरना]
 रोककर, छेक कर । उ०—मेरे नैनन ही सब खोरि ।

स्याम बदन छबि निरख जु अटके बहुरे नही बहोरि ।
 जो मै कोटि जतन करि राखति घूँघट ओट अगोरि ।
 पृ० ३३३ ।

अगौनी—क्रि० वि० [स० अग्र, प्रा० अग्न, हि० अग-
 वानी] आगे ।

सज्ञा स्त्री—अगवानी ।

अगौहैं—क्रि० वि० [सं० अग्रमुख] आगे, आगे की ओर

अग्नि—सज्ञा स्त्री० [स०] आग, उष्णता । उ०—जठर
 अग्नि कौ ब्यापै ताव—३-१३ ।

अग्नीध्र—सज्ञा पु० [स०] स्वयंभू मनु के आत्मज राजा
 प्रियव्रत का पुत्र । उ०—ब्रह्मा स्वयंभुव मनु जायौ ।
 ताते जन्म प्रियव्रत पायौ । प्रियव्रत के अग्नीध्र
 सु भयौ—५-२ ।

अग्यान—वि० [स० अज्ञान] ज्ञानशून्य, जड़, मूर्ख ।
 उ०—मै अग्यान अकुलाइ, अधिक लै, जरत माँझ
 घूत नायौ—१-१५४ ।

सज्ञा स्त्री०—मुग्धा नायिका । उ०—हान दिनपति
 सीस सोभा रंच राजत आज । सूर प्रभु अग्यान
 मानो छपी उपमा साज—सा० २ ।

अग्र—संज्ञा पु० [स] आगे का भाग, सिरा, नोक ।
 उ०—हरि जब हिरन्याच्छ कौ मारद्यौ । दसन-अग्र
 पृथ्वी कौ धारद्यौ—७-२ ।

क्रि० वि० (१) आगे । उ०—(क) निधरक भयो
 चलयौ ब्रज आवत अग्र फौजपति मैन—२८१६ ।
 (ख) दसनराज जो महारथी सो आवत अग्र अनूप—
 सा० ८२ । (२) में, पर, ऊपर । उ०—(क) बहुत
 श्रेय पुन कुत अग्र मे नीतन सो रंग सारो—सा०
 ८३ । (क) कुत अग्र गज औ नीकन मे आपुन ही ते
 देहै—सा० ६७ ।

वि० अगला, प्रथम, श्रेष्ठ, उत्तम ।

क्रि० वि०—(१) आगे करके, सामने रखकर,
 ओट लेकर । उ०—मधुकर काके मीत भए । दिवस
 चारि करि प्रीति सगाई, रस लै अनत भए । डहकत
 फिरत आपने स्वारथ पाखड अग्र दए । चाड सरे
 पहिचानत नाहिंन प्रीतम करत नए—५१२ । (२)
 आगे से, पहिले ही से, अभी से । उ०—याहि मारि
 तोहि और बिवाहीं अग्र सोच क्यों मरई—१०-४ ।

अग्रज—सज्ञा पु० [सं०] (१) बड़ा भाई । (२) नायक, नेता ।

वि.—श्रेष्ठ, उत्तम ।

वि. [स. अग्र=प्रागे] अग्रिम, पहला । उ.—प्रभुजू यो कीन्ही हम खेती । । इन्द्रिय मूल किसान, महातून-अग्रज बीज बई । जन्म-जन्म की त्रिषय-बासना उपजत लता नई—१-१८५ ।

अव—सज्ञा पु. [स.] (१) पाप, पातक, अधर्म ।

उ.—प्रतिहि किए अघ भारे—१-२७ । (२) मथुरा के राजा कंस का एक सेनापति अवासुर जो श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था । उ.—(क) अघ - अरिष्ट-केसी काली मथि दावानलहि पियौ—१-१२१ । (ख) अघ बक बच्च अरिष्ट केसी मथि जल तै काढ्यौ काली—२५३७ । (ग) नद नहि निकद कारन अघ सघारन धीर—सा ६३ ।

अघट—वि. [स. अ=नहीं+घट=होना] (१) जो कार्य में परिणत न हो सके । (२) दुर्बल, कठिन । (३) जो ठीक न घटे, बेमेल, अनुपयुक्त ।

वि. [स. घट=हिंसा करना] (१) जो कभी न घटे, अशय (२) एकरस, स्थिर । उ—जहँ तहँ मुनिवर निज मर्यादा थापी अघट अपार । (३) सर्वोपयुक्त, पूर्ण ।

अघट उपमा—सज्ञा स्त्री. [सं. अ=ही+घट=घटना कम होना, अघट=जो कम न हो=पूर्ण+उपमा] अशुतोपमा, पूर्णोपमा अलंकार । वह अलंकार जिसमें उपमा के चारो अंग उपमान, उपमेय, साधारण धर्म और वाचक शब्द वर्तमान हों । उ.—सूरस्याम सुजान सुकिया अघट उपमा दाव—सा. १ ।

अघटित—वि. [स.] (१) जो घटित न हुआ हो । (२) जिसका घटना संभव न हो । (३) अमिट, अनिवार्य । (४) अयोग्य, अनुचित ।

वि. [सं. घट=हिंसा] (१) न घटने योग्य, बहुत अधिक । (२) अभक्ष्य, अखाद्य । उ.—उदर-अर्थ चोरी हिंसा करे, मित्र बधु सौ लरतौ । रसना-स्वाद सिथिल, लंपट ह्वै अघटित भोजन करतौ—१-२०३ ।

अघहर—सज्ञा स्त्री. [सं. अघ=पाप+हर=हरण करने काभी] पापों का हरण करनेवाली त्रिवेणी । इसका

संचित रूप होता है 'वेणी' जिसका दूसरा अर्थ 'केश-पाश' या चोटी होता है । उ.—अघहर सोहत सुरन समेत । नीतन ते बिछुरो सारंगसुत कुत अग्र ते बदन रेख—सा. ६६ ।

अघा—सज्ञा पु. [स. अघ] अघासुर जो मथुरा के राजा कंस का सेनापति था और कृष्ण द्वारा मारा गया था । उ.—अनजानत सब परे अघा मुख-भीतर माही—४३१ ।

अघाइ—क्रि. अ. [हिं अघाना] भोजन-पान से तृप्त होती है, छकती है । उ.—(क) माधौ नैकु हटकौ गाइ' ब्योम, धर, नद सैल, कानन इतै चरि न अघाइ—१-५६ । (ख) राजनीति जानौ नही, गोसुत चरवारे । पीवौ छाँछ अघाइ कै, कब के रयवारे—१-२३८ ।

अघाई—क्रि. अ. [हिं अघाना] इच्छा पूर्ण हुई, संतुष्ट या तृप्त होता है, मन भरता है । उ.—(क) जब तै जनम-मरन अंतर हरि, करत न अघहि अघाई—१-१८७ । (ख) फिरि दरस करत एही मिसि प्रेम न प्रीति अघाई—१००० ।

अघाऊँ—क्रि. अ. [हिं अघाना] तृप्त या संतुष्ट होऊँ । उ.—ऐसो को दाता है समरथ, जाके दिये अघाऊँ—१-१६४ ।

अघाऊँ—क्रि. स. [हिं अघाना] संतुष्ट या तृप्त करूँ, इच्छा पूर्ण करूँ । उ.—ररै भहराय भभकत रिपु घाइ सौ, करि कदन रुधिर भैरो अघाऊँ—६-१२६ ।

अघाए—क्रि. अ. [हिं अघाना] (१) भोजन से तृप्त हो गए । उ.—कौरव काज चले रिषि सापन साक-पत्र सु अघाए—१-२३ । (२) तृप्त हुये (३) प्रसन्न हुये ।

अघात—वि. [हिं अघाना] पेट भर, खूब, अधिक, बहुत । उ.—तब उन माँगी इन नहि दीन्ही, बाढ्यौ बैर अघात ।

क्रि. अ. [स. आघात=ताक तक, हिं अघाना] संतुष्ट या तृप्त होता है । उ.—निपट निसक बिबादति सम्मुख, सुनि सुनि नद रिसात । मोसो कहति कृपन तेरे घर ढोटाहू न अघात—१०-३२६ ।

सज्ञा पु. [स. आघात] चोट, मार, प्रहार धक्का । उ.—दुहुँ कर माट गह्यौ नैदनदन, छिटकि

बूंद-दधि परत अघात । मानौ गज-मुक्ता मरकत पर
सोभित सुभग साँवरे गात—१०-१५६ ।

अघाति—क्रि. अ. [हिं अघाना] भोजन पान से तृप्त
होती है, छकती है । उ. माधो नैकु हटकौ गाइ.....
छधित अति न अघाति कबहूँ, निगम-द्रुम-दलि खाइ—
१-५६ ।

अघाना—क्रि. अ. [स. आघ्राण=नाक तक] (१) भोजन
या पान से तृप्त होना । (२) संतुष्ट होना, इच्छा
पूर्ण होना । (३) प्रसन्न होना । (४) थकना, ऊबना ।
(५) पूर्णता को पहुँचना ।

अघाने—क्रि. स. बहु. [हिं. अघाना] भोजन-पान से
तृप्त हुये, छक गए । उ.—(क) बल - मोहन दोउ
जेवत रुचि सौ, सुख लूटति नँदरानी । सूर स्याम अब
कहत अघाने, अँचवन माँगत पानी—४४२ । (ख)
बिस्वभर जगदीस कहावत ते दधि दोना माँझ
अघाने—११८७ ।

अघानौ—क्रि. अ. [हिं. अघाना] (१) संतुष्ट हुआ,
इच्छा पूरी हुई, मन भरा । उ.—(क) याहीं करत
अघीन भयो हौ, निद्रा अति न अघानौ—१-४६ । (ख)
बहुत प्रपच किए माया के तऊ न अघम अघानौ—
१-३२६ । (२) पेट भर गया, छक गया, तृप्त होगया ।

उ.—कान्ह कह्यौ हौ मातु अघानौ—३६६ ।

अघारि—सज्ञा पु. [सं.] पाप नाश करने वाले ।

अघासुर—सज्ञा पु. [सं.] एक दैत्य जो कस का सेनापति
था और जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था ।

अघी—वि. [सं. अघ=पाप] पापी, पातकी, कुकर्मी ।

अघैहौ—क्रि. अ. [सं. आघ्राण=नाक तक, हिं. अघाना]
तृप्त होगे, छक जाओगे । उ.—भक्ति बिनु बैल
बिराने ह्वैहौ । । चारि पहर दिन चरत
फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ—१-३३१ ।

अघोरी—सज्ञा पु. [सं.] घृणित व्यक्ति ।

वि—घृणित, घृणा के योग्य । उ.—जिन हति
सकट प्रलंब तृनावृत इद्र प्रतिज्ञा टाली । एते पर नहिं
तजत अघोरी कपटी कस कुचाली—२५६७ ।

अघौघं—सज्ञा पु. [सं.] पाप-समूह ।

अघानना—सज्ञा पु. [सं. आघ्राण] सूँघना ।

अचंचल—वि. [सं.] स्थिर, ठहरा हुआ ।

अचंभव—सज्ञा पु. [सं. असंभव] अचंभा, आश्चर्य,
विस्मय ।

वि.—आश्चर्यजनक, विस्मयकारी । उ.—तुम याही
बात अचंभव भाषत नाँगी आवहु नारी—८२६ ।

अचंभित—वि. [हिं. अचंभा] चकित, विस्मित ।

सज्ञा—अचंभा, विस्मय । उ.—यह मेरे जिय
अतिहि अचंभित तौ बिछुरत क्यो एक घरी—२०६२ ।

अचंभु—सज्ञा पु. [सं. असंभव, हिं. अचंभा] अचंभा,
विस्मय । उ.—देख सखी पँच कमल द्वै संभु । एक
कमल ब्रज ऊपर राजत निरखत नैन अचंभु—१६६८
और सा. उ.—४४ ।

अचंभो, अचंभौ—सज्ञा पु. [हिं. अचंभा] आश्चर्य,
विस्मय । उ.—(क) अचंभौ इन लोगनि को आवै ।
छाँडै स्याम-नाम-अमृत-फल, माया-बिष-फल भावै—
२-१३ । (ख) डोलै गगन सहित सुरपति अरु पृथ्वी
पलटि जग परई । नमै धर्म मन बचन काय करि,
सिंधु अचंभौ करई—६-७८ । (ग) मोसो कहत तुहूँ
नहिं आवै सुनत अचंभो पाऊँ री—पू ३२३ ।
(घ) सोवत थी मै सजनी आज । तब लग सुपन एक
यह देखो कहत अचंभो साज—सा. ६८ ।

अचई—क्रि. स. [सं. आचमन, हिं. अचवना] पान कर
ली, पी ली । उ.—यह मूरति कबहूँ नहिं देखी मेरी
अँखियन कछु भूल भई सी । सूरदास प्रभु तुम्हरे
मिलन को मनमोहन मोहनी अचई सी—१६८९ ।

अचक—वि. [सं. चक्र=समूह] भरपूर, पूर्ण ।

सज्ञा पु. [सं. चक्र=भात होना] भौचक्कापन ।

अचकौं—क्रि. वि. [हिं. अचानक, अचक्का] सहसा,
एकाएक ।

अचगरी—सज्ञा स्त्री. [सं. अति, प्रा. अच+करणम्=
ज्यादती] नटखटपन, शरारत, शैतानी, छेड़छाड़ ।

उ.—(क) सूर स्याम कत करत अचगरी, बार-बार
ब्राह्मनहिं खिभायो—१०-२४८ । (ख) माखन दधि
मेरो सब खायो, बहुत अचगरी कीन्ही । अब ली
घात परे हौ लालन, तुम्है भलै मै चीन्ही—१०-२६७ ।

(ग) मै बरजे तुम करत अचगरी । उरहन कौं ठाढ़ी
रहै सिगरी—३६१ । (घ) बहुत अचगरी यहि करि
राखी प्रथम मारिहै याहि—२५७४ । (ङ) अचगरी

करि रहे बचन एई कहे डर नही करत सुत अहीर
केरे—२६११ ।

अच गरौ—वि. [हि. अचगरी] नटखट, चंचल, छेड़खानी
करनेवाला । उ.—(क) ऐसौ नाहि अचगरौ मेरौ,
कहा बनावति बात—१०-२६० । (ख) जसुमति
तेरौ बारौ कान्ह अतेही जू अचगरौ—१०-३३६ ।
अचना—क्रि सं. [स. आचमन] आचमन करना, पीना ।
अचपल—वि. [सं.] (१) धीर, गंभीर । (२) चंचल
शोख ।

अचपली—सज्ञा स्त्री. [हि. अचपल+ई] अठखेली,
क्रीड़ा ।

अचभौन, अचभौना—सज्ञा पु. [स. असभव, हि.
अचंभा] आश्चर्यजनक, विस्मयकारक । उ.—कहा
करत तू नद डिठौना । सखी सुनहु री बात जैसी
करत अतिहि अचभौना—पृ. २३६ ।

अचमन—सज्ञा पु. [स. आचमन, हि. अचवन] भोजन
के पश्चात् हाथ मुँह धोकर कुल्ली करने की क्रिया ।
उ.—भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ, माँगत सूर
जुठनिया—१०-२३८ ।

अचर—वि. [स.] न चलनेवाला, जड़, स्थावर ।

अचरज—सज्ञा पु. [सं. आश्चर्य, प्रा. अच्चरिय]
आश्चर्य, अचंभा, विस्मय । उ.—(क) अविगत,
अबिनासी पुरुषोत्तम, हाँकत रथ कै आन । अचरज
कहा पार्थ जौ बेधै, तीनि लोक इक बान—१-२६६ ।
(ख) अचरज सुभग बेद जल जातक कलस नील मनि
गात—१६१७ । (७) आजु अली लषि अचरज एक ।
सुत सुत लखत तिपीपी गोपी सुत सुत बाँधे टेक—
सा. ४५ ।

अचर—सज्ञा पु. [स. अंचल] अंचल । उ.—राधे तू
अति रग भरी । मेरे जान भिली मनमोहन अचरा
पीक परी—२१०६ ।

अचल—वि. [सं.] (१) जो न चले, स्थिर, निश्चल ।
उ.—जिहि गोविंद अचल भुव राख्यौ, रविसँस
किए प्रदच्छिनकारी—१ ३४ । (२) सदा रहनेवाला,
चिरस्थायी । (३) ध्रुव, इंदु, अटल (४) जो नष्ट न हो,
अद्वैत, अजेय ।

सज्ञा पु. [स.] पर्वत, पहाड़ ।

अचलजा—सज्ञा स्त्री [स. अचल=पर्वत+जा=पुत्री]
पार्वती ।

अचलजापति—सज्ञा पु. [सं. अचलजा=पार्वती+पति]
पार्वती के पति शिव ।

अचलजापति अंग-भूषण—सज्ञा पु. [स. अचलजा-
पति=शिव+अंग=शरीर+भूषण=प्रलंकार] शिव के
शरीर का भूषण, सर्प, शेषनाग ।

अचलजापति अंग-भूषण भार-हित-हिन—सज्ञा पु.
[सं. अचलजापति-अंग-भूषण=शिव+भार (शेष का
भार=पृथ्वी) का हित (पृथ्वी का हित या हितू=इंद्र)
+हित (इंद्र का हितू या प्रिय=देव=यत्=वनश्याम),]
वनश्याम, कृष्ण ।

अचला—सज्ञा स्त्री [स.] पृथ्वी ।

अचवन—सज्ञा पु. [स. आचमन] (१) आचमन या
पान की क्रिया । (२) भोजन के बाद हाथ मुँह
धोकर कुल्ली करना ।

अचवना—क्रि. स [सं. आचमन] (१) आचमन या
पान की क्रिया । (२) भोजन के बाद हाथ मुँह धोने
और कुल्ली करने की क्रिया । (३) पचाने की
क्रिया, हजम कर जाना ।

अचवाई—वि. [हि. अचवना] स्वच्छ, निर्मल ।

अचवाना—क्रि. स [स. आचमन] (१) आचमन
कराना, पिलाना । (२) भोजन के बाद हाथ मुँह
धुलाकर कुल्ली कराना ।

अचवाही—क्रि. स [स. आचमन, हि. अचवना]
आचमन करते हैं, पीते हैं, पान करते हैं । उ.—
रुक्मिणि चलेहु जनमभूमि जाही । जदपि तुम्हारो
हतो द्वारका मथुरा के सम नाही । यमुना के तँट
गाय चरावंत अमृत जल अचवाही—१० उ-१०४ ।

अचवो—क्रि. स [स. आचमन, हि. अचवना] पान
करूँ, रस चखूँ । उ.—सुनहु सूर अधरन रस
अचवो दुहुँ मन तृषा बुझाऊँगो—१६४४ ।

अचाक, अचाका—क्रि. वि. [स. आ=अच्छी तरह+चक्र
=भ्राति] अचानक, सहसा ।

अचान—क्रि. वि. [सं. आ + चक् अथवा सं
अज्ञान] सहसा, अकस्मात् ।

अचानक—क्रि. वि. [सं. आ=अच्छी तरह+चक्=

आति, अथवा सं. अज्ञानात्] बिना पूर्व सूचना के, एकबारगी, सहसा, अकस्मात् । उ.— (क) बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत, करि करि जतन उड़ात । परे अचानक त्यो रस-लपट, तनु तजि जमपुर जात— २-२४ । (ख) नृपति जजाति अचानक आयौ । सुक सुता कौ दरसन पायौ—६-१७४ । (ग) बटाक होहिं न काके मोत । सग रहत सिर मेलि ठगौरी हरत अचानक चीत—२७३० ।

अचार—संज्ञा पु. [फा] नमक, मिर्च, राई आदि मसाले भिजाकर तेल, सिरके आदि में कुछ दिन रखकर खट्टे किए हुए फल या तरकारी । उ—आपर बरी अचार परम सुचि— २३२१ ।

अचारी—वि. [सं. अचारी] आचार-विचार से रहने वाला ।

अचाह—संज्ञा स्त्री [स अ=नही + चाह = इच्छा] अनिच्छा, अप्रीति, अरुचि ।

अचाहा—वि [सं अ + चाह = इच्छा, अचाह] अप्रिय, अरुचिकर, अप्रीतिपात्र ।

अचित—वि. [सं.] चितारहित, निश्चित ।

अचीता—वि [सं. अचितित] असंभावित, आकस्मिक । वि [सं. अचित] निश्चित, चितारहित ।

अचूक—वि. [सं अच्युत] (१) जो (बार आदि) खाली न जाय, जो निर्दिष्टकार्य अवश्य करे । (२) जिसका बार खाली न जाय, अति कुशल । उ०—एहि बन मोर नही ए काम बान । बिरह खेद धनु पुहुप भृंगु गुन करिल तरैया रिपु समान । लयौ घेरि मनो मृग चहुँ दिसि तै अचूक अहेरी, नहिं अजान — २८३८ । (३) ठीक, निश्चित, पक्का ।

क्रि. वि — (१) कौशल से । (२) निश्चय, अवश्य ।

अचेत—वि [सं] (१) बेसुध, मूर्खित, संज्ञाशून्य । उ.—पौढ़े कहा समर-सेज्या सुन, उठि किन उत्तर देत । थकित भए कछु मंत्र न फुरई कीन्ह मोह अचेत— १-२६ । (२) व्याकुल, विकल । (३) असावधान । (४) अनजान, नासमझ, अज्ञान । उ.—सूर सकल लागत ऐसी यह सो दुख कासों कहिये । ज्यों अचेत बालक की बेदन अपने ही तन सहिये—

१४४२ । (५) मूढ़, मूर्ख । उ.— (क) ऐसी अचू छाँड़ि क्यो भटकै, अजहूँ चेति अचेत—१-२६६ । (ख) कुँअर जल लोचन भरि भरि लेत । बालक बदन बिलोकि जसोदा, कत रिस करति अचेत— ३४६ । (६) जड़ । उ.—आपुन तरितरि औरन तारत अस्म अचेत प्रकट पानी में बनचर लै लै डारत—६-१२३

अचै—क्रि. स. [सं. आचमन, हि अचवना] पीकर, पान करके । उ.— (क) कालीदह जल अचै गए जरि तब तुम लिये जिवाय—६८६ । (ख) मोहन मय्या अपनौ रूप । यहि अज बसत अचै तुम बैठी ता बिन तहाँ निरूप ।

अचैन—संज्ञा पु. [सं. अ = नही + शयन = सोना, आराम करना] व्याकुलता, दुख ।

वि.— व्याकुल, विकल । उ.—ससि पावस कपिल के बिच मूँद राखे नैन । सह सिकारी नाग मनसिख सखिन वोर (ओर) अचैन — सा. ६२ ।

अचोना—संज्ञा पु० [सं० आचमन] पीने का बरतन, कटोरा ।

अच्छ—वि. [सं.] स्वच्छ, निर्मल । उ.—सारंग पच्छ अच्छ सिर ऊपर मुष सारंग सुष नीके—सा० १०० । संज्ञा पु० [सं. अक्ष] (१) आँख । (२) अक्षकुमार जो रावण का पुत्र था और हनुमान द्वारा मारा गया था ।

अच्छत—संज्ञा पु. [सं० अक्षत] बिना टूटा चावल जो मंगल-द्रव्य माना गया है । उ.—अच्छत दूध लिये रिषि ठाढ़े, बारनि बंदनवार बँधाई—१०-१६ । वि०—अखंडित, निरन्तर ।

अच्छर—संज्ञा पु० [सं० अक्षर] अक्षर, वर्ण ।

अच्छरा, अच्छरी—संज्ञा स्त्री० [सं. अप्सरा, आ० अच्छरा] अप्सरा ।

अच्छु—संज्ञा पु. [सं. अक्ष] आँख, नेत्र । उ.—अच्छु बिध के षरक फरकत अच्छु चारो ओर—सा० ३४ ।

अच्छोत—वि [सं० अक्षत, प्रा, अच्छत] पूरा, अधिक, बहुत । उ.—वृषभ धर्म पृथ्वी सो गाइ । वृषभ कह्यो तासों या भाइ । मेरे हेत दुखी तू होत । कै अचम्ल तुम अच्छोत (कै अधर्म तो ऊपर होत)—१-२६० ।

अच्छोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षोहिणी] चतुरंगिनी
सेना जिसमें १०१३५० पैदल, ६५६१० घोड़े,
२१८७० रथ और २१८७० हाथी होते थे ।

अच्युत—वि० [सं०] स्थिर, नित्य, अविनाशी । उ०—
(क) अच्युत रहे सदा जल-साई । परमानंद परम
सुखदाई—१०-३ । (व) सूरज प्रभु अच्युत ब्रजमंडल,
घरही घर लागे सुख देन—४३८ ।

संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु और उनके अवतारों का
नाम ।

अचुक—वि० [सं० चष्, प्रा० चक, छक] अतृप्त,
भूखा ।

अचुकता—क्रि० वि० [सं० अ=नहीं+चष्=ज्ञाना]
अतृप्त रहना, न अथाना ।

अचूत—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत, हिं० अच्छत] अक्षत,
देवताओं पर चढ़ाने के अक्षत । उ०—मेरे कहें
विप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी घराइ, बागे चीरे
बनाइ, भूषन पहिरावो । अचूत-दूब दल बँधाइ,
लालन की गाँठि जुराइ, इहै मोहिँ लाहौ नैननि
दिखरावो—१०-६५ ।

क्रि० वि० [अ० क्रि० 'अछना' का कृदन्त रूप]
रहते हुए, विद्यमानता में, सम्मुख । उ०—(क)
माता अछत छीर बिन सुत मरै, अजा कठ-कुच
सेइ—१-२०० । (व) ता रावन के अछत अछयसुत
सहित सैन संहारी—६-१०० । (ग) कुँवर सबै
घेरि फेरे फेरत छुड़त नाहिने गुपाल । बलै अछत
छलबल करि सूरदास प्रभु हाल—१०३०—६ ।
(२) सिवाय, अतिरिक्त ।

क्रि० वि० [सं० अ=नहीं+अस्ति, प्रा० अच्छाइ
= है] न रहते हुए, अनुपस्थित ।

अञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+अण] दीर्घकाल, चिर-
काल ।

क्रि० वि०— धीरे धीरे, ठहर ठहर कर ।

अञ्जना—क्रि० अ० [सं० अस्, प्रा० अच्छ=होना]
विद्यमान रहना ।

अञ्जय—वि० [सं० अक्षय] जिसका अंत न हो, जो
समाप्त न हो । उ०—रुषत समा द्रुपद-तनया को
अञ्जय अक्षय कियो—१-१२१ ।

वि० [सं० अ=नहीं+छय=छिपना] प्रकट,
प्रत्यक्ष ।

अञ्जयकुँवर, अञ्जयकुमार—संज्ञा पुं० [सं० अक्षकुमार,
हिं० अक्षयकुमार] रावण का एक पुत्र जो लंका का
प्रमोदवन उजाड़ते समय मारा गया था ।

अछरा, अछरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा०
अच्छरा] अप्सरा ।

अछवाना—क्रि० सं० [सं० अच्छ=साफ] सँवारना ।

अछाम—वि० [सं० अक्षाम्] (१) बड़ा, भारी । (२)
हृष्टपुष्ट, बली ।

अछूता—वि० [सं० अ=नहीं+छुप्त=छुआ हुआ,
प्रा० अछुत्त] (१) जो छुआ न गया हो,
अस्पृष्ट । (२) जो काम में न लाया गया हो, कोरा ।

अछूते—वि० बहु० [सं० अ=नहीं+छुप्त=छुआ हुआ],
जो काम में न लाए गए हों, नए, कोरे । उ०—मेरे
घर को द्वार, सखी री, तबलों देखति रहियो । दधि-
माखन है माट अछूतें सौहिँ सौपति हों सहियो—
१०-३१३ ।

अछेद—वि० [सं० अच्छेद्य] जिसका छेदन न हो सके,
अभेद्य, अखंड्य । उ०—(क) अभिद अछेद रूप मम
जान । जो सब घट है एक समान—३-१३ । (ख)
इह अछेद अभेद अविनासी । सब गति असु सर्व
उदासी—१२-४ ।

संज्ञा पुं०—अभेद, छलछिद्र का अभाव ।

अछेव—वि० [सं० अच्छेद्य या अछिद्र] निर्दोष ।

अछेह—वि० [सं० अच्छेद्य] (१) निरंतर, लगातार ।
(२) बहुत अधिक ।

अछोभ—वि० [सं० अक्षोभ] (१) गंभीर, शांत ।
(२) मोह-माया रहित । (३) निबर ।

अछोह—संज्ञा पुं० [सं० अक्षोभ, प्रा० अच्छोह]
(१) शांति, स्थिरता । (२) दयाहीनता, निर्दयता ।

अज—वि० [सं०] अजन्मा, जन्म-बंधन-रहित, स्वयंभू ।
उ०—अज, अविनासी, अमर प्रभु, जनमै-मरै न
सोइ—२-३६ ।

क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] अब, अभी तक ।

अजगर—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत मोटा साँप जो बकरी
और हिरन तक निगल जाता है । यह जंतु स्थूलता

और निरुधमता के लिए प्रसिद्ध है । उ०—अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ, केहरि भूख मरें । अनायास बिनु उद्यम कीन्है, अजगर उदर भरें—१-१०५ ।

अजगरी—संज्ञा स्त्री. [सं. अजगरीय] बिना परिश्रम की जीविका ।

अजगुत—संज्ञा पु. [सं. अयुक्त, पु. हि. अजुगुति]

(१) अचंभे की बात, असाधारण व्यापार, अप्राकृतिक घटना । उ०—(क) गोपाल सबनि प्यारो, ताको तै कीन्हौ प्रहारो जाको है मोहूँ को गारो, अजगुत कियतौ—३७३ । (ख) स्वान सँग सिंहनि रति अजगुत बेद विरुद्ध असुर करे आइ—१० उ—१० ।

(२) अनुचित बात, बेजोड़ प्रसंग या व्यापार । उ०—(क) सरबस लूटि हमारौ लीनौ राज कूबरी पावै । तापर एक सुनौ री अजगुत लिख लिख जोग पठावै—३०६६ । (ख) द्विज बेगि धावहु कहि पठावहु द्वारकाते जाइ । कुदनपुर एक होत अजगुत बाध घेरी गाइ—१०३०—१३ ।

वि.—आश्चर्यजनक, अद्भुत, बेजोड़ । उ०—(क) पापी जाउ जीभ गलि तेगे अजगुत (अजुगुत) बात बिचारी । सिंह को भच्छ सृगाल न पावै हौं । समरथ की नारी—६-७६ । (ख) रगभूमि मुष्टिक चनूर हति भुजबल तार बजाए । नगर नारि देहि गारि कंस को अजगुत युद्ध बनाए—२६२२ ।

अजन—वि. [सं.] जन्मरहित, जन्म-बंधन-मुक्त, स्वयंभू । उ०—(क) सकल लोकनायक, सुखदायक, अजन जन्म धरि आयौ—१०-४ । (ख) शंख, चक्र, गदा, पद्म, चतुर्भुज अजन जन्म लै आयौ ।

वि. [सं.] निर्जन, सुनसान ।

अजन्म—वि. [सं. अजन्मा] जन्म-बंधन से रहित, अनादि, नित्य । उ०—प्रात्म, अजन्म सदा अविनासी । ताको देह मोह-बड फाँसी—५-४ ।

अजन्मा—वि. [सं.] जन्मरहित, अनादि, नित्य ।

अजपा—वि. [सं.] (१) जिसका उच्चारण न किया जाय । (२) जो न जपे या भजे ।

संज्ञा पु.—उच्चारण न किया जानेवाला तांत्रिकों का मंत्र । उ०—षट्दल अष्ट द्वादस दल निर्मल-

अजपा जाप-जपाली । त्रिकुटी संगम ब्रह्मद्वार सिद्ध यों मिलिहै बनमाली ।

अजभष—संज्ञा पु. [सं. अजा=बकरी+भक्ष्य=भोजन] बकरी का भक्षण या भोजन, पत्ता, पत्र । 'पत्र' का दूसरा अर्थ चिट्ठी भी होता है । उ०—कबे द्रग अर देखबो जू सबो दुख बिसराइ । अजाभष की हान हमको अधिक ससि मुख चाइ—सा. २२ ।

अजय—वि. [सं. अजेय] जो जीता न जा सके ।

अजयारिपु—संज्ञा स्त्री. [सं. अजय=भंग=भंग+रिपु=शत्रु] भंग का शत्रु, उद्दीपन, उत्तेजना । उ०—षट्-कध अधर मिलाप उर पर अजयारिपु की घोर । सुर अबलान मरत ज्यावो मिलो नंद किशोर—सा. उ.—४७ ।

अजर—वि. [सं. अ=नहीं+जरा=बुढ़ापा] (१) जो बुढ़ा न हो, (२) जो सदा एकरस रहे, ईश्वर का एक विशेषण ।

अजरायल—वि. [सं. अजर] अमिट, चिरस्थायी, पक्का । उ०—दिनाचारी मे सब मिटि जैहैं । स्यामरंग अजरायल रहै—१४८८ ।

वि. [सं. अ=नहीं+दर=भय] निर्भय, निश्ंक ।

अजरावन—वि. [सं. अजर] जो सदा एकरस रहे, ईश्वर का एक विशेषण । उ०—जसुमति धनि यह कोखि, जहाँ रहे बावन रे । भले सु दिन भयो पूत, अमर अजरावन रे—१०-२८ ।

अजरूढ़—वि. [सं. अज=भेडा+सं. आरूढ=सवार] (१) बकरे पर सवार । (२) भेड़े पर सवार । उ०—असुर अजरूढ़ होइ गदा मारे फटकि स्याम अंग लागि सो गिरै ऐसे । बाल के हाथ ते कमल अमलनाल-जुत लागि गजराज तन मिरत जैसे—१० उ० -३१ ।

अजवाइन—संज्ञा स्त्री. [सं. यवनिका, हि. अजवायन] एक तरह का मसाला, अजवायन, यवानी । उ०—(क) हींग, मिरच पीपरि अजवाइन ये सब बनिज कहावै—११०८ । (ख) रोटी रुचिर कनक बेसन करि । अजवाइनि सैधौ मिलाइ धरि—२३२१ ।

अजस—संज्ञा पु. [सं. अयश] (१) अपयश, अपकीर्ति । (२) निंदा । (३) अपकार, बुराई । उ०—पावँ अवार सुधारि रमापति अजस करत जस पायौ—१-१८८ ।

अजहूँ, अजहूँ—क्रि. वि. [सं. अद्य, प्रा. अज्ज, हिं. अज+हूँ (प्रत्य.)] अब, अब भी, अभी तक । उ—

(क) अजहूँ लगि उत्तानपाद-सुत अविचल राज करै—

३-३७ । (ख) रें मन, अजहूँ क्यो न सम्हारे—१-

६३ । (ग) मैया कबहि बढैगी चोटी । किती बार मोहि

छूव पियत भई यह अजहूँ है छोटी—१०-१७५ ।

(घ) मानिनि अजहूँ मान बिसरि—सा० २० ।

अजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बकरी । (२) शक्ति, दुर्गा ।

अजाचक—संज्ञा पुं. [सं. अयाचक] न माँगनेवाला आदमी, संपन्न व्यक्ति ।

वि०—जो न माँगे, भरा-पुरा, संपन्न ।

अजाची—वि० [सं. अयाचिन्, हिं. अयाची,] जिसे माँगने की आवश्यकता न हो, धन-धान्य से पूर्ण, भरा-पुरा । उ०—विप्रसुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि—१-१८ और १-१३५ । (ख) अब तुम मोकों करो अजाची जो कहूँ कर न पसारौ—१०-३७ ।

अजाति, अजाती—संज्ञा पुं. [सं. अजाति] जाति रहित । उ०—तूरदास प्रभु महाभक्ति तै जाति अजातिहि साजै—१-३६ ।

अजाइ—वि. [फ. आजाद] स्वतंत्र, स्वाधीन । उ०—हमै नंदनंदन मोल लिये । जमके फद काटि मुकराये, अभय अजाद किये—१-१७१ ।

अज्ञान—वि. [सं. अ=नही + ज्ञान, प्रा. ज्ञान] (१) अनजान, अबोध, नासमझ । उ०—सिव ब्रह्मादिक कोन जाति प्रभु हो अजान नहि जानौ—१-११ । (ख) इहाँ नाहिन नंदकुमार । इहै जानि अजान मधवा करी गोकुल आर—२८३१ । (२) अपरिचित, अज्ञात ।

संज्ञा पुं.—(१) अज्ञानता । (२) एक पेड़ जिसके नीचे जाने से बुद्धि भूट हो जाती है ।

क्रि. वि.—अनजान स्थिति में, अज्ञानतावश । उ०—जान अजान नाम जो लेइ हरि बैकुंठ-बास तिहि देखे—६-४ ।

अजामिल, अजामील—संज्ञा पुं. [सं.] पुराणानुसार जीवन भर पाप कर्मों में ही लिस रहनेवाला एक

पापी ब्राह्मण । मरते समय यमदूतों का भयानक रूप देख कर इसने अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लिया और अनजान में ही इस प्रकार ईश्वर का नाम लेने से तर गया ।

अजित—वि. [सं.] अपराजित, जो जीता न गया हो ।

उ०—इंद्री अजित, बुद्धि बिषयारत, मन की दिन-दिन उलटी चाल—१-१२७ । (ख) पौरुषरहित, अजित इंद्रिनि बस, ज्यों गज पक परधौ—१-२०१ ।

संज्ञा पुं [सं] विष्णु । उ०—तुम प्रभु अजित, अनादि, लोकपति, हो अजान मतिहीन—१-१८१ ।

अजितेद्रि—वि० [सं० अजितेद्रिय] जो इंद्रियों को जीत न सका हो, विषयासक्त, इंद्रियलोलुप । उ०—वाइ सुधि मोहिनी की सदासिब चले, जाइ भगवान सौ कहि सुनाई । असुर अजितेद्रि जिहि देखि मोहित भए, रूप सो मोहि दीजै दिखाई—८-१० ।

अजिर—संज्ञा पुं [सं] अँगन, सहन । उ०—वरे निसान अजिर गृह मंडल, विप्र बेद-अभिषेक करायौ—६-२५ ।

अजीरन—संज्ञा पुं [सं० अजीर्ण] (१) अजीर्ण, अपच, अध्यसन । उ०—अब यह बिरह अजीरन हूँकै वमि लाग्यो दुख दैन । सूर बैद ब्रजनाथ मधुपुरी काहि पठाऊँ लैन—२७६५ ।

(२) अधिकता, बहुतायत ।

वि०—जो पुराना न हो, नया ।

अजुगुत—संज्ञा पुं [सं० अयुक्त, पुं० हिं० अजुगुति, हिं० अजुगुत] अयुक्त बात, अनुचित बात ।

वि०—आश्चर्यजनक, अनुचित । उ०—पापी, जाउ, जीभ गरि तेरी, अजुगुत बात बिचारी । सिंह कौ भच्छ सृगाल न पावै, हो समरथ की नारी—६-७६ ।

अजूरा—वि० [सं० अ+युज्=जोड़ना] अप्राप्त, पृथक् ।

अजूह—संज्ञा पुं [सं० युद्ध, प्रा० जुचक] युद्ध ।

अजेइ, अजेय—वि. [सं. अ=नही+जेय] जो जीता न जा सके ।

अजोग—वि० [सं० अयोग्य] (१) जो योग्य न हो, अनुचित । (२) बेजोड़, बेमेल ।

अजोध्या—संज्ञा पुं [सं० अयोध्या] सूर्यवंशी राजाओं

को पुरानो राजधानी जो सरयू के किनारे बसी थी।
इसकी गिनती सस पुरियों में है।

अजोरि—क्रि० सं० [हि० अँजोरना] छीनना, हरण करना। उ०—(क) सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि चित-चितामनि लियौ अजोरि—११८५। (ख) बुधि-विवेक बल बचन चातुरी पहिलेहि लई अजोरि—पृ० ३३३।

अजोरी—वि० स्त्री० [हि० अँजोरना] छीनकर, हरण करके। उ०—(क) राधा सहित चंद्रावलि दौरी। औचक लीनी पीत पिछौरी। देखत ही लै गई अजोरी। डारि गई सिर स्याम ठगोरी—२४५४। (व) सूरस्याम भए निडर तबहि ते गोरसँ लेत अजोरी—१४७२।

अजौ, अजौ—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज, हिं आज] अब भी, अब तक, अद्यापि। उ०—बालक अजौ अजान न जानै, केतिक दह्यो लुटायौ—३५६।

अज्ञ—वि० [सं०] अनजान, नादान। उ०—खेलत स्याम पौरि कै बाहर, ब्रज लरिका सग जोरी। तैसेई आपु तैसेई लरिका, अज्ञ सबनि मति थोरी—१०-२५३।

अज्ञता—सज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्खता, नासमझी।

अज्ञा—सज्ञा स्त्री० [सं० अज्ञा] आज्ञा।

अज्ञाकारी—वि० [सं० अज्ञाकारिन्, हि० अज्ञाकारी] आज्ञाकारी, आज्ञापालक। उ०—तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी। जिनके बस अनिमिष अनेक जन अनुचर अज्ञाकारी—१-१६३।

अज्ञात—वि० [सं०] (१) अविदित, अपरिचित। (२) जिसे ज्ञात न हो।

क्रि० वि०—बिना जाने, अनजाने में।

अज्ञान—संज्ञा पु० [सं०] (१) जड़ता, मूर्खता, अविद्या, मोह। (२) अविवेक।

वि०—ज्ञानशून्य, मूर्ख, जड़, अनजान। उ०—मै अज्ञान कछू नहि समुझ्यो, परि दुख-गुज सह्यो—१-४६।

अज्ञानता—सज्ञा स्त्री० [सं०] जड़ता, मूर्खता।

अज्ञानी—वि० [सं०] ज्ञानशून्य, अबोध, अनजान।

अज्ञेय—वि० [सं०] जो समझ में न आए, ज्ञानातीत, बोधागम्य।

अभोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दोल=भूलना] कपड़े की लंबी-थैली, मोली।

अटक—संज्ञा पु० [सं० अ=नहीं+टिक्=चलना अथवा सं० आ+टक्=बधन] (१) रोक, रुकावट, बिम्ब, अड़चन, व्याघात। उ०—(क) घाट-बाट कहूँ अटक होइ नहिँ सब कोउ देहिँ निबाहि—१-३१०। (ख) अब लौं सकुच अटक रही अब प्रगट करौ अनुराग री—८८०। (ग) जैसे तैसे ब्रज पहिचानत। अटक रही अटकर करि आनत—१०५०। (घ) लोचन मधुप अटक नहिँ मानत जद्यपि जतन करौ—१२०५। (ङ) सोषति तनु सेज सूर चले न चपल प्रान। दच्छिन रवि अवधि अटक इतनी जिय आन—२७४३। (च) गह्यो कर-स्याम भुजमल्ल अपने घाइ भटकि लीन्हो तुरत पटकि धरनी। भटक अति सब्द भयौ खुटक नृप के हिये, अटक प्रानन परछौ चटक करनी—२६०६। (छ) अब सखि नीदो तो गई। भागी जिय अपमान जानि जनु सकुचनि ओट लई। अति रिस अहनिसि कत किए बस आगम अटक दई—२७६१। (२) अकाज, हर्ज, बड़ी आवश्यकता। उ०—(क) गैयनि भई बड़ी अबार, भरि भरि पय थननि भार, बछरा गन करै पुकार तुम बिनु जदुराई। तातै यह अटक परी, दुहन काज सौह करी आवहु उठ क्यों न हरी, बोलत बल-भाई—६१६। (ख) ह्याँ ऊधौ काहे कौ आए कौन सी अटक परी—३३४६। (३) संकोच। उ०—नितही भगरत है मनमोहन देखि प्रेमरस-चाखी। सूरदास प्रभु अटक न मानत, ग्वाल सबै है साखी—७७४।

अटकना—क्रि० अ० [सं० अ=नहीं+टिक्=चलना] (१) ठहरना, अड़ना। (२) फँसना, उलझना। (३) प्रीति करना। (४) झगड़ना।

अटकर—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्=घूमना+क्ल=गिनना, हि० अटकल] अनुमान, कल्पना, अटकल। उ०—जैसे तैसे ब्रज पहिचानत। अटक रही अटकर करि आनत—१०५०।

अटकरना—क्रि० सं० [हि० अटकर, अटकल] अनुमानना, अटकल लगाना।

अटककरि—क्रि० स० [हि० अटकरना] अटकल लगाकर, अनुमान करके । उ०—बार-बार राधा पछितानी । निकसे स्याम सदन ते मेरे इन अटककरि पहिचानी ।

अटकल—सज्ञा स्त्री० [स० अट्=रूमना+कल्=गिनना] अनुमान, कल्पना ।

अटकलना—क्रि० स० [स० अट्+कल्] अनुमान लगाना, कल्पना करना ।

अटकाइ—क्रि० स० [हि० अटकाना] रोक लिया, ठहराकर । उ०—एक बार माखन के काजे राखे मैं अटकाइ—२७०४ ।

अटकाई—क्रि० स० [हि० अटकाना] फँसाना, उलझाना । उ०—तबहिँ स्याम इक बुद्धि उपाई । जुवती गई घरनि सब अपनै, गृह-कारज जननी अटकाई—३८३ ।

अटकाइ—क्रि० स० [हि० अटकाना] फँसा लिया, उलझाया । उ०—(क) मनि आभरन डार डारन प्रति देखत छबि मन ही अटकाए—८२२ । (ख) लोचन भृग को सरस पागे । स्याम कमल-पदसौ अनुरागे..... । गए तबहिँ ते फेरि न आए । सूर स्याम बेगहिँ अटकाए—पृ० ३२५ ।

अटकायौ—क्रि० स० [हि० अटकाना] टाँगा, लटकाया । उ०—लियो उपरना छीनि दूरी डारनि अटकायै—११२४ ।

अटकाव—सज्ञा पु० [हि० अटक] रुकावट, प्रतिबंध, अड़चन, बाधा ।

अटकावहु—क्रि० स० [हि० अटकाना] अटकाते या ठहराते हो, रोकते या अड़ाते हो, बाँधते हो । उ०—कैसे लै नोई पग बाँधत, लै गैया अटकावहु—४०१ ।

अटकावै—क्रि० स० [हि० अटकाना] रोकता है, ठहराता है । उ०—सो प्रभु दधिदानी कहवावै । गोपिन को मारग अटकावै—११८६ ।

अटकि—क्रि० अ० [हि० अटकना] अटककर, टिककर, ठहरकर । उ०—स्याम-कर मुरली अतिहिँ बिराजति । ग्रीव नवाइ अटकि बसी पर कोटि मदन-छबि लाजति—६४५ । (२) उलझकर, फँसकर । उ०—नुकुठ लटकि अरु भृकुटी मटक देखौ कुडल को चटक सौं अटकि परी दृगनि लपट—८३६ ।

अटकी—क्रि० अ० स्त्री० [हि० अटकना] रुकी, ठहरी अड़ी । उ०—ललित कपोल निरखि कोउ अटकी, साथल भई ज्यो पानी । देह गेह की सुधि नहिँ काहूँ हरषति कोउ पछितानी—६४४ । (२) उलझी, प्रीति में फँसी । उ०—देखी हरि राधा उत अटकी । चितै रही इकटक हरि ही तन ना जाइयै (जानियं ?) कौन अंग अटकी—१३०१ ।

सज्ञा पु० [हि० अटक] गरजमंद । उ०—ऐसी कहौ बनिज को अटकी । मुख-मुख हेरि तरुनि मुसु-कानी नैन सैन दै दै सब मटकी—११०५ ।

अटके—क्रि० अ० [हि० अटकना] (१) रुके, ठहरे, अड़े । उ०—घर पहुँच अबही नाह कोई । मारग म अटके सब लोई—१०३६ । (२) फँस गए, उलझे, चिपटे हैं । उ०—(क) लोचन भए स्याम के चर । ललित त्रिभंगो छबि पर अटके फटके मोसा तारि—पृ० ३२२ । (ख) छूटत नही प्राण क्यों अटके काठन प्रम को फाँसो—३४०६ । (३) प्रीति से फँसे, प्रम करने लगे, पग गए । उ०—तुमहिँ दियौ बहराइ इतै को वे कुबिजा सौं अटके—३१०७ । (ख) सूर स्याम सुन्दर रस अटके है मनो उहाँहि छएरी—सा० उ०—७ । (४) फगड़ने लगे ।

अटकै—क्रि० अ० [हि० अटकना] फँसे रहकर, उलझकर । उ०—जनम सिरानौ अटक अटकै । राज-काज, सुत बित की डोरी, बिनु बवेक फिर्ग्यो फटके—१२६२ ।

अटकै—क्रि० अ० [हि० अटकना] रोकने से, मना करनेसे, ठहरने से । उ०—नैना न रह री मरे अटक—पृ० २३६ ।

अटक्यौ—क्रि० अ० [हि० अटकना] (१) फगड़ पड़ा, लड़ा, जूझा । उ०—अब गजराज ग्राह सौ अटक्यौ, बली बहुत दुख पायौ । नाम लेत ताही छिन हरि जू, गरुड़हिँ छाँड़ि छुडायौ—१-३२ । (२) अकाज हुआ, आवश्यकता पड़ी, हर्ज हुआ । उ०—अति आतुर नृप मोहि बुलायौ । कौन काज ऐसौ अटक्यौ है, मन मन सोच बढायौ—२४६५ । (३) फँसा, उलझा, रम गया । उ०—(क) कहा करौ चित चरन अटक्यौ सुधा-रस कै चाइ—३-३ । (ख) सूर-

दास प्रभु सौ मन अटक्यो देह गेह की सुधि बिसराई—
८७८ । (ग) तनु लीन्हें डालत फिरै रसना अटक्यो
जस—११७७ ।

अटखट—वि० [अनु०] टूटा फूटा ।

अटत—क्रि० अ० [सं० अट्, हि० अटना] घूमते फिरते
हैं । उ०—जीव जल-थल जिते, बेष धरि धरि तिते,
अटत दुरगम अगम अचल भारे—१-१२० ।

अटन, अटनि—संज्ञा पु० [सं०] घूमने फिरने की
क्रिया, यात्रा, भ्रमण ।

संज्ञा स्त्री. बहु. [सं० अट्ट=प्रतारी, हि० अटा]
अटारियाँ, कोठे, छतें । उ०—(क) सखी री वह
देखी रथ जात । कमलनैन काँधे पर न्यारो पीत
बसन फहरात । लई जाइ जब ओर अटन की चीर
न रहत कृष गात—२५३६ । (ख) ऊँच अटन पर
छत्रन की छबि सीसन मानो फूली—२५६१ । (ग)
ऊँचे अटनि छाज की सोभा सीस उचाइ निहारी—
२५६२ ।

अटना—क्रि. अ० [सं० अट्, हि० अटन] (१) घूमना-फिरना,
(२) यात्रा करना ।

क्रि. अ० [सं० उट = घास-फूस, हि० ओट]
आड़ करना, घेरना ।

अटपट—वि. [सं० अट्=चलना+पट=गिरना] (१)
ऊटपटाँग, उल्टा सीधा, बेठिकाने । उ०—अटपट आसन
बैठि कै, गो-धन कर लीन्हो—४०६ । (२) टेढ़ा, विकट,
कठिन, अनोखा । (३) गूढ़, जटिल । (४) गिरता-
पड़ता, लड़खड़ाता ।

अटपटात—क्रि. अ० [हि० अटपट, अटपटाना] (१)
घबड़ाकर, अटककर, लड़खड़ाकर । उ०—(क) स्याम
करन माता सौ भगरी, अटपटात कलबल करि बोल—
१०६४ । (ख) कबहुँ जम्हात कबहुँ अंग मोरत
अटपटात मुख बात न आवै, रैन कहुँ धौं थाके—
२०८२ । सूच्छम चरन चलावत बल करि । अट-
पटात कर देति सुदरी, उठत तबै सुजतन तन-मन-
धरि—१०-१२० । (२) हिचकिचाकर, संकोचकरके ।

अटपटी—संज्ञा स्त्री. [हि० अटपट] नटखटी, अनरीति
उ०—(क) कर हरि सौ सनेह मन साँचो । निपट
कपट की छाँड़ि अटपटी, इंद्रिय बस राखहि किन

पाँचों—१-८३ (ख) सूघे दान काहे न लेत । और
अटपटी छाँड़ि नदसुत रहहु कँपावत बेत—१०३६ ।

वि.—। (१) अनरीतियुत, अनुचित, नटखटपन
से भरी हुई । उ०—मधुकर छाँड़ि अटपटी बातें—
३०२४ । (२) लड़खड़ाती हुई, गिरती-पड़ती । उ०—
छाँड़ि देहु तुम लाल पटपटी यहि गति मद मराल—
१०-२२३ ।

अटपटे—वि. [सं० अट्=चलना+पट=गिरना (अटपट)]
(१) गिरते पड़ते, लड़खड़ाते । उ०—निरतत लाल
ललित मोहन, पग परत अटपटे भू मै—१०-१४७ ।
(२) ऊटपटाँग, अंडबंड, उल्टासीधा, बेठिकाने ।
उ०—आए हो सुरति किए ठाठ करख लिए सकसकी
धकधकी हिये । छूटे बन्धन अरु पाग का बाँधनि छटी
लटपटे पेच अटपटे दिये—२००६ ।

अटपटो—वि. [सं० अटपट] गूढ़, जटिल, गहरा,
अनोखा । उ०—राखो सब इह योग अटपटो ऊधौ
पाइ परी—३०२७ ।

अटल—वि. [सं० अ=नहीं+टल्=चंचल होना] (१) जो
न टले, स्थिर, दृढ़ । उ०—(क) पतितपावन जानि
सरन आयो । उदधि संसार सुभ नाम-नौका तरन,
अटल अस्थान निजु निगम गायो—१-११६ ।
(२) जो सदा बना रहे, नित्य, चिरस्थायी । उ०—
(क) दास ध्रुव कौं अटल पद दियो, राम-बरबारी—
१-१७६ । (ख) बौरे मन, रहन अटल करि जान्यो—
१-३१६ । (३) ध्रुव, पक्का । (४) जिसका घटना
निश्चय हो, अवश्यभावी उ०—चिरंजीवि सीता तरुवर
तर अटल न कबहुँ टरई—६-६६ ।

अटार—संज्ञा स्त्री. [सं० अट्ट=प्रतारी] प्रतारी, कोठा,
छत । उ०—(क) नंदनंदन को रूप निहारत
अहनिसि अटा चढी—२७६४ । (ख) बिधि कुलाल
कीन्हें काचे घट ते तुम आनि पकाए । । याते
गरे न नैन मेह है अवधि अटा पर छाए—३१६१ ।

अटारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अटाली=कोठा] मकान के
ऊपर की कोठरी या छत । उ०—तुम्हरेहि तेज-प्रताप
रही बिच, तुम्हरी यहै अटारी—६-१०० ।

अठंग—संज्ञा पुं० [सं० अष्टांग] अष्टांग योगी ।

अठ—वि. [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] आठ ।

अठई—संज्ञा स्त्री० [स. अष्टमी] अष्टमी तिथि ।

अठपाव—संज्ञा पु. [सं. अष्टपाद, पा. अष्टपाद, प्रा. अष्टपाव] उपद्रव, उधम ।

अठलाना—क्रि. अ. [हि. ऐठ+लाना] (१) इतराना, ठसक दिखाना । (२) चोचले करना, नखरा दिखाना । (३) उन्मत्त होना, मस्ती दिखाना । (४) किसी को छेड़कर अनजान बनना ।

अठवना—क्रि. अ. [सं. स्थान, पा. ठान=ठहराव] जमना, ठनना ।

अठाई—वि. [स. अस्थायी] उपद्रवी, उत्पाती ।

अठास—संज्ञा पु. [अ=नही+हि. ठानना] (१) अयोग्य कर्म । (२) बैर, शत्रुता, म्लाइ ।

अठाना—क्रि. स. [स. अट्ट=रथ करना] सताना, पीड़ित करना ।

क्रि. स. [स. स्थान=स्थिति, ठहराव ठानना, प्रा. ठान] ठानना, छेड़ना ।

अठारह—वि. [स. अष्टादश, पा. अट्ठादस, प्रा. अट्ठा-रस] दस और आठ मिलाने से बनी हुई संख्या ।

संज्ञा पु.—(१) काव्य में पुराण सूचक संकेत या शब्द । उ.—ढारि पास साधु-सगति केरि रसना हारि । दाँव अबकै परचौ पुरो कुमति पिछली हारि । राखि सत्रह सुनि अठारह चोर पाँचों मार । (२) चौसर का एक दाँव, पासे की एक संख्या ।

अठासी—वि. [स. अष्टासीति, प्रा. अट्ठासीइ, अप. अट्ठासि] अस्सी और आठ की संख्या ।

अठिलात—क्रि. अ. [हि. अठलाना (=ऐठ+लाना)] ऐंठते हो, इतराते हो, ठसक दिखाने हो । उ.—(क) नद दोहाई देत कहा तुम कस दोहाई । काहे को अठिलात कान्ह छाँड़ौ लरिकाई—पृ. २३५ । (ख) बात कहत अठिलात जाति सब हँसत देति कर तारि । सूर कहा ये हमको जानै छाछिहि बेचनहारि—१०६६ ।

अठिलाना—क्रि. अ. [हि. अठलाना] (१) इतराना, ठसक दिखाना । (२) चोचले दिखाना ।

अठिलानी—क्रि. वि. [हि. अठलाना] मदोन्मत्त होती हुई, झुझाई हुई । उ.—सूरदास प्रभु मेरो नान्हो तुम तरणी डोलति अठिलानी—१०५७ ।

अठोठ—संज्ञा पु. [हि. ठाट] आडम्बर, पाखण्ड, ठाट,

अड़ार—वि. [स. अराल] टेढ़ा, तिरछा ।

अड़ारना—क्रि. स. [हि. डालना] डालना, देना ।

अड़ारी—क्रि. अ. [सं. अल्=वारण करना, हि. अडना] रुके, अड़े, अटके, ठहरे । उ.—सहि न सकत अति बिरह त्रास तन आग सलाकनि जारी । ज्यो जल थाके मीन कहा करे तेउ हगि मेल अड़ारी—सा. उ. ३५ और ३२४६ ।

अडिग—वि. [स. अ=नही+हि. डिगना] जो न डिगे, निश्चल, स्थिर ।

अडीठ—वि. [स. अदृष्ट, या अदिष्ट प्रा. अडिट्ठ] जो दिखाई न पड़े, लुप्त ।

अडोल—वि. [सं. अ=नही+हि. डोलना] (१) जो हिले नहीं, अटल । (२) स्तब्ध, ठकमारा ।

अड़ना—क्रि. अ. [सं. अल्=वारण करना] (१) रुकना, अटकना, फँसना । (२) हठ करना, टेक बाँवना ।

अड़ाना—क्रि. स. [हि. अडना] (१) रोकना, अटकाना, फँसाना । (२) टेकना ।

अड़े—क्रि. अ. [हि. अडना] अटक गए फँस गए । उ.—इह उर माखन चोर गडे । अब कैसे निकसत सुन ऊधो तिरछे ह्वै जो अड़े—३१५१ ।

अदुक—संज्ञा पु. [देश.] चोट, ठोकर ।

अदुकना—क्रि. अ. [स. आ=अच्छी तरह+टक्=बंधन=रोक, हि. अदुक] (१) ठोकर खाना, चोट खाना । (२) सहारा लेना, टेकना ।

अद्वना—क्रि. स. [आ+ज्ञा=बोध कराना, आज्ञापनं, या अभ्यापनं, प्रा. आणवनं] आज्ञा देना, काम में लगाना ।

अतंक—संज्ञा पुं. [स. आतंक] भय, शंका । उ.—जब ते तूनावर्त्त ब्रज आयो, तब ते मो जिय संक । नैननि ओट होत पल एकौ, मै मन भरति अतक—६०५ ।

अतंद्रिक, अतंद्रित—वि. [स.] (१) आलस्यरहित, चंचल । (२) व्याकुल ।

अतद्गुण—संज्ञा पु. [अतद्गुण] एक अलंकार जिसमें एक वस्तु का अपने निकट की वस्तु के गुण को ग्रहण न करना दिखाया जाय । उ.—आजु रन कोप्यो

भोमकुमार । । बैठे जदपि जुविष्ठिर सामे सुनत
सिखाई बात । भयो अतदगुन सूर सरस बड़ बली
बीर बिरह्यात सा. ७४ ।

अतनु—वि. [सं.] (१) बिलस शरीर का । (२) मोटा ।
संज्ञा पुं.—अनंग, कामदेव ।

अतरौटा—संज्ञा पुं. [स. अन्तर + पट] देखिए अंतरौटा ।

अतर्क्य—वि. [मं.] जिस पर तर्क-वितर्क न हो सके,
अचिन्त्य ।

अतवान—वि. [मं. अतिवान्] अधिक, अत्यंत ।

अतसी—संज्ञा स्त्री. [सं.] अलसी जिसके फूल नीले
और बहुत सुन्दर होते हैं । उ.—(क) स्यामा स्याम
सुभग जमुना-जल निभ्रम करत विहार । ।
अतसी कुसुम कलेवर बूंदें प्रतिबिंबित निरधार—
१८४७ । (ख) आवत बन ते साँझ देखे मैं गायन
साँझ काहू के ठोटा री एक सीस मोरपखियाँ ।
अतसी कुसुम जैसे चचल दीरघ नैन मानों रसभरी
जो लरति युगल अखियाँ—२३६६ ।

अतापी—वि. [स.] दुखरहित

अति—वि. [स.] (१) बहुत, अधिक । उ.—देखत नंद
कान्ह अति सोवत । भूखे भए आजु बन भीतर, यह
कहि कहि मुख जोवत—५१६ । (२) जरा सा, झोटा ।
उ.—सूर स्याम मेरो अति बालक मारत ताहि
रिंगाई—५१० । (३) जरूरी, आवश्यक । उ.—यह
कालीदह के फूल मंगाए, पत्र लिखाइ ताहि कर दीन्ही ।
यह कहियो ब्रज जाइ नद सों कसरज अति काज
मँगायो—५२३ ।

संज्ञा स्त्री—अधिकता, सीमा का उल्लंघन ।

अतिउक्त—संज्ञा स्त्री. [सं. अत्युक्ति] एक अलंकार
जिसमें सुयों का बहुत बड़ा-बड़ा कर अतथ्य वर्णन
किया जाता है । उ.—सेस ना कहि सकत सोभा जान
जो अतिउक्त कहै बाचिक बाचते हे कहा सूर
अनुक्त—सा. ६३

अतिक—वि. [सं. अति] बहुत, अधिक, तीव्र, अत्यंत ।
उ.—अति आतुर आरोधि अतिक दुख तोहि कहा
डर तिन यम कालहि—८६८ ।

अतिगत—वि. [स.] बहुत, अधिक, अत्यंत ।

अतिगति—संज्ञा स्त्री [स.] उत्तम गति, मोक्ष ।

अतिथि—संज्ञा पुं. [सं.] अभ्यागत, मेहमान, पाहुन ।

अतिबल—वि. [सं.] प्रचंड, बली ।

अतिवृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़ इतियों में से एक
जिसमें पानी बहुत बरसता है । उ.—सब यादव
मिलि हरि सों इह कह्यो सुफलक सुन जहँ होइ ।
अनावृष्टि अतिवृष्टि होत नहि इह जानत सब कोइ
—१० उ.—२७ ।

अतिसय—वि. [स. अतिशय] बहुत, अत्यंत, अधिक ।
उ.—चित चकोर-गति करि अतिसय रति, तबि
सम सवन विषय लोभा—१-६६ ।

अतिसै—वि. [स. अतिशय] बहुत, अत्यंत । उ.—कह्यो
हरि कै भय रवि-ससि फिरै । वायु बय अतिसै नहि
करै—३-१३ ।

अतीत—वि. [स.] (१) गत, व्यतीत, भूत । (२) निर्जैव,
असंग, विरक्त ।

क्रि. वि.—परे, बाहर । उ.—गुन अतीत, अविगत, ब
जनावे । जस अपार, सुत पार न पावे—१०-३ ।

संज्ञा पुं.—(१) संन्यासी, विरक्त । (२) संगीत में
'सम' से दो मात्राओं के उपरांत आनेवाला स्थान ।
उ.—बंसी री बन कान्ह बजावत । । सुर सुखि
तान बंधान अमित अति सप्त अतीत अनागत
आवत—६४८ ।

अतीतना—क्रि. अ. [स. अतीत] बीतना, गत होना ।

क्रि. स —(१) बिताना । (२) झोड़ना, त्यागना ।

अतीथ—संज्ञा पुं. [स. अतिथि] अभ्यागत, पाहुन ।

अतीव—वि. [स०] बहुत अधिक, अत्यंत ।

अतुराई, अतुराई—क्रि. वि. [हि. अतुराना] (१)

बबड़ाकर, आकुल होकर । उ.—(क) तुरत जाइ खं
आउ उहाँ सै, लिंन न करि मो भाई । सूरदास
प्रभु बचन सुनत ही हनुमत चलयो अतुराई ६-१०६ ।

(ख) बाकी सावधान करि पठ्यो चली आपु जल की
अतुराई—१०-८५१ । (२) हड़बड़ाकर, जल्दी करके ।

उ.—चलो सखी, हमहूँ मिलि जैए, नैकु करो अतु-
राई—१०-२२ । (ख) कीरति महारि लिवावन आई ।
जाहु न स्याम करहु अतुराई—१०-७५७ ।

अतुरात—क्रि. अ. [हि. अतुराना] आतुर होना है,
बबड़ाता है । उ.—(क) तुरत ही तोरि, गनि, कोरि

सकटोंने जोरि, ठाढे मए पैरिया तब सुनाए । सुनत यह बात, अतुरात और डरत मन, महल तै निकसि नृप आपु आए—५८४ । (ख) एक एक पल युग सबन को मिलन को अतुरात—२६५५ ।

अतुराना—क्रि. अ. [स. आतुर] आतुर होना, घबड़ाना, अकुलाना ।

अतुरानी—क्रि. अ. स्त्री [हि. अतुराना] घबड़ा गई, हड़बड़ाई, अकुलाई, जल्दी मँचाने लगी । उ.—(क) सुनत बात यह सखी अतुरानी—८४७ । (ख) सूर स्याम सूखधाम, राधा है जाहि नाम, आतुर पिय जानि गवन प्यारी अतुरानी । (ग) सूर स्याम बन धाम जानि के दरसन को अतुरानी—१८८८ ।

अतुराने—क्रि. अ. [हि. अतुराना] आतुर हुए, हड़बड़ाकर, घबड़ाकर । उ.—(क) कर सौं ठोकि सुतिहि दुलरावति, चटपटाइ बैठ अतुराने—१०-१६७ । (ख) बालक बछरा धेनु सब मन अतिहि सकाने । अंधकार मिटि गयो देखि जहँ तहँ अतुराने—४३२ । धेनु रहीं बन भूलि कहूँ ह्वै बालक, भ्रमत न पाए । यातें स्याम अतिहि अतुराने, तुरत तहाँ उठि घाए—४३६ ।

अतुल—वि. [सं.] (१) अमित, असीम, अपार । उ.—के रघुनाथ अतुल बल राच्छस दसकंधर डरही—६-६१ । (२) अनुपम, अद्वितीय ।

अतुलित—वि. [स.] (१) अपार, बहुत, अधिक । (२) असंख्य, अनेगिनती । (३) अनुपम, अद्वितीय ।

अत्र—क्रि. वि. [सं.] यहाँ, इस स्थान पर ।

संज्ञा पुं. [स. अस्त्र] अस्त्र ।

अत्रि—संज्ञा. पुं. [सं.] सप्तवर्षियों में से एक जिनकी गिनती दस प्रजापतियों में है । ये ब्रह्मा के पुत्र थे; अनुसूया इनकी स्त्री थी जिससे तीन पुत्र हुए—दत्तात्रेय दुर्वासा और सोम ।

अतुथ—वि. [सं. अति=अधिक+उत्थ=उठा हुआ] अपूर्व ।

अतौर—वि. [सं. अ=नही+हि. तोड़] जो न टूटे, दृढ़ ।

अत्त, अत्ति—संज्ञा स्त्री. [स. अति] अति, अधिकता ।

अथना—क्रि. अ. [सं. अस्त+ना (प्रत्य.)] अस्त होना, डूबना ।

अथवत—क्रि. अ. [हि. अथवना] अस्त होने पर, डूबने पर । उ. भृंग मिले भारजा बिछुरी जोरी कोक मिले उतरी पनच अब काम के कमान की । अथवत आए गृह बहुरि उवत भान उठो प्रातनाथ महा जान मनि जानकी—१६०६ ।

अथवना—क्रि. अ. [सं. अस्तमन=डूबना, प्रा. अत्यवन] (१) अस्त होना, डूबना । (२) लुप्त होना, नष्ट होना, चला जाना ।

अथवा—अव्य. [स.] वियोजक अव्यय जिसका प्रयोग उस स्थान पर होता है, जहाँ कई शब्दों या पदों में से केवल एक को ग्रहण करना हो । या, वा, किम्बा । उ. जंघनि कों कदली सम जानै । अथवा कनक खंभ सम मानै—३-१३ ।

अथाई—संज्ञा स्त्री [सं. स्यायि=जगह, पा. ठानीय प्रा. ठाइय] (१) बैठक, चौबारा । (२) गाँवों में पंचायत की जगह । (३) सभा, दरबार ।

अथान, अथाना—संज्ञा पुं. [स. स्थाणु=स्थिर] अचार ।

अथाना—क्रि. अ. [सं. अस्तमन, प्रा. अत्यवन, हि. अथवना] डूबना, अस्त होना ।

क्रि. स. [सं. स्थान=जगह] (१) थाह लेना, गहराई नापना । (२) डूँटना, झुगना ।

अथानो—संज्ञा पुं. [सं. स्थाणु=स्थिर, हि. अथान, अथाना] अचार । उ.—निबुझा, सूरन, आम, अथानो और करोंदनि की रुच न्यारी—१०-२४१ ।

अथावत—वि. [स. अस्तमित=डूबा हुआ, प्रा. उत्थवन हि. अथाना] अस्त, डूबा हुआ ।

अथाह—वि. [स. अ=नही + स्था=ठहरना, अथवा अगाध] (१) बहुत गहरा, अगाध । उ.—मन-कूत-दोष अथाह तरंगनि, तरि नहिं सक्यो, समायो । मेल्यो जाल काल जब खँच्यो, भयो मोन जल-हायो—१-६७ । (२) अपरिमित, अपार, बहुत अधिक । उ.—

(क) सूरज-प्रभु गुन अथाह धन्य धन्य श्री प्रियानाह निगमन को अगाध सहस्रानन नहिं जानै—२५५७ ।

(ख) बिरह अथाह होत निसि हमको बिनु हरि समुद समानी—२७६६ । (३) गंभीर, गूढ़ ।

संज्ञा पुं.—(१) गहराई, जलाशय । (२) समुद्र ।

अथाहु—वि. [हि. अथाह] (१) जिसकी थाह न हो,

जिसकी गहराई का अंत न हो, अगाध । उ.—तुम जानकी जनकपुर जाहु । कहा आनि हम सग भरमिहो गहवर बन दुख-सिधु अथाहु—६-२३ । (२) अपरिमित, बहुत अधिक ।

अधिर—वि. [सं. अस्थिर] (१) जो स्थिर न हो, चंचल । (२) अस्थायी, क्षणिक ।

अथोर—वि. [वि. स. अ=नही + स. स्तोक, पा. थोक, प्रा. थोअ=हि. थोड़ा] जो थोड़ा न हो, अधिक, बहुत । उ.—नीति बिन बलवान सीषत नीक जानन जोर । काज आपन समुझ के किन करे आप अथोर-सा. ६१ ।

अदंक—सज्ञा पु. [सं. अदंक] डर, भय, आस ।

अदंड—वि. [सं.] (१) जो दंड के योग्य न हो । (२) निर्भय, स्वेच्छाचारी ।

अदंभ—वि. [सं. अ=नही=दंभ] (१) दंभरहित, निष्कपट । (२) प्राकृतिक, स्वच्छ ।

अदग—वि. [सं. अदगध, पा. अदगध] (१) निष्कलंक शुद्ध । (२) निरपराध । (३) अदूता, साफ, बचा हुआ ।

अदभुत—वि. [सं. अदभुत] विज्वल, विचित्र, अनूठा, अपूर्व । उ.—(क) अदभुत राम नाम के अक—१-६० । (ख) देखो यह बिपरीत भई । अदभुत रूप नारि इक आई, कपट हेत क्यों सहै दई—१०-५३ । (ग) ये अदभुत कहिबे न जोग जुग देखत ही बनि आवैं—सा ४ । (घ) गृह तैं चली गोप कुमारि । बरक ठाढी देख अदभुत एक अनूपम मार—सा. १४ ।

अदभ्र—वि. [सं.] (१) बहुत, अधिक । (२) अपार, अनंत ।

अदरख—सज्ञा पु. [सं. आदरक, फा. अदरक] अदरक ।

अदलै—सज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती ।

अदलपति—सज्ञा पु. [सं. अदल=पार्वती+पति] पार्वती के पति शिव ।

अदलपति-रिपु-पिता-पतिनी—सज्ञा स्त्री [सं. अदलपति=शिव + रिपु (शिव का शत्रु=नाम=प्रद्युम्न)+पिता (प्रद्युम्न का पिता=कृष्ण) + पत्नी (कृष्ण की पत्नी=रामना)] यमुना । उ.—अदलपति-रिपु-पिता-पतिनी अब न जहं फेर—सा. ११६ ।

अदाई—वि. [सं.] चतुर, काइयाँ, चालबाज, निर्दयी । उ.—सेवत सगुन स्याम सुन्दर को लही सुक्ति हम चारी । हम सालोक्य सरूप, सरोज्यो रहत समीप सहाई । सो तजि कहत और की औरें तुम अलि बड़े अदाई—३२६० ।

अदात—वि. [सं. अदाता] जो दानी न हो, जिसने कुछ दिया न हो, कृपण । उ. - हरि को मिलन सुदामा आयो । । पूरव जनम अदात जानिके तातैं कछ मँगायो । मूठिक तदुल बाँधि कृष्ण की बनिता बिनय पठायो—१० उ.—६५ ।

अदाता—सज्ञा पु. [सं.] न देनेवाला, कृपण व्यक्ति । वि.—जो न दे, कृपण ।

अदान—सं. पु. [सं. अ=नही + दान] न देनेवाला, कृपण व्यक्ति ।

वि. [सं. अ=नहीं + फा. दाना=जाननेवाला] नासमझ ।

अदानी—वि. [सं. अ=नही + दानी] जो दान न दे, अदाता ।

अदावै—सज्ञा पु. [सं. अ=नही + दाम=रस्सी या बंधन] कठिनाई, असमंजस ।

अदिति—सज्ञा स्त्री. [सं.] प्रजापति की पुत्री जो कश्यप ऋषि की पत्नी और सूर्य आदि तैंतीस देवताओं की माता थी ।

अदितिमुत्त—सज्ञा पु. [सं.] दक्ष की कन्या के गर्भ से उत्पन्न तैंतीस देवता ।

अदिन—सज्ञा पु. [सं. अ=नही + दिन] कुदिन, कुसमय, दुर्भाग्य ।

अदिष्टी—वि. [सं. अ=नही + दृष्ट=वेचार (अथवा अदृष्ट=भाग्य)] (१) मूर्ख, अदूरदर्शी । (२) अभागा ।

अदीठ—वि. [सं. अदृष्ट, प्रा. अदिट्ठ] बिना देखा हुआ, अनदेखा, गुप्त ।

अदीह—वि. [सं. अ=नही + स. दीर्घ, या दीघ, प्रा. दीह] जो बड़ा न हो, छोटा ।

अदुंद—वि. [सं. अद्वंद्व, प्रा. अदुंद] (१) द्वंद्वरहित । (२) शांत । (३) अद्वितीय ।

अदृश्य—वि. [सं.] (१) जो दिखाई न दे । (२)

जिसका ज्ञान इंद्रियों को न हो, अगोचर (३)
अंतर्धान, छुत ।

अदृष्ट—संज्ञा पु. [सं.] भाष्य प्रारम्भ, भावी । उ.—
काका नाम बताऊँ तोको । दुखदायक अदृष्ट मम
मोको—१-२६० ।

वि. [सं.] (१) न देखा हुआ, अलक्षित । (२)
छुत, ओम्भल, अंतर्धान । उ.—(क) बछरां भए-
अदृष्ट कहूँ खोजत नहि पाए—४६२ । (ख) उ.—
जब रथ भयो अदृष्ट अगोचर लोचन अति अकुलात-
२८६१ ।

अदेश—संज्ञा पु. [सं. आदेश=प्राज्ञा, शिक्षा] (१)
आज्ञा, शिक्षा । (२) प्रणाम ।

अदोषित—वि. [सं. अदोष] निर्दोष, अकलंक ।

अदोस—वि. [सं. अदोष (अ=नही)] निर्दोष, निष्कलंक,
दूषणहीन उ.—चंपकली सी नासिका राजत अमल
अदास—२०६५ ।

अद्भुत—वि. [सं.] आश्चर्यजनक, विचित्र, अनोखा,
अनूठा । उ.—रूप मोहिनी धरि ब्रज आई । अद्भुत साजि
सिंगार मनोहर, असुर कस दै पान पठाई—१०-६० ।

अध—अव्य. [सं. अध] नीचे, तले । उ.—उर-कलिद
तै घेंसि जल-धारा उदर धरनि परवाह । जाहि चली
धारा हूँ अध को नाभी-हृद अधगाह—६३७ ।

वि. [सं. अर्द्ध, प्रा. अर्द्ध] आधा, अर्द्ध । उ.—(क)
तामै एक छत्रीलो सारंग अध सारंग उनहारि । अध
सारंग परि सकलई सारंग अध सारंग बिचारि—सा.
उ.—२ । भादों को अधराति अंधारी—१०-११ ।

अधिकैया—वि. [सं. अधिक] अधिक, बहुत । उ.—
जंवत रुचि अधिको अधिकैया—२३२१ ।

अधघट—[सं. अर्द्ध=आधा+हिं. घटना=गूरा उतरना]
जिसका ठीक अर्थ न निकले, अटपटा ।

अधजैवत—वि. [सं. अर्द्ध=जैवना] जिसने पेट भर
खाया न हो, अधखाया । उ.—सूर-स्याम बलराम
प्रातही अधजैवत उठि धाए—४५४ ।

अधपर—संज्ञा पु. सवि. [सं. अर्द्ध, प्रा. अर्द्ध, हिं. अध=
आधा+पर (प्रत्य.)] आधे मार्ग में, बीच ही में ।
उ.—हम सब गर्व गँवारि जानि जड़ अध पर छाँड़ि
दई—३३०४ ।

अधपैया—संज्ञा पु. [सं. अर्द्ध=आधा+पम] पैर के अगले
भाग पर ।

अधम—वि. [सं.] (१) पापी, दुष्ट, उ.—(क) अब मोसों
अलसात जात है । अधम-उधारनहारे हो—१-२५ । (व)
अध को मेरु बड़ाइ अधम तू, अत भयो बलहीनी—१-
६५ । (२) नीच, निकट, कुत्स । उ.—कहा कहीं हरि
केतिक तारे पावन-पद-परतगी । सूरदास यह बिरह
सवन सुनि गरजत अधम अनंगी—१-२१ ।

अधमई—संज्ञा स्त्री. [सं. अधम+हिं. ई (प्रत्य.)]
नीचता, अधमता, खोटापन । उ.—(क) औरनि को
जम के अनुसासन किकर कोटिक धावै । सुनि मेरी
अपराध-अधमई, कोऊ निकट न आवै—१-१६७ ।
(ख) सूरस्याम अधमई हमहिं सब, लागे तुमहिं
भलाई—१०४६ ।

अधमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] खोटापन, नीचता ।

अधमाई—संज्ञा स्त्री. [सं. अधम] अधमता, नीचता ।
उ.—(क) हुतीं जिती जग में अधमाई सो मैं सब
करी—१-१३० । (ख) अधम की जो देखो अध-
माई । सुनु त्रिभुवन-पति, नाथ हमारे, तो कछु कह्यो
न जाई—१-१८, । (ग) नैना लुब्धे रूप को अपने
सुख माई । मन इंद्री तहाँई गए कीन्ही अध-
माई—पृ० ३२३ ।

अधमुख—संज्ञा पु. [सं० अधोमुख=नीचे की ओर मुँह
किए] मुँह या सिर के बल, औंठा । उ.—स्याम भुजनि
की सुंदरताई । बड़े बिसाल जानु लो परसत,
इक उपमा मन आई । मनो भुजंग गगन तै उतरत
अधमुख रह्यो भुलाई—६४१ ।

अधर—संज्ञा पु. [सं.] (१) दीचे का ओठ । (२)
ओठ ।

संज्ञा पु. [सं. अ=नही+धृ=धरना] अंतर्हित,
आकाश ।

वि.—(१) चंचल, जो पकड़ा न जा सके ।
(२) नीच, कुरा ।

अधरम—संज्ञा पु. [सं. अधरम] पाप, असद्व्यवहार,
अन्याय, कुकर्म ।

अधरात—संज्ञा. [सं. अर्द्ध=आधा+रात्रि] आधी रात
(क) । उ.—(क) उर पर देखियत ससि सात । सोवत

हुती कुँवर राधिका चीकि परी अधरात—सा. उ. ।
२६ । (ख) तब ब्रज बसत बेनु रव घुनि करि बन
बोलो अधरातनि—३०९५ ।

अधरै—संज्ञा पु. सवि. [सं. अधर+रै (प्रत्य)] अधर
पर, ओठ पर । उ.—भालै जावक रग बनानी अधरै
अंजन परगट जानी—१६६७ ।

अधर्म—संज्ञा [पु.] पाप, पातक, अन्याय, दुराचार ।
अधर्मी, अधर्मिन—संज्ञा पु. [सं. अधर्मो] पापी ।
उ.—नैन-अमीन, अधर्मिन कै बस, जहँ को तहाँ
छयो—१-६४ ।

अधार—संज्ञा पु. [सं. आधार] आश्रय, सहारा,
अवलंब । उ.—(क) एक अधार साधु-सगति
को, रचि पचि मति संचरी । याहँ सौंज संजि
नहिं राखी, अपनी धरनि धेरी—१-१३० । (ख)
दीनदयाल, अधार सबनि के परम सुजान, अखिल
अधिकारी—१-२१२ । (ग) अबऊ अधार जु प्रान
रहत हँ, इन बसहिन मिलि कठिन ठई री—२७८६ ।
(२) पात्र । उ.—हरि परीच्छितहिँ गर्भ-भेकार ।
राखि लियो निज कृपा-अधार—१-२८६ ।

अधारा—संज्ञा पु. [सं. आधार] आश्रय, सहारा,
अवलंब । यौ.—प्रानअधारा—प्रान के अधार, परम
प्रिय । उ.—ताते मै पाती लिखी तुम प्रानअधारा—
१०उ. ८ ।

अधारी—संज्ञा स्त्री. [सं. आधार] (१) आश्रय,
अवलंब । (२) काठ के डंडे में लगा हुआ साधुओं
का पीड़ा । उ.—(क) अब यह ज्ञान सिखावन आए
भस्म अघारी सेव—२१८३ । (ख) सृङ्गी भस्म
अघारी मुद्रा दै यदुनाथ पठाए—३०६० । (ग)
दंड कमंडलु भस्म अघारी तो युवतिन कहूँ दीजै—
३११७ । (घ) सींगी मुद्रा भस्म अघारी हमको कहा
सिखावत—३२१८ । (३) यात्रियों के सामान
का झोला ।

वि. स्त्री—सहारा देनेवाली, प्रिय, भली ।

अधारो, अधारौ—संज्ञा पु. [सं. आधार] आश्रय,
सहारा, अधार । उ.—नमता-घटा, मोह की बूंद,
सरिता मै न अपारौ । बूडत कतहुँ थाह नहिं पावत,
गुरुजन-ओट-अधारौ—१-२०६ ।

यौ.—प्रानअधारो—प्रान का अधार, आश्रय । उ.—
सूरदास प्रभु तिहारे मिलन को भक्तन प्रानअधारो—
पु. ३५१ ।

अधावट—वि. पु. [सं. अर्ध=आधा+आवर्त्त=चक्कर]
औटाने पर गाढ़ा होकर आधा रह जानेवाला । उ.—
खोचामय मधुर मिठाई । सो देखत अति रुचि पाई ।
कछु बलदाऊ को दीजै । अरु दूध अधावट पीजै—
१०-१८३ ।

अधिक—वि. [सं०] (१) बहुत, विशेष । (२),
अतिरिक्त ।

क्रि. वि.—तेज । उ.—छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़
तजि साँवरी पवन के गवन तै अधिक धायो—१-५ ।

अधिकइयै—वि. [हिं. अधिक] ज्यादा ।

क्रि. सं—[हिं. अधिकाना] बढ़ाइए ।

अधिकई—वि [सं. अधिक] अधिकता से, बहुत अधिक ।
उ.—करत भोजन अति अधिकई भुजा सहस पसारि—
६२६ ।

अधिकाई—संज्ञा स्त्री. [सं. अधिक + हिं. आर्ध
(प्रत्य.)] (१) अधिकता, विशेषता, बढ़ती । (२)
बढ़ाई, महिमा, महत्व । उ.—(क) सवनिन की जु
यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधा-रस पावै—२-७ ।
(ख) देखो काम प्रताप अधिकाई । कियो परासर
बस रिषिगई—१-२२६ । उ.—(क) राखे तेरे रूप
की अधिकाई । जो उपमा दीजे तेरे तन तामे छबि न
समाई—सा. उ. १६ । (ख) इकटक नैन टरै नहिं
छबि की अधिकाई—पु. ३१८ । (३) कुशकता,
चतुरता । उ.—जब लौं एक दुहौंगे तब लौं चारि
दुहौंगो, नंद दुहाई । भूठहि करत दुहाई प्रातहि
देखहिगे तुम्हरी अधिकाई—६६८ ।

वि.—अधिक, विशेष, बहुत । उ.—(क) यह
चतुराई अधिकाई कहाँ पाई स्याम बाके प्रेम की गढ़ि
पढे हो यही—२००८ । (ख) सोवत महा मनो सुपने
सखि अवधि निघन निधि पाई ।.....। जो जागौं
तो कहा उठि देखौ बिकल भई अधिकाई—२७८४ ।

अधिकाए—क्रि. अ. [हिं. अधिकाना] अधिक किया,
बढ़ाया, वृद्धि की । उ.—सूरदास-प्रभु-पान परसि नित,
काम-बेलि अधिकाए—६६१ ।

अधिकाने—क्रि० अ० [हि० अधिकाना] अधिक होता है, वृद्धि पाता है। उ०—सारंग सुने छवि बिन नथुनी—रस बिंदु बिना अधिकात—सा० ५२।

अधिकानी—क्रि० अ० [सं० अधिक, हि० अधिकाना] बढ़ी, अधिक हुई, वृद्धि पाई। उ०—(क) महा दुष्ट लै उड़ो गोपालहिं, चली अकास कृष्ण यह जानी। चापि ग्रीव हरि प्रान हरे, दृग-रक्त-प्रवाह चली अधिकानी—१०-७८। (ख) देखत सूर अग्नि अधिकानी, नभ लों पहुँची भार—५६३।

अधिकार—संज्ञा पु० [सं०] (१) कार्यभार, प्रभुत्व, आधिपत्य। (२) स्वत्व, हक। (३) दावा, कब्जा। (४) समता, सामर्थ्य। (५) योग्यता, ज्ञान।

अधिकारिनि—ज्ञ पु० बहु० [सं० अधिकारी+नि (प्रत्य०)] योग्य या उपयुक्त व्यक्ति। उ०—धर्म-कर्म-अधिकारिनि सौं कछु नाहिं तुम्हरो काज। भू-भर-हरन प्रगट तुम भूतल, गावत सन-संभाज—१-२१५।

अधिकारी—संज्ञा पु० [सं० अधिकारिन्, हि० अधिकार] (१) प्रभु, स्वामी। उ०—(क) दीनदयाल अधार सबनि के, परम सुजान अखिल अधिकारी—१-२१२। (ख) कान्ह अचगर्यो देत लेहु सब आँगनवारी। कापहि समत दान भए कबते अधि-कारी—१११०। (२) योग्यता रखनेवाला, उपयुक्त पात्र। उ०—(क) ऊधो कोउ नाहिं अधिकारी। ले न जाहु यह जोग आपनो कत तुम होत दुवारी—३२६१।

संज्ञा स्त्री०—अधिकारी की ठसक या ऐंठ, गर्व। उ०—जब जान्यो ब्रज देव मुरारी। उत्तर गई तब गर्व खुमारी। व्याकुल भयो डर्यो जिय भारी। अन-जानत कीन्ही अधिकारी—१०६६।

वि०—(१) लित, बशीभूत। उ०—मैं तोहिं सत्य कहौं दुरजोधन, सुनि तू बात हमारी। बिदुर हमारो प्रानपियारो, तू विषया-अधिकारी—१-२४४। (२) अधिक। उ०—लोचन ललित कंगोलनि काजर, छवि उपजति अधिकारी—१०६१।

अधिकी—वि० [सं० अधिक] अधिक, ज्यादा, बहुत। उ०—हम तुम जाति-पाति के एकै, कहा भयो अधिकी द्वे गैयाँ—७३५।

अधिको—वि० [सं० अधिक] अधिक-अधिक। उ०—जेवत रुचि अधिको अधिकैया—२३२१।

अधिपति—संज्ञा पु० [सं०] स्वामी, राजा। उ०—हमरे तो गोपतिमुत अधिपति बनिता और रनते—सा० उ० ३४।

अधिष्ठाता—संज्ञा पु० [सं०] (१) अध्यक्ष, प्रधान, नियंता। (२) प्रकृति को जड़ से चेतनावस्था प्राप्त करानेवाला, ईश्वर।

अधीन—वि० [सं०] (१) आश्रित बशीभूत। (२) विवश, लाचार, दीन। उ०—अब हो माया हाथ बिकानो।। हिसा-मद-ममता-रस भूल्यो, आसाही लपटानो। याही करत अधीन भयौ हौं, निंदा अति न अधानो—१-४७।

संज्ञा पु०—दास, सेवक।

अधीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] परवशता, परतन्त्रता, आशाकारिता। उ०—पीछे ललिता आगे स्यामा प्यारी तो आगे पिय मारग फून बिछावत जात। ...। सूरदास-प्रभू की ऐसी अधीनता देखत मेरे नैन सिरात—२०६८।

अधीनता—क्रि० अ० [सं० अधीन+ता (प्रत्य०)] अधीन होना।

अधीनी—क्रि० अ० स्त्री० [हिं० अधीनता] अधीन हुई, वश में हो गई।

अधीने—वि० [सं० अधीन] परवश, आश्रित, बशीभूत। उ०—आयु बँधार पुजि लै सौपी हरिरस रति के लीने। ज्यों डोरे बस गुडी देखियत डोलत संग अधीने—पू० ३३५।

अधीन्यौ—वि० [सं० अधीन] आश्रित, आशाकारी, दबैल, बशीभूत। उ०—हरि, तुम बलि को छलि कहा लीन्यौ। बाँधन गए, बँधाए आपुन, कौन सयानप कीन्यौ ? लए लकुटिया द्वारै ठाढे, मन अति रहत अधीन्यौ—१-१५।

अधीन्ही—वि० [सं० अधीन] आश्रित, बशीभूत, आशाकारी। उ०—जा दिन ते मुरली कर लीन्ही। ...। तब ही ते तनु सुधि बिसराई निसि दिन रहति गोपाल अधीन्ही—२३३५।

अधीर—वि० पु० [सं०] धैर्यरहित, बेचैन, व्याकुल ।
उ०—(क) जोरी मारि भजत उतही कौं, जात
जमुन के तीर । इक धावत पाछे उनहीं के, पावत
नही अधीर—५३४ । (ख) नैन सारंग सैन मोतन
करी जानि अधीर—सा० ४४ ।

अधीरज—संज्ञा पु० [सं०+अधैर्य] (१) अधीरता,
व्याकुलता, उद्विग्नता । (२) उतावलापन ।

अधूरन—वि० [हि० अधूरा] अपूर्ण, खंडित, अधकचरा,
अकुशल, अकेला । उ०—मन बाचा कर्मना एक दोउ
एको पल न बिसारत । जैसे मीन नीर नहिं त्यागत
ए खंडित ए पूरन । सूर स्याम स्यामा दोउ देखी
इत उत कोऊ न अधूरन—पृ० ३१५ ।

अधूरे—वि० [हि० अधूरा] अपूर्ण, असमाप्त ।

अधोमुख—[सं०] (१) नीचा मुँह किए हुए; मुँह झटकाए
हुए । उ०—राम-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो
विश्राम—१-५७ । (२) औंधा, उल्टा, मुँह के बल ।

अधोरध—क्रि. वि. [सं० अधोध] ऊपर-नीचे ।

अनंग—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव ।

वि.—बिना देह का, शरीररहित ।

अनंगना—क्रि. अ. [स] बेसुध होना, सुधबुध खोजाना ।

अनंगवती—वि. स्त्री. [स] कामवती, कामिनी ।

अनंगी—वि. [सं० अनंगिन] अंगरहित, बिना देह का,
अशरीर ।

संज्ञा पु० (१) परमेश्वर । (२) कामदेव । उ०—
सूरदास यह विरद सवन सुनि, गरजत अधम अनंगी
१-२१ ।

अनंत—वि. [सं०] (१) असीम, अपार । (२) असंख्य,
अनेक । उ०—एहि थर बनी क्रीड़ा गज-मोचन और
अनंत कथा स्तुति गाई—१-६ ।

अनंतनि—वि. [स. अनंत+हि. नि. (प्रत्य.)]
असंख्य, अनेकानेक । उ०—फिरि-फिरि जोनि अनंतनि
भरम्बों, अब सुख-सरन पर्यो—१-१५६ ।

अनंद, अनँद—संज्ञा पु० [स. आनंद] आनंद, हर्ष,
प्रसन्नता । उ०—(क) चौक चंदन लीपिके, धरि
आरतो सँजोइ । कहति घोषकुमारि, ऐसी अनंद जो
नित होइ—१०-२६ । (ख) बिबिधि बिलास अनंद
रसिक सुख सूरसंग तेरे गुन गावति—सा. उ. १३

(ग) यह छवि देखि भयो अनंद यदि आपु आपु
ऊपर वारी—सा. ६६ ।

वि.—आनंदित, प्रसन्न, हर्षयुक्त । उ०—बोल न
बोलिए ब्रजचंद । कीन है संतोष है सब मिलि,
जानि आप अनंद—सा. ५६ ।

अनंदना—क्रि. अ. [स. आनंद] आनंदित होना,
प्रसन्न होना ।

अनंदित—वि. [सं० आनंदित] हर्षित, मुदित, सुखी ।
उ०—कह्यो जुधिष्ठिर सेवा करत । तातें बहुत
अनंदित रहत—१-२८४ ।

अनंभ—वि. [सं० अन्=तही+ग्रह=राप=विघ्न=बाधा]
निर्विघ्न, बाधा रहित ।

अन—संज्ञा पु० [सं० अन्न] (१) खाद्य पदार्थ । उ०—
जैसे बने गिरिराज जू तैसो अन को कोट । मगन भए
पूजा-करै नर नारी बड छोटे—६११ । (२) अनाज ।
क्रि. वि. [स. अन्] बिना, बगैर ।

वि. [सं० अन्य] दूसरा, और ।

अनईस—संज्ञा पु० [हि. अनैस] वह जिसका ईश न
हो, परमात्मा, कृष्ण । उ०—दधिसुत बाहन मेखला
लेके बैठि अनईस गनोरी—सा. उ. ५२ ।

अनउत्तर—वि. [सं० अनुत्तर] निरुत्तर । उ०—सुनि सखी
सूर सरबस हरयो साँवरें, अनउत्तर महरि के द्वार
ठाढी—१०-३०७ ।

अनऋतु—संज्ञा पु० [सं० अन+ऋतु] (१) अनुपयुक्त ऋतु,
अकाल, असमय । उ०—जातें पर्या स्यामघन नाउँ ।
इतने निठुर और नहिं कोऊ कवि गावत उपमान ।
चातक की रट नेह सदा, वह ऋतु अनऋतु नहिं
हारत—पृ० ३३० । (२) ऋतु के विरुद्ध कार्य ।

अनकना—क्रि. सं [सं० आकर्ण, प्रा. आकरण, हि.
अकनना, अनकना] (१) सुनना । (२) चुपचाप या
छिपकर सुनना ।

अनकनि—क्रि. स. [सं० आकर्ण, प्रा. आकरण हि. अक-
नना, अनकना] (१) सुनकर । (२) छिपे-छिपे या
चुपचाप सुनकर ।

मुहा.—अनकनि दिए—चुप रहकर, चुपचाप सुन
कर । उ०—सूरदास प्रभु त्रिय मिलि नैन आन सुख
भयो जितए कहखिअनि अनकनि दिए—२०६६ ।

अनकही—वि. [सं. अन्=नही+कथ=कहना, हिं. अन-कहा] बिना कही हुई, अव्यक्त ।

मुहां.—अनकही दे—अवाक् रहकर, चुप होकर ।

उ.—मो मन उनही को भयो । परयो प्रभु उनके प्रेमकोस मे तुमहूँ विसरि गयो । । सूर अनकही दे गोपिन सौ खवन मूँदि उठि धायो—३४८८ ।

अनख—संज्ञा पु. [सं. अन्=पुरा+अक्ष=प्रांख, प्रां. अनख]

(१) खीम, झुंझाहट, क्रोध । उ.—(क) मृगनैनी तू अजन दे । । नैन निरखि अंग अंग निरखियो अनख पिया जु तजै—२२५४ । (ख) धनि धनि अनख उरहनो धनि धनि धनि माखन धनि मोहन लाए—३८५ । (२) दुख, ग्लानि, खिन्नता । उ.—कर कंकन दरपन लै देखो इहि अति, अनख मरी । क्यो जीवै सुयोग सुनि सूरज विरहिनि विरह मरी—३२०० । (३) ईर्ष्या, द्वेष, डाह । (४) झंझट, अनरीति । (५) डिठौना ।

वि.—(१) बुरा, अप्रिय । उ.—हित की कहे अनख की लागति है समुझहु भले सयानी—२२७५ । (२) रुष्ट, खीमी हुई । झुंझाई हुई । उ.—वेगि चलिए अनख जहँ तुम इहाँ उह वहाँ जरति है—२२५६ ।

अनखना—क्रि. अ. [हिं. अनख] क्रोध करना, झुंझाना, खीमना ।

अनखाइ—क्रि. अ. [हिं. अनख] क्रोध करके, रुष्ट होकर । उ.—गुन अवगुन की समुझन सँको, परि आई यह देव । अब अनखाइ कही, घर अपने राखी बाँधि-विचारि । सूर स्याम के पालनहार आवति है नित गारि—१-१३० ।

अनखाऊँ—क्रि. स० [हिं. अनख, अनखाना] अप्रसन्न कहूँ, खिन्नाऊँ । उ.—उठत सभा दिन मधि, सैना-पति भीर देखि, फिरि आऊँ । न्हात-खात सुख करत साहिबी, कैसे करि अनखाऊँ—६-१७२ ।

अनखात—क्रि. अ. [हिं. अनखना] खीमती है, झुंझाती है । उ.—(क) जब लगि परत निमेष अतरा जुग समान पल जात । सूरदास वह रसिक राधिका निमेष पर अति अनखान—१३४७ । (ख) सूर प्रभु दासी लोभाने ब्रज बधू अनखात—२६८० ।

अनखाती—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. अनखना] क्रोध करती है, खीमती है झुंझाती है । उ.—ऊधो जब ब्रज पहुँचे आइ । । गोपिन गृह-व्योहार बिसारे मुख सम्मुख सुख पाइ । पलक बोट (घोट) निमि पर अनखाती यह दुख कहा समाइ—३४४४ ।

अनखाना—क्रि. अ. [हिं. अनखना] क्रोध करना, रिसाना, झुंझाना, खीमना ।

क्रि. स.—अप्रसन्न करना, खिन्नाना ।

अनखानी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. अनखना] झुंझाई, रुष्ट हुई । उ.—लाल कुँवर मेरो कछु न जानै, तू है तरुनि किसोर । । सूरदास जसुदा अनखानी यह जीवनधन मोर—१०-३१० ।

अनखावत—क्रि. स. [हिं. अनखाना] खिन्नाते हो, अप्रसन्न करते हो । उ.—काहे को हो बात बनावत । । वा देखत हमको तुम मिलिही काहे को ताको अनखावत—१८७० ।

अनखाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. अनखना+आहट (प्रत्य.)] अनखने या क्रोध दिखाने की क्रिया, अनख ।

अनखी—क्रि. अ. [हिं. अनखना] झुंझाई, खीमी, रिसाई । उ.—हम अनखी या बात को लेत दान को नाउं—११४४ ।

वि. स्त्री. [हिं. अनख] क्रोधी, जल्दी खीमने-वाली ।

अनखुला—वि. [हिं. अन(उप.)+खुलना] (१) बंद । (२) जिसका कारण प्रकट न हो ।

अनखैयत—क्रि. स [हिं. अनख, अनखाना] अप्रसन्न करती (है), खिन्नाती (है) उ.—मेरो बिलग मानति यह जानति या बातन मैं कछु पेयत है । सूर स्याम न्यारे न बूझिये यह मोको नहि भावै, काहे को अन-खैयत है—२१४६ ।

अनखौही—वि. [हिं. अनख] (१) क्रोधित, रुष्ट । (२) चिढ़चिढ़ी । (३) अनुचित, बुरी । उ.—कबहुँ मोको कछु लगावति कबहुँ कहात जनु जाहु कही । सूरदास बातें अनखौही नाहिन मोपे जात सही—१२४८ । (४) क्रोध दिजानेवाली ।

अनंगत—क्रि. अ. [सं. अनग] शरीर की सुधि नहीं रख पत्ता, बेसुध हो जाता है, सुध-बुध भुजा देता है,

विदेह हो जाता है। उ.—जाकी निरखि अनंग
अनगत ताहि अनंग बढावै। सूर स्याम प्यारी छवि
निरखन आपुहि धन्य कहावै—८७५।

अनग—सज्ञा पु. [सं. अनग] कामदेव। उ.—पखीपति
सबही सकुचाने चातक अनग मरयो—२८६५।

अनगन—वि. [सं. अन्+गणन] अगणित, बहुत।
उ.—तीकें गाइ गुपालहिँ मन रे। जा गए निर्भय
पद पाए अपराधी अनगन रे—१-६६।

अनगढ़—वि [म० अन्=नही+हिं. गढ़ना] (१) बिना
गढ़ा हुआ। (२) जिसे किसी ने बनाया न हो,
स्वयंभू। उ.—ऊधौ राखिये यह बात। कहत ही
अनगढ़ व अनहद सुनत ही चपि जात—३२६२।

अनगवना—क्रि. अ. [हिं. अन्+अगवना=आगे होना]
विलंब करना।

अनगाना—क्रि. अ. [हिं. अन्+अगवना=आगे बढना]
(१) विलंब करना, देर करना। (२) टालमटोल
करना।

अनगिने—वि. [स. अन्+गणन] अगणित, बहुत।
उ.—हस उज्ज्वल पंख निर्मल, अगमलि मलि न्हहिँ।
मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि चुनि खाहिँ—
१-३६८।

अनघ—वि. [स.] (१) निर्दोष। (२) पवित्र।
सज्ञा पु.—पुण्य।

अनवरी—सज्ञा स्त्री. [सं. अन्=वेरद्व+परी=बडी]
कुसमय।

अनघैरी—वि [स. अन्+हिं. घेरना] बिना बुझाया हुआ,
अनिमंत्रित, अनाहूत।

अनघोर—सज्ञा पु [स. घोर] प्रवेर, अत्याचार।

अनचहा—वि. [स. अन्=नही+हिं. चाहना] अप्रिय,
अनिच्छित।

अनचाखा—वि. [हिं. अन् (उप.)+खलना] बिना खाया
हुआ।

अनचाहत—वि. [स. अन्=नही+वाहना] जो न चाहे,
जो प्रेम न करे।

अनजान—वि. [सं. अन्+हिं. जानना] (१) अज्ञानी,
नासमझ। (२) अपरिचित, अज्ञात।

क्रि वि.—अज्ञानतावश, नासमझी के कारण। उ.—

डगरि गए अनजान ही गह्यो जाइ बन घाट—
१००६।

अनजानत—क्रि. वि. [स. अन्+हिं. जानना (अन-
जान)] अनजाने में, बिना जाने ही, अज्ञानतावश।

उ.—(क) धीर-धीर कहि कान्ह असुर यह, कंदर
नाही। अनजानत सब परे अघा-मुख-भीतर माही—
४३१। (ख) अनजानत अपराध किए प्रभु, राखि
सरन मोहिं लेहु—५५८। (ग) व्याकुल भयो
डर्यौ जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी—
१०६६।

अनजाने अनजानै—क्रि वि. [स. अन्+हिं. जानना=
अनजान] अज्ञानतावश, नादानी में, नासमझी के
कारण उ.—अनजाने में करी बहुत तमसौ बरि-
याई। ये मेरे अपराध छमहु, त्रिभुवन के राई—
४६२।

अनट—सज्ञा पु. [स. अनृत=प्रत्याचार] उपद्रव,
अन्याय, अत्याचार।

अनडीठ—वि. [स. अन्=नही+स. दृष्ट, प्रा. डिट्ट, हिं.
डीठ] अनदेखा, बिना देखा हुआ।

अनत—वि. [स. अन्=नही+नत=भुका हुआ] न भुका
हुआ, सीधा।

क्रि. वि. [स. अन्यत्र, प्रा. अन्नत्त] और कहीं,
दूसरी जगह, अन्य स्थान पर। उ.—(क) हरि
चरनारविंद तजि लागत अनत कहूँ तिनकी मति काँची-
१-१८। (२) जोर-जल-जप ता नहि कीन्हौ, वेद
विमल नहि भार्यौ। अति रस लुब्ध स्वान जूठन
जो, अनत नही चित राख्यौ—१-१११। (ग)
अतकाल तुम्हरे सुमिरन गति, अनत कहूँ नहि दाउँ—
१-१६४। (घ) मेरी मन अनत कहाँ सुख पावै—१-
१६८। (ङ) राखिये दृग मद्ध दै जै अनत नाही जान-
सा. १०७।

अनतै—क्रि वि. [स. अन्यत्र, प्रा., अन्नत्त, हिं. अनत]
दूसरी जगह को, अन्य स्थान के लिए, और कहीं।
उ.—(क) मुरली मधुर बजावहु मुख ते रख जनि अनतै
फेरौ—सा. ८। (ख) जाके गृह मैं प्रतिमा होई।
तिन तजि पूजै अनतै सोद—१२-३।

अनदेखा—वि. [सं. अन्=नही+देखना] बिना देखा हुआ ।

अनदेखे—क्रि. वि. [हि. अनदेखा] बिना देखे हुए ही, अनजान में ही । उ.—(क) कहहि भूख औ नीद जीवन हौं जानत नाही । अनदेखे वे नैन लगे लोचन पथ-वाही—१० उ. ८ । (ख) सुनहु मधुप अपने इन नैन अनदेखे बलबीर । घर-आँगन न सुहात रैन दिन बिसरे भोजन-नीर—३१३७ ।

अनदोषे—वि. [सं. अन्+दोष] निर्दोषी, निरपराधी । उ.—इहि मिस देखन आवति ग्वालनि, मुँह फाटे जु गँवारि । अनदोषे को दोष लगावति, दई देइगौ टारि—१०-२६२ ।

अनन्य—वि. [सं.] एकनिष्ठ, एक में ही लीन । उ.—(क) भक्त अनन्य कछु नहि माँगै । तातै मोहि सकुच अति लागै—३-१३ । (ख) और न मेरी इच्छा कोई । भक्ति अनन्य तुम्हारी होइ—७२ । (ग) मधुकर कहि कैसे मन मानै । जिनके एक अनन्य ब्रत सूमै क्यों दूजौ उर आनै—३१३६ ।

अनप्रासत—संज्ञा पु. [सं. अन्नप्राशन] बच्चों को पहले-पहल अन्न चटाने का संस्कार, चटावन, पसनी, पेहनी । उ.—कान्ह कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट् मास गए । नद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्रासत जोग भए—१०-८८ ।

अनफाँस—संज्ञा पु. [हि. अन् + फाँस=पाश] मोक्ष, मुक्ति ।

अनबन—वि. [सं. अन्=नही + बनना] भिन्नभिन्न, अनेक, विविध । उ.—तुम फूँटे बन अनबन भौंती ।

अनबोली—वि. स्त्री. [सं. अन्=नही + हि. बोलना, पु. अनबोला] चुप या मौन रहनेवाली । उ.—(क) हौं पठई इक सखी सयानी, अनबोली दै सैन । सूर-स्याम राधिका मिलै बिनु, कहा लगे दुख दैन—७४६ । (ख) अनबोली क्यों न रहै री आली तू आई मोसौं बात बनावन—२२०४ ।

अनबोले—वि. [सं. अन्=नही + हि. बोलना] न बोलनेवाला, चुप, मौन । उ.—(क) चिबुक उठाय कह्यो अब देखो अजहुँ रहति अनबोले—१६०६ । (ख) जो तुम हमें जिवायो चाहत अनबोले होइ रहिए—३०६३ ।

अनभल—संज्ञा पु. [सं. अन्=नही+हि. भला] बुराई, हानि । उ.—सूर अनभल आन को सुनत बृक्ष बैरि बुनाय—सा. उ.—४५ ।

अनभली—वि. स्त्री. [सं. अन्=नही + हि. भली] बुरी, हेय निंदित । उ.—सूर प्रभु को मिली भेट भली अनभली चून हरदी रग देह छाही—१७८८ ।

अनभाया—वि. [सं. अन्+हि. भाना=अच्छा लगना] जो न भावे, अप्रिय ।

अनभावत—वि. [सं. अन्+हि. भावना=प्रनभावना, अनभाया] जो अच्छा न लगे, जो न रुचे । उ.—खोलि किवार पैठ मंदिर में दूध दही सब सखनि खवायो । ऊखल चढि सोकै को लीन्हौ, अनभावत भुईं में ढरकायो—१०-३३१ ।

अनभौ—संज्ञा पु. [सं. अन्=नही+भव=होना] अचंभा, अनहोनी बात ।

वि.—अपूर्व, अद्भुत, अलौकिक । उ.—तुम घट ही मो स्याम बताए । मोहन बदन बिलोकि मानि रुचि हँसि हरि कठ लगाए । हम मतिहीन अजान अल्पमति तुम अनभौ पद ल्याए—३२०१ ।

अनमद—वि. [सं. अन्=नही + मद] गर्वरहित ।

अनमना—वि. [सं. अन्यमनस्क] (१) उदास, खिन्न । (२) अस्वस्थ ।

अनमनी—वि. स्त्री [सं. अन्यमनस्क, हि. अनमना (पु.)] उदास, खिन्न । उ.—मैं तुम्हें हँसत-खेलत छाँडि गई, अब न्यारे अनबोले रहे दोऊ । इत तुम रुखे ह्वै रहे गिरिधर उत अनमनी अंचल उर माई मुख जघ लगाइ रही ओऊ—२२४० ।

अनमने—वि. [सं. अन्यमनस्क, हि. अनमना] उदास, खिन्न । उ.—मेरे इन नैन इते करे । घरे न धीर अनमने रुदन बल सो हठ करनि परे—पृ. ३३१ ।

अनमनै—वि. [सं. अन्यमनस्क, हि. अनमना] खिन्न, उदास, सुस्त, उचटे चित्त का । उ.—जाल अनमनै कत होत हो तुम देजो धौं कैसे कैसे करि ल्याइ हौं—२२०६ ।

अनमाया—वि. [हि. अन् (उप.) + मायना=मापना] जो नापा न जा सके, जो न समावे ।

अनमारग—सज्ञा पु. [सं. अन्=बुरा + मार्ग] (१) कुमार्ग, बुरी राह। (२) दुराचार, अधर्म, पाप।
उ.—प्रकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२६।

अनमिल—वि. [सं. अन्=नही + हिं. मिलना] (१) बेमेल, बेजोड़, असंबद्ध। (२) पृथक्, भिन्न, निर्लिस।

अनमिलउक्ति—सज्ञा स्त्री. [सं. अन्=नही + मिल=मिलना और उक्ति] अक्रमातिशयोक्ति अलंकार जिसमें कारण के साथ ही कार्य का होना बताया जाता है। उ०—गिरिजापति-पितु-पितु-पितु ही ते सौगुन सी दरसावै। ससिसुन-बेद-पिता की पुत्री आजु कहा चित चावै। सूरजसुत माता सुबोध की आपुन आदि ढहावै। सूरज प्रभु मिलाप हित स्यानी अनमिल उक्ति गनावै—सा० १५।

अनमिलती—वि. स्त्री. [सं. अन्=नही + हिं. मिलना, पु. अनमिलता] (१) बेमेल, बेजोड़, बेतुकी, अनुचित।
उ.—ये री मदमत ग्वालि फिरति जोबन मदमाती। गोरस बेचनहारि गूजरी अति इतराती। अनमिलती बातें कहति सुन पैहै तेरो नाह। कहँ मोहन कहँ तू रहै कबहिं गही तेरी बाँह—१०६५। (२) अप्राप्य, अलभ्य, अदृश्य।

अनमेष—वि. [सं. अनिमेष] स्थिर दृष्टि, टकटकी के साथ। उ०—अनमेष दृग दिए देखे ही मुखमंडली वर वारि—२२१६।

अनमोल—वि. [सं. अन्=नही + हिं. मोल] (१) अमूल्य, मूल्यवान। (२) सुन्दर।

अनमोलना—क्रि. स. [सं. उन्मीलन] आँख खोलना।

अनय—सज्ञा पु. [सं.] (१) अमंगल, दुर्भाग्य। (२) अनीति, अन्याय।

अनयास—क्रि. वि. [सं. अनायास] बिना प्रयास या परिश्रम, अचानक, एकाएक। उ०—(क) अदभुत राम नाम के अक। अंकार अज्ञान हरन को रवि-ससि जुगल-प्रकास। बासर-निर्वास दोउ करे प्रकासित महा कुमग अनयास—१-६०। (ख) घर ही बैठे दोऊ दास। ऋद्धि सिद्धि मुक्ति अभयपद दायक आइ मिले प्रभु हरि अनयास—१० उ०—१३५।

अनरँग—वि. [सं. अन्=नही + रंग] रंगरहित, रंगहीन, दूसरे रंग का। उ०—सेत, -हरी, रातो अरु पियरी रंग लेत है धोई। कारौ अपनौ रंग न छाँड़े, अनरँग कबहुँ न होई—१-६३।

अनरना—क्रि. स. [सं. अनादर] अनादर करना।

अनरस—सज्ञा पु. [सं. अन्=नही + रस] (१) रस-हीनता, शुष्कता। (२) कोप, मान। (३) मनोमालिन्य, अनबन, बुराई। (४) दुख, उदासी, उल्लाहहीनता। उ०—लीन्हे पुहुप पराग पवन कर श्रीडत चहुँ दिसि धाइ। रस अनरस संयोग बिरहिनी भरि छाँड़ति मन भाइ—२३६०।

अनरसा—वि. [सं. अन्=नही + रस] अनमना, माँदा, बीमार।

अनराता—वि. [सं. अन्=नही + रक्त] बिना रंगा हुआ, सादा।

अनरीति—सज्ञा स्त्री. [सं. अन्=बुरी + रीति] (१) कुरीति, कुचाल, कुप्रथा। (२) अनुचित व्यवहार, अत्याचार। उ०—इतनी कहत बिभीषन बोल्यो बधू पाँय परौ। यह अनरीति सुनी नहिं सवर्नन अब नई कहा करौ—६-६८।

अनरुच—वि. [हिं अन् (उप.) + रुचि] जो पसंद न हो, अरुचिकर।

अनरुचि—सज्ञा [सं. अन्=नही + रुचि] (१) अरुचि, अनिच्छा। (२) भोजन अच्छा न लगने की बीमारी। उ०—मोहन काहै न उगिलौ माटी। बार-बार अनरुचि उपजावति, महारि हाथ लिए साँटी—१०-२५४।

अनरूप—वि. [सं. अन्=नही=बुरा + रूप] (१) कुरूप। (२) असमान, अतुल्य।

अनरै—क्रि. स. [सं. अनादर, हिं. अनरना] अनादर या अपमान करता है। उ०—मधुकर मन सुनि जोग डरै। और सुमन जो अमित सुगधित सीतल रुचि जो करै। क्यौ तुम कोकहिं बनै सरै और सबै निदरै—३३११

अनर्थ—सज्ञा पु. [सं.] उपद्रव, उत्पात, अनिष्ट, बिगाड़।

अनल—सज्ञा पु. [सं.] अग्नि, आग।

अनलहते—वि. [हि. अन्+नहना] जो उपयुक्त न हों, जिन पर विश्वास न किया जा सके, अनुचित ।
उ०—दिन प्रति सबै उरहने कं मिस आवति है उठि प्रात । अनलहो अरराव लगावति, बिकट बनावतिं बात—१०-३२६ ।

अनलायक—वि. [सं. अन्=नही+प्र० लायक=योग्य] अयोग्य, नालायक । उ०—प्रनलायक हम है की तुम हौ कहो न बात उधारि । तुमहू नवल नवल हमहूँ है बडी चतुर हो ग्वारि—२४२० ।

अनलेख—वि० । सं० अन्=नही+लक्ष्य=देखने योग्य] अदृश्य, अगोचर ।

अनवय—सज्ञा पु० [सं० अन्वय] वंश, कुल ।

अनवाद—सज्ञा पु० [सं० अन्=नही+वाद=वचन] कटुवचन, कुबोल ।

अनसंग—सज्ञा पु० [सं० अन्य+संग] (१) दूसरे का साथ ।
उ०—देख हुलसत हीय सब के निरखि अद्भुत रूप । सूर अनसंग तजन तावत अयोपतिका सूप—सा० ३६ । (२) 'असंगति' नामक अलंकार जिसमें कार्य का होना एक स्थान पर वर्णित हो और कारण का दूसरे स्थान पर, अथवा जो समय किसी कार्य के लिए निश्चित है तब कार्य का होना न दिखाकर अन्य समय दिखाया जाय ।

अनसत्त—वि० [सं० अन्+सत्य] असत्य, झूठा ।

अनसमझ—वि० [सं० अन्=नही+समझना] नासमझ, अनजान ।

अनसमै—क्रि० वि० [सं० अन्=नही+समय] असमय, कुसमय, कुअवसर, बेमौका । उ०—ऋतु बसन्त अनसमै अधममति पिक सहाउ लै धावत । प्रीतम संग न जान जुवती रुचि बोलेहु बोल न आवत—३४८६ ।

अनसह—वि० [सं० अन्=नही+हि० सहना] जो सहा न जा सके, असहनीय ।

अनहद (नाद)—सज्ञा पु० [सं० प्रनाहतनाद] योग का एक साधन जिसमें हाथ के अँगूठों से कान बंद करके शब्द-विशेष सुनते हैं । उ०—(क) ऊँओ राखिए वह बात । कहत हो अनगठिन अनहद सुनत हो चपि जात—३२९२ । (ख) हृदय-कमल मैं ज्योति बिराजै, अनहद-नाद निरन्तर बाजै—३४४२ ।

अनहित—सज्ञा पु० [सं० अन्=नही+हित] (१) अहित, अयकार, बुराई, हानि । उ०—(क) बाल-बिनोद बचन हित-अनहित बार-बार मुख भाखै । मानो बग बगदाइ प्रथम दिसि आठ-सात-दस नाखै—१-६० । (ख) चाहत गंध बैरी बीर । आपनो हित चहत अनहित होत छोडत तीर—सा० २८ । (२) अहितचिन्तक, शत्रु ।

अनहोता—वि० [सं० अन्=नही+हि० होना] अनहोना, असंभव, अचंभे का ।

अनहोनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्=नही+हि० होना] असंभव बात, अलौकिक घटना । उ०—कहिँ बिधि करि कान्हहिँ समुझैहौ ? मैं ही भूलि चंद दिखरायौ, ताहि कहत मैं खैहौ । अनहोनी कहूँ भई कन्हैया, देखी-सुनी न बात । यह तौ आहि खिलौना सबकौ, खान कहत तिहिँ तात—१०-१८६ ।

अनाकनो—सज्ञा स्त्री० [सं० अनाकर्णन, हि. आनाकानी] सुनी अनसुनी करना, टालमटोल ।

अनागत—क्रि. वि. [सं०] अकस्मात्, अचानक, सहसा, एकाएक । उ०—सुने हे स्याम मधुपुरी जात । सकुचति कहि न सकति काहू सौ गुप्त हृदय की बात । सकति बचन अनागत कोऊ कहि जो गई अधरात—२५१६ ।

वि—(१) अनादि, अजन्मा । उ०—नित्य अखंड अनूप अनागत अबिगत अनघ अनंत । जाको आदि कोउनहिँ जानत कोउ नहिँ पावत अत । (२) अपूर्व, अद्भुत । उ०—(क) देखेहु अनदेखे से लागत । यद्यपि करत रग भरि एकहि एकटक रहे निमिष नहिँ त्यागत । इत रुचि दृष्ट मनोज महासुख उत मोभा गुन अमित अनागत—१६६५ । (ख) पल इक माँह पलट सो लीजत प्रगट प्रीति अनागत । सूरदास स्वामी बंसी बस मुराछ निमेष न जागत—२३४२ ।

संज्ञा पु०—संगीत के अंतर्गत ताल का एक भेद ।

अनागम—सज्ञा पु० [सं०] आगमन का अभाव, न आना ।

अनाघात—संज्ञा पु० [सं०] संगीत का वह ताल या विराम जो गायन में चार मात्राओं के बाद आता है और कभी कभी सम का काम देता है । उ०—

उपजावत गावत अति सुंदर अनाघात के ताल—
२३२० ।

अनाचार—संज्ञा पु. [सं.] (१) निंदित आचरण,
दुराचार । (२) कुरीति, कुचाल ।

अनाथ—वि. [सं.] (१) असहाय, अशरण । (२)

दीन, दुखी । उ०—(क) परम अनाथ विवेक-
नैन बिनु, निगम-ऐन क्यो पावै—१-४८ । (ख)

सूरदास अनाथ के है सदा राखनहार—सा. ११७ ।

अनादि—वि. [सं.] जिसका आदि न हो, स्थान और
काल से अबद्ध ।

अनाना—क्रि. स० [स. आनयनम्] मंगाना ।

अनापा—वि. [स. अ=नही + हि. नापना] (१)
बिना नापा हुआ । (२) जो नापा न जा सके ।
असीम ।

अनायास—क्रि. वि. [स.] बिना प्रयास या परिश्रम,
बैठे बिठाए, अकस्मात्, सहसा ।

अनारंगिन—संज्ञा पु. [हि. नारंगी] (१) नारंगी
के रंग की वस्तु । (२) नारंगी की तरह लाल
ओठ । उ०—कनक सपुट कोकिला रव बिबस ह्वै
दे दान । बिकच कंज अनारंगिन पर लसित करत पै
पान—सा० उ०-५ ।

अनारी—वि. स्त्री [हि. अनाडी] नासमझ, नादान ।

उ०—इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अनारी ।
अपनो दूध छाँडि को पीवै खारे कृप को बारी—
३३०० ।

अनावृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] पानी न बरसना, सूखा ।

उ०—सब यादव मिलि हरि सौ इह कह्यो मुफलक
सुन जहँ होइ । अनावृष्टि अतिवृष्टि होत नहि इह
जानत सब कोई—१० उ०-२७ ।

अनासा—वि. [स. अ=नही + नाश] जिसका नाश न
हुआ हो, जो टूटा हुआ न हो । उ०—जल-
चरजासुत-सुत सम नासा धरे अनासा हार—
सा० ३५ ।

अनाहक—क्रि. वि. [फा. ना + अ. हक=नाहक] बृथा,
व्यर्थ, निष्प्रयोजन । उ०—होउ मन, राम-नाम कौ
गाहक । चौरासी लख जीव-जोनि मैं भटकत फिरत
अनाहक—१-३१० ।

अनाहत—वि. [सं.] (१) जिस पर आघात न हुआ
हो । (२) जिसका गुणन न हुआ हो ।

संज्ञा पु.—योग की एक क्रिया जिसमें हाथ के
अँगूठों से कान भूँदकर ध्यान करने से शब्द-विशेष
सुनते हैं ।

अनाहत बानी—संज्ञा स्त्री. [स. अनाहत + वाणी]
आकाश वाणी, देववाणी, गगनगिरा । उ०—समदत
भई अनाहत बानी कंस वान भनकारा । याकी
कोखि औतरे जो सुत करै प्रान-परिहारा ।

तब बसुदेव दीन ह्वै भाष्यौ पुरुष न तिय बध करई ।

मोको भई अनाहत बानी तातै सोच न टरई—१०४

अनाहूत—वि. [सं.] बिना बुलाया हुआ, अनिमंत्रित ।

अनिद—वि. [म. अनिद्य] (१) जो निंद के योग्य
न हो । (२) उत्तम, प्रशसनीय ।

अनियार्ई—वि. पु. [स. अन्यायिन, हि. अन्यायी]
अन्यायी, अनीतिकारी, अंधेर करनेवाला । उ०—अरे
मधुप लपट अनियार्ई यह सँदेस कत कहै कन्हार्ई—
३४०८ ।

अनित्य—वि. [सं.] (१) जो सब दिन न रहे,
अस्थायी । (२) नश्वर ।

अनिप—संज्ञा पु. [हिं. अनी=सेना + प=पालक=स्वामी]
सेनापति ।

अनिमा—संज्ञा स्त्री. [स. अणिमा] अष्टसिद्धियों में पहली
जिससे सूक्ष्म रूप धारण करके अदृश्य हो जाते हैं ।

अनिमिष—वि. [सं.] एकटक दृष्टि से देखनेवाला ।

क्रि. वि.—(१) बिना पलक गिराय । (२)
निरंतर ।

संज्ञा पु.—देवता ।

अनिमेष—वि. [सं.] स्थिर दृष्टि, टकटकी के साथ ।

क्रि. वि.—(१) एकटक । (२) निरंतर ।

अनियाउ—संज्ञा पु. [स. अन्याय] अन्याय, अनीति ।

अनियारे—वि. [स. अणि=नोक + हि. आर (प्रत्य.)

हि. अनियारा] नुकीला, कटीला, धारदार, तोड़ण ।

(क) नैन कमल-दल से अनियारे । दरसत तिन्हें कटै

दुख भारे—३-१३ । (ख) उ०—ठाढी कुंअरि राधिका

लोचन मीचत तहँ नरि आग । अति बेसाल चंचल

अनियारे हरि हाति न सनाग—६७५ ।

अनियारो, अनियारौ—वि. [सं. अणि=नोक+हि. आर (प्रत्य.) हिं. अनियारा] नुकीला, कटीला, तीव्र, पैना । उ०—(क) रघुपति अपनो प्रन प्रतिपारचौ । तारचो कोपि प्रबल गढ, रावन टूक-टूक करि डारचौ ।
... .. रहचौ मांस को पिंड, प्राण लै गयौ बान अनियारौ—६-१५६ । (ख) जाहि लगै सोई पै जानै प्रेम-बान अनियारौ—२८४८ ।

अनिरुद्ध—मज्ञा पु. [सं.] श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के पुत्र जिनका विवाह ऊषा से हुआ था ।

अनिर्वचनीय—वि. [सं.] जिसका वर्णन न हो सके, अकथनीय ।

अनिल—सज्ञा पु. [सं.] वायु, पवन, हवा ।

अनिवार्य—वि. [सं.] (१) जो हटे नहीं, अटल । (२) जो अवश्य घटित हो । (३) परम आवश्यक ।

अनी—सज्ञा स्त्री. [सं. अणि=अग्रभाग, नोक] नोक सिरा, कोर । उ०—भौह कमान समान बान सेना है युग नैन अनी ।

सज्ञा स्त्री. [सं. अनीव=समूह] समूह, दल, सेना । उ०—नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर-नर-असुर-अनी । काल-कर्म - गुन और अंत नहि, प्रभु इच्छा रचनी—२-२८ ।

सज्ञा स्त्री. [हिं आन=मर्यादा] ग्लानि, खेद ।
अनीक—सज्ञा पु. [सं.] सेना, कटक, समूह । उ०—सारगसुत नीकन में सोहत मनो अनीक निहार—सा० ३५ ।

अनीठ—वि. [सं. अनिष्ठ, प्रा. अनिट्ठ] (१) अप्रिय, अनिच्छित । (२) बुरा, खराब ।

अनीतन—वि. [सं. अ=नहीं+नीतन=नेत्र] अनयन, नेत्रहीन, अंधा । उ०—तमहरसुत गुन आदि अत कवि को मतिवत विचारो । मेरे जान अनीतन इनको कीनो बिघ गुन वारो—सा० ४० ।

अनीति—सज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नीति विरोध, अन्याय । उ०—जाकी नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२६ । (२) अंधेर, अत्याचार ।

अनीस—वि० [सं० अनीशा, हिं. अनीश] (१) अनाथ, असमर्थ । (२) जिसके ऊपर कोई न हो ।

संज्ञा पुं०—(१) विष्णु । (२) जीव, माया ।

अनीह—वि० [सं०] इच्छारहित, निस्पृह । उ०—अज-अनीह-अबिरुद्ध-एकरस, यहै अधिक ये अवतारी—१०-१७१ ।

अनु—अव्य० [हिं] हाँ, ठीक है ।

अनुकरण—सज्ञा पु. [सं.] (१) देखादेखी आचरण । (२) पीछे आने वाला व्यक्ति ।

अनुकूल—वि० [सं.] (१) पक्ष में रहने वाला, हितकर । (२) प्रसन्न । उ०—मुकुट सिर धारै, बनमाल कोस्तुभ गरै, चतुर्भुज स्याम सुन्दरहिँ ध्यायौ । भए अनुकूल हरि, दियौ तिहिँ तुरत बर जगत करि राज पद अटल पायौ—४-१० ।

क्रि० वि०—और, तरफ ।

अनुकूलना—क्रि० सं० [सं० अनुकूलन, हिं० अनुक्ल] (१) पक्ष में होना, हितकर होना । (२) प्रसन्न होना ।

अनुकूली—क्रि० सं० [हिं० अनुकूलना] (१) प्रसन्न हुई । (२) हितकर हुई ।

अनुकूले—वि० [अनुकूल] समान, मिलता जुलता । उ०—लोचन सपने के भ्रम भूले ।.... । मोते गये कुम्ही के जर लौ ऐसे वे निरम्ले । सूर स्याम जलरासि परे अब रूप-रंग अनुकूले—पृ० ३३४ ।

अनुगामी—वि० [सं०] (१) पीछे चलनेवाला । उ०—दरभूषन षणषन उठाइ दै नीतन हरिघर हेरत । तनु अनुगामी मनि मैं भैके भीतर सुरुच सकेरत—सा० ३ । (२) आज्ञाकारी ।

अनुग्रह—सज्ञा पु० [सं०] (१) कृपा, दया । (२) अनिष्ट-निवारण ।

अनुधातन—सज्ञा पु० [सं० अनुधात] नाश, संहार । उ०—कालीदमन केसिकर पातन । अघ अरिष्ठ धेनुक अनुधातन—६८२ ।

अनुच—वि० [सं० अन्+उच्च] जो श्रेष्ठ या महान न हो । उ०—इहिँ विधि उच्च-अनुच्च तन धरि-वरि, देस-विदेस बिचरतै—१-२०३ ।

अनुचर—सज्ञा पु० [सं०] (१) दास, सेवक (२) सहचर, साथी ।

अनुज—वि [सं. अनु+ज] जो पीछे उत्पन्न हुआ हो ।
संज्ञा पुं०—छोटा भाई ।

अनुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा ।

अनुताप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तपन, जलन । (२)
दुःख खेद । (३) पछतावा ।

अनुतर—वि० [सं० अनु=नही+उत्तर] निरुत्तर, मौन ।

अनुदिन—वि० [सं०] । नित्यप्रति, प्रतिदिन । उ०—
सगति रहे साधु की अनुदिन भवदुख दूरि नसावत—
२-१७ ।

अनुनय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनय, प्रार्थना ।
(२) मनाना ।

अनुपम—वि० [सं०] उपमा रहित, बेजोड़ । उ०—
(क) सोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि
की अरुनाई—६१६ । (व) गृह ते चलो गेप-
कुमारि । खरक ठाढो देख अदभुत एक अनुपम मार
—सा० १४ ।

अनुप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] खाना ।

अनुभव—संज्ञा पुं० [सं०] जानकारी, परीक्षा-जन्य ज्ञान ।

अनुभवति—क्रि. स. [सं० अनुभव, हि अनुभवना]
अनुभव करती है, समझती है, मानती है । उ—पुन्य
फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नैद-धरनि
१०-१०६ ।

अनुभवना—क्रि. स. [सं० अनुभव] अनुभव करना ।

अनुभवी—वि. [सं० अनुभवित्] अनुभव या जानकारी
रखनेवाला ।

अनुभेद—संज्ञा पुं० [उप अनु+स. भेद] भेद, उप-
भेद । उ.—सखा परस्पर मारि करै, कोउ कानि न
मानै । कौन बडौ को छोटा, भेद-अनुभेद न जानै—
१०-५८६ ।

अनुमान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अटकल, अंदाज । उ—
जसुमत देख अपनी कान । बरष सर को भयो पूरन
अबै ना अनुमान—सा ११४ । (२) विचार, निश्चय,
भावना । उ.—सूरप्रभु अनुमान कीन्हौ, हरौ इनके
चीर—७८३ । (३) एक अलंकार जिसमें अटकल के
आधार पर कोई बात कही जाय । उ.—लै कर गेद
गए है खेलन लरिकन सग कन्हौ । यह अनुमान गयो
कालीतट सूर साँवरो माई—सा. १०२ ।

अनुमानत—क्रि. स. [सं० अनुमान, हि अनुमानना]
अनुमान करते हैं, सोचते हैं । उ.—यह संपदा कही
कयो पचिहै बालसँघाती जानत है । सूरदास जो देते
व छू इक कहो कहा अनुमानत है—पृ. ३३० ।

अनुमानना—क्रि. स. [सं० अनुमान] अनुमान करना,
सोचना ।

अनुमानौ—क्रि. स. [सं० अनुमान, हि अनुमानना]
अनुमान करती हूँ, सोचती-विचारती हूँ । उ.—
स्यामहिं मै कैसे पहिचानी . . . पुनि लोचन टह-
राइ निहारति निमिष भेटि वह छबि अनुमानौ । औरै
भाव और कछु सोभा कही सखी कैसे उर आनौ—
१४२६ ।

अनुमान्यौ—क्रि. स. भूत. [सं० अनुमान, हि अनु-
मानना] अटकल लगाई, अनुमान किया, सोचा,
विचारा । उ—(क) राधा हरि के भावहि जान्यो ।
इहँ बात कहौ इ । आगे मन ही मन अनुमान्यौ—
१५२५ । (ख) मधुबन ते चलयौ तबहि गोकुल निय-
रान्यौ । देखत ब्रजलोग स्याम आयौ अनुमान्यौ—
२६४६ ।

अनुमान्हो—क्रि. स. [सं० अनुमान, हि अनुमानना]
अनुमान किया, सोचा, विचारा । उ—अब नहि
राखौ उठाइ, बँरी नहि नान्हो । मारी गज पै रुँदाइ
मनहिं यह अनुमान्हो—२४७५ ।

अनुरक्त—वि [सं०] (१) आदर्श, प्रेमयुक्त । (२) लीन ।
उ.—अंबरीष राजा हरि-भक्त । रहै सदा हरि-पद
अनुरक्त—६-५ ।

अनुरत—वि. [सं०] लीन, आसक्त, अनुरागी । उ.—
चरननि चित्त निरतर अनुरत, रसना चरित-रसाल—
१-१८६ ।

अनुराग—संज्ञा पुं० [सं०] प्रीति, प्रेम, आसक्ति । उ.—
सूरदास अनुराग प्रथम ते बिषय बिचार बिचारो —
सा. ४०

अनुरागत—क्रि. स. [सं० अनुराग, हि अनुरागना]
आलस होता है, प्रेम करता है, लीन होता है । उ—
स्याम बिमुख नर-नारि बृथा सब कैसे मन इनिसो
अनुरागत—११७५ । (२) प्रसन्न होता है । उ.—
लोल पोल भलक कुडल की, यह उपमा कछ लागत ।

अ मानहुँ मकर सुधा - सर क्रीडत, आपु - आपु
अनुरागत - ६४५ ।

अनुरागति—क्रि. स. स्त्री [सं. अनुराग, हि. अनुरागना] आसक्त होती है, प्रीति बढ़ाती है । उ.—
गूँगी बातनि यौ अनुरागति, भँवर गुजरत कमल
माँ बढहि—१०-१०७ ।

अनुरागना—क्रि. स. [सं. अनुराग] प्रेम करना,
आसक्त होना ।

अ अनुरागि—क्रि. स. [स. अनुराग, हि. अनुरागना]
अप्रेम, सरुचि, लगन के साथ । उ—आजु नंद
अ नदन रग भरे । । पुहुप मजरी मुत्तनि माला
अ अंग अनुरागि धरे । रचना सूर रची बृदावन, आनंद
अ काज करे—६८६ ।

अनुरागिनि—वि. स्त्री [स. अनुरागिन्, हि. अनुरा-
गिनी] प्रेम करनेवाली, अनुराग रखनेवाली । उ—
अ नंदन बस तेरे री । सुनि राधिका परम बडभागिनि
अ अनुरागिनि हरि केरे री—१६४१ ।

अनुरागी—वि. [सं. अनुरागिन्] (१) अनुराग करने
वाला, प्रेमी । (२) श्रद्धा रखनेवाला, भक्त । उ.—
अ बेनासी कौ आगम जान्यौ सकल देव अनुरागी—
१०-४ ।

अनुरागे—क्रि. स. [स. अनुराग, हि. अनुरागना]
अनुरक्त हुए, आसक्त हुए । उ. (क) लै बसुदेव धँमे
अ दह सूप, सकल देव अनुरागे—१०-४ । (ख) नवल
अ गुल, नवली राधा, नय प्रेम रस पाग । अवर बन-
अ निहार दाउ क्रीडत आपु-आपु अनुरागे—६८२ ।
(.) दल्लोकि दखत सब कौतुक, बाल-केलि अनु-
अ राग—४१६ । (घ) आवत बलराम स्वाम सुनत
अ दौरि चली बाम मुकुट भल्ल पीताबर मन मन अनु-
अ राग—२६५२ ।

अनुरागे—क्रि. स. [सं. अनुराग, हि. अनुरागना]
अनुरक्त होना है, प्रीति करता है । उ.—त्रिकुटी मग
अ भग तराटक नैन नैन लगि लागै । हंसनि प्रकास
अ सुमुख कुडल मिलि चद सूर अनुरागे—३०१४ ।

अनुरागौ—क्रि. स. [स. अनुराग, हि. अनुरागना]
अ प्रेम करो, प्रीति रखो । उ.—ऐसौ जानि मोह कौ
अ त्यागौ । हरिचरनारविद अनुरागौ—७-२ ।

अनुराग्यौ—क्रि. स. भूत. [स. अनुराग, हि. अनुरागना]
अनुराग किया, प्रीति की । उ.—(क) करि सकल
अ अन्नजल त्याग्यौ । केवल हरि-पद सौ अनुराग्यौ—१-
अ ३४१ । (ख) सिव-पद-कमल हृदय अनुराग्यौ—
अ ४-५ ।

अनुराध—सज्ञा पु. [स.] विनय, प्रार्थना, याचना । उ.—
(क) तुम सन्मुख म बिमुख तुम्हारी, मै असाध तुम
अ साध । धन्य धन्य कहि कहि जुवतिन को आप करत
अ अनुराध—पृ. ३४३ (१६) । (ख) वहै चूक जिय
अ जानि सखी सुन मन ले गए चुराय । ... । सूर
अ स्वाम मन देह न मरौ पुनि करिहौ अनुराध
अ १४६२ ।

अनुराधना—क्रि. स. [स. अनुराध] विनय करना,
मनाना, याचना करना ।

अनुराध्यौ—क्रि. स. [स. अनुराध, हि. अनुराधना]
अ आराधना की, याचना की, मनाया, विनय की । उ—
अ ग्राव मुनलरी तारि कै अचरा सौ बाँध्यौ । इह बहानौ
अ करि लियौ हरि मन अनुराध्यौ—१५४१ ।

अनुरूप—वि० [स०] (१) समाप्त, सट्टा । (२) योग्य
अ अनुकूल ।

अनुरोध—सज्ञा पु. [स.] (१) रुकावट, बाधा ।
(२) प्रेरणा, उत्तेजना । (३) आग्रह ।

अनुमधानना—क्रि. स. [स. अनुमधान] (१) खोजना,
अ ढूँढ़ना । (२) सोचना, विचारना ।

अनुसरई—क्रि. स. [हि. अनुसरना] साथ चल मके,
अ अनुयायी हो सके । उ०—नहि कग लकुटि मुमति
अ सनसगति, जिहि अघार अनुसरई—१-४८ ।

अनुसरत—क्रि. स. [हि. अनुसरना] (१) पीछे चलता
अ है, साथ चलता है । (२) अनुसरण करता है ।

अनुसरतौ—क्रि. स. [हि. अनुसरना] अनुसरण करना,
अ नकल करता । उ०—रतित उद्धार किए तुम, हौ
अ तिनकौ अनुसरतौ—१-२०३ ।

अनुसरना—क्रि. स. [स. अनुसरण] (१) पीछे या
अ साथ-साथ चलना । (२) अनुसरण करना ।

अनुसरिए—क्रि. स. [हि. अनुसरना] अनुसरण कीजिए,
अ अपनाइए । उ०—यहि प्रकार बिषमतम तरिए ।
अ योग पंथ क्रम-क्रम अनुसरिए—३२०८ ।

- अनुसरिहौ**—क्रि. स. [हिं. अनुसरना] अनुकूल-
आचरण करूँगा, (आज्ञा आदि) मानूँगा । उ०—
नृपति कह्यो, तुम व ह्यो सो करिहो । तुम्हरी आज्ञा
म अनुसरिहो—६-२ ।
- अनुसरी**—क्रि. स. स्त्री. [हिं. अनुसरना] ग्रहण की,
अपनायी । उ०—(क) रिषि कह्यो बहुत बुरो तै
कीन्हो । जो यह साप नृपति को दीन्हो ।
ताकी रच्छा हारि जू करी । हरी अवज्ञा तुम
अनुसरी—१-२६० । (ख) तिन बहु सृष्टि तामसी
करी । सो तामस करि मन अनुसरी—३-७ ।
- अनुसरै**—क्रि. स. बहु. [हिं. अनुसरना] अनुकूल
आचरण करते हैं । उ०—अजहूँ सावग ऐसाहि करै ।
ताही को मारग अनुसरै—५-२ ।
- अनुसरै**—क्रि. स. [हिं. अनुसरना] (१) पीछे
पीछे या साथ-साथ चलता है । उ०—तुम बिनु प्रभु
को ऐसी करै । जो भक्तनि कै बस अनुसरै—१-
२७७ । (२) (आज्ञा आदि का) पालन करता है ।
उ०—राजा सेव भली बिधि करै । दपति आयसु
सब अनुसरै—१-२८४ । (३) अनुकरण करे, नकल
करे । उ०—भक्ति-पथ को जो अनुसरै । सो अष्टांग
जोग को करै—२-२१ ।
- अनुसार**—क्रि. वि. [स.] अनुकूल, सदृश, समान ।
उ०—सुकदेव कह्यो जाहि परकार । सूर कह्यो
ताही अनुसार—३-६ ।
- अनुसारना**—क्रि. स. [स. अनुसरण] (१) अनुसरण
करना, देखा-देखी कार्य करना । (२) आचरण
या व्यवहार करना ।
- अनुसारी**—क्रि. स. [सं. अनुसरण, हिं० अनुसारना]
- अनुसरण की, अनुकूल क्रिया की ।
यौ० रू० । (१) उच्चारी, कही । उ०—(क)
ऐसी बिधि बिनती अनुसारी—३-१३ । (ख) तब
ब्रह्मा बिनती अनुसारी—७-२ । (ग) को है सुनत
कहत कासा हो कौन कथा अनुसारी—३-२६१ ।
(२) प्रचलित की, आरंभ की । उ०—सूर इद्र पूजा
अनुसारी । तुरत करौ सब भोग सँवारी—१००७ ।
वि—अनुसरण करनेवाला । उ०—सूरदास सम
रूप नाम गुन अंतर अनुचर-अनुसारी—१०-१७१ ।
- अनुसाल**—संज्ञा पु० [सं० अनु + हिं० सालना] वेदना,
पीड़ा । उ०—यहाँ और कासों कहिहौ गरुड़गामी ।
मधु-कंटभ-मथन, मुर भौम केसी भिदन कंस-कुल-
काल अनुसाल हारी—१० उ०—५० ।
- अनुसासन**—संज्ञा पु० [सं० अनुशासन] आदेश,
आज्ञा । उ०—औरनि कौ जम कै अनुसासन,
किंकर कौटिक धावै । सुनि मेरी अपराध-अधमई,
कोऊ निकट न आवै—१-१६७ ।
- अनुसूया**—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुसूया] अत्रि सुनि की
स्त्री ।
- अनुहरण**—संज्ञा पु० [स०] अनुकरण, अनुकूल
आचरण ।
- अनुहरत**—वि० [क्रि० स० 'अनुहरना' का कृदन्त रूप]
उपयुक्त, योग्य, अनुकूल । उ०—मजु मेचक मृदुल
तन, अनुहरत भूषन भरनि । मनहुँ सुभग सिंगार-
सिसु-तरु, फरचो अद्भुत फरनि—१०-१०६ ।
- अनुहरना**—क्रि० स० [स० अनुसरण] अनुकरण करना,
आदर्श पर चलना ।
- अनुहरिया**—वि० [सं० अनुहार] समान ।
संज्ञा स्त्री०—आकृति ।
- अनुहार**—वि० [स०], एकरूप, समान । उ०—
हरि बल सोभित यौ अनुहार । ससि अरु सूर उदै
भए मानौ दोऊ एकहिँ बार—२५७२ ।
संज्ञा स्त्री०—(१) भेद, प्रकार । (२) आकृति ।
- अनुहारक**—संज्ञा पु [सं०] अनुसरण करनेवाला ।
- अनुहारना**—क्रि० स० [स० अनुहारण] समान करना ।
- अनुहारि**—वि० स्त्री० [स० अनुहार] (१) समान,
सदृश, तुल्य । उ०—(क) सदन-रज तन स्याम
सोभित, सुभग इहि अनुहारि । मनहुँ अग-बिभूति
राजति संभु सो मदहारि—१०-१६६ । (ख) गिरि
समान तन अगम अति पन्नग की अनुहारि—४३१ ।
(ग) रोमावली अनूप बिराजति, जमुना की अनुहारि
—६३७ । (घ) आज घन स्याम की अनुहारि । उनइ
आए साँवरे रे सजनी देखि रूप की आरि—२८२६ ।
(ङ) है कोउ वैसी ही अनुहारि । मधुबन तन ते
आवत सखी री देखहु नैन निहारि—२६५१ ।
(२) योग्य, उपयुक्त ।

सज्ञा स्त्री०—(१) रूप, आकृति, प्रतिच्छवि ।
 उ० (क) बलि गइ बाल-रूप मुरारि । पाइ पैजनि
 रटति रुनभन, नचावति नंदनारि ।..... । सूर
 सुर-नर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि—१०-११८ ।
 (ख) सुनहु सखी ते धन्य नारि । जो अपने प्रानबल्लभ
 की सपनेहु देखति है अनुहारि—२७६५ । (२) रूप,
 भेद, प्रकार । उ०—उहु मिष्टान्न बहुत बिधि भोजन
 बहु व्यंजन अनुहारि—६६२ ।
 अनुहारी—वि० [सं० अनुहारिन्] अनुकरण करनेवाला ।
 वि० स्त्री० [सं० अनुहार] समान, सदृश । उ०—
 (क) मुकुट कुण्डल तनु पीत बसन कोउ गोविंद की
 अनुहारी—३४४१ । (ख) आजु कोउ स्याम की
 अनुहारी । आवत उत उमंगे सुन सबही देखि रूप
 की वारी—२६५७ ।
 अनुहारे—क्रि० सं० [सं० अनुहारण, हिं० अनुहारना]
 तुल्य करना, समान करना, उपमा देना । उ०—
 देखि री हरि के चचल तारे । कमल मीन को कहा
 एती छवि ख जनहू न जात अनुहारे—१३३३ ।
 अनुहारो—वि० [सं० अनुहार, हिं० अनुहारि (स्त्री०)]
 समान, सदृश । उ०—गति मराल, केहरि कटि,
 कदली युगल जंघ अनुहारो—२२०० ।
 अनूज्ञा—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुज्ञा] (१) आज्ञा ।
 (२) एक अलंकार जिसमें दूषित वस्तु पाने की इच्छा
 उसकी कोई विशेषता देखकर हो । उ०—हरत
 अनूज्ञा भूषन मोको सूर स्याम चित आवै—
 सा० ६६ ।
 अनूठा—वि० [सं० अनुत्थ, प्रा० अनुटु] (१) अनोखा ।
 (२) सुन्दर ।
 अनूतर—वि० [सं० अनूतर] (१) निरुत्तर, मौन ।
 (२) चुपचाप रहने या मौन धारने वाला ।
 अनूप—वि० [सं० अनुपम] (१) जिसकी उपमान हो,
 अद्वितीय, बेजोड़ । (२) सुन्दर, अच्छा । उ०—हरि
 जस बिमल छत्र सिर ऊपर राजत परम अनूप—
 १—४० ।
 संज्ञा पु०—वह प्रदेश जहाँ जन अधिक हो ।
 अनूपम—वि० [सं० अनुपम] अनुपम, बेजोड़ । उ०—
 (क) स्याम भुजनि की सुंदरताई । चंदन खौरि

अनूपम राजति, सो छवि कही न जाई—६४१ ।
 (ख) अद्भुत एक अनूपम बाग—१६८० ।
 अनूपी—वि० [सं० अनुपम, हिं० अनूप] (१) अद्वितीय,
 अनुपम । (२) सुन्दर । उ०—धन्य अनुराग धनि
 भाग धनि सौभाग्य धन्य जोवन-रूप अति अनूपी
 —१३२५ ।
 अनृत—सज्ञा पु० [सं०] (१) मिथ्या, असत्य । (२)
 अन्यथा, विपरीत ।
 अनेक—वि० [सं०] एक से अधिक, असंख्य, अनगिनती ।
 अनेग—वि० [सं० अनेक] बहुत, अधिक ।
 अनेरी—वि० स्त्री० [सं० अनृत, हिं० पु० अनेरा] झूठ,
 व्यर्थ, निष्प्रयोजन । उ०—कर सौ कर लै लगाइ,
 महिर पै गई लिवाय, आनंद उर नहि समाइ, बात
 है अनेरी—१०-२७५ ।
 अनेरे—वि० [सं० अनृत, हिं० अनेरा] (१) व्यर्थ,
 निष्प्रयोजन । (२) झूठा, दुष्ट ।
 क्रि० वि०—व्यर्थ ।
 अनेरो, अनेरौ—वि० [सं० अनृत, हिं० अनेरा] झूठा,
 अन्धायी, दुष्ट । उ०—(क) रे रे चपल बिरूप
 ढीठ तू बोलत बचन अनेरौ—६-१३२ । (ख)
 कारौ कहि कहि तोहि खिभावत, बरजत खरो
 अनेरौ—१०-२१६ । (ग) अबलौ मै करी कानि,
 सही दूध-दही हानि, अजहूँ जिय जानि मानि, कान्हू
 है अनेरौ—१०-२७६ । (घ) अरी ग्वारि मैमंत
 बोलत बचन जो अनेरौ । कब हरि बालक भये, गर्भ
 कब लियो बसेरौ—१११४ । (२) निकम्मा, दुष्ट ।
 उ०—लोक-बेद कुल कानि न मानत अति ही रहत
 अनेरौ—पु० ३३२ ।
 अनेह—सज्ञा पु० [सं० अ=नहीं+स्नेह] अप्रीति, विरक्ति ।
 अनैस—सज्ञा पु० [सं० अनिष्ट] बुराई, अहित ।
 वि०—बुरा । उ०—निकसबी हम कौन मग हो
 कहै बारी बैस । मोह को यह गर्ब सागर भरी आइ
 अनैस—सा० १७ ।
 अनैसना—क्रि० अ० [सं० अनिष्ट, हिं० अनैस] बुरा
 मानना, रूठना, मान करना ।
 अनैसा—वि० [सं० अनिष्ट, हिं० अनैस] अप्रिय, अरुचि-
 कर, बुरा ।

अनैसी—वि. स्त्री. [सं. अनिष्ट, हिं. अनैस] बुरी ।

उ०—तरुनिन की यह प्रकृति अनैसी थोरेहि बात खिसावै—११५२ ।

अनैसे—क्रि. वि. [सं. अनिष्ट, हिं. अनैस] बुरे भाव से, बुरी तरह से

अनैसै—वि. 'हिं अनैस, अनैसा] जो इष्ट न हो, अप्रिय, बुरा । उ०—जनम सिरानो ऐमे ऐसै । कै घर-घर भरमन जदुपति बिन, कै सोवत, कै बैमै । कै कहूँ खान-पान-रमनादिक, कै कहूँ बाद अनैसै—१-२६६ ।

अनैहो—संज्ञा पुं [हिं. अनैस] उत्पात, उपद्रव । उ०—जा कारन सुन सुत सुन्दर बर कीन्हों इती अनैहो (कीन्ही इती अरै) । सोइ सुधाकर देखि दमोदर या भाजन मे है, हो (मांहि परै) - १०-१६५ ।

अनोखी—वि. स्त्री. [हिं. पुं. अनोखा] अनूठी, निराली, अद्भुत, विलक्षण । उ०—भगरिनि तै हौ बहुत खिझाई । कचन हार दिए नहिं मानति, तुहीं अनोखी दाई—१०-१६ ।

अनोखे—वि. [हिं. अनोखा] (१) अनूठे, निराले । (२) सुंदर । उ०—भूषनपति अहारजा फल से मेघ अनोखे दाऊ—सा. १०३ ।

अनोखौ—वि. [हिं. अनोखा] (१) अनूठा, निराला, विलक्षण । उ०—मूर स्याम कौं हटकि न राखौ, तैही पूत अनोखो जायौ—१०-३३१ । (२) प्रिय, सुन्दर । काकै नहीं अनोखौ ढोटा, किहि न कठिन करि जायौ । मै हूँ अपनै औरस पूतै बहुत दिननि मै पायौ—१०-३३६ ।

अनोन्या—सर्व. [स. अन्योन्य] परस्पर, आपस में । उ०—दोऊ लगन दुहुन ते सुंदर भले अनोन्या आज—सा० ४५ ।

संज्ञा पुं.—एक अलंकार जिसमें दो वस्तुओं की क्रिया या गुण की उत्पत्ति पारस्परिक संबंध के कारण हो । उ०—उक्त पंक्त ।

अन्न—संज्ञा पुं. [स.] (१) खाद्य पदार्थ । (२) अनाज, धान्य । (३) पकाया हुआ अन्न । उ०—होनो होउ होउ सो अबही यहि ब्रज अन्न खायँ—२७८० ।

अन्नकूट—संज्ञा पुं [सं.] (१) एक उत्सव जो

कार्तिक मास में दीपावली के दूसरे दिन प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ मनाया जाता है । इसमें अनेक प्रकार के व्यंजनों और फलों से भगवान् का भोग लगाते हैं । उ०—अन्नकूट विधि करत लग सब नेम सहित करि पकवान्ह—६१० । (२) अन्न का ढेर । उ०—अन्नकूट जैसो गोबर्धन—१०२५ । अन्यत्र—वि. [सं.] और जगह, दूसरे स्थान पर । उ०—ता मित्र को परमात्म मित्र । इक छिन रहत न सो अन्यत्र—४१२ ।

अन्याइ, अन्याई—संज्ञा स्त्री [सं. अन्याय] न्यायविरुद्ध व्यवहार, अनीति । उ०—(क) पुत्र अन्याइ करै बहुतेरे । पिता एक अवगुन नहि हेरै—५-४ । (ख) सेए नाहि चरन गिरिधर के, बहुत करी अन्याई—१-१४७ ।

वि.—[सं. अन्यायिन्, हिं. अन्यायी] अनुचित कार्य या अनीति करनेवाला । उ०—अन्याई को बास नरक मो यह जानत सब कोइ—३४६४ ।

अन्याय—संज्ञा पुं [स. अन्याय] [वि. अन्यायी] (१) अनीति, न्यायविरुद्ध आचरण । उ०—करत अन्याय न बरजौ कबहूँ अरु माखन की चोरी—२७०८ । (१) अधेर, अत्याचार ।

अन्यारा—वि. पुं. [स. अ=नहीं+हिं. न्यारा] (१) जो अलग न हो । (२) अनोखा, निराला । (३) खूब, बहुत ।

अन्यारी—वि. स्त्री. [स. अ=नहीं+न्यारी] अनोखी, अनूठी, निराली । उ०—अंचल चंचल फटी कंचुकी बिलुलित बर कुच सटी उधारी । मानो नव जलदबधु कोनो बिधु निकसी नभ कसली अन्यारी—२३०१ ।

अन्यास—क्रि. वि. [सं. अनायास] (१) बिना परिश्रम । (२) अकस्मात्, अचानक, सहसा । उ०—मोको तुम अपराध लगावत वृथा भई अन्यास । भुक्त कहा मोपर ब्रजनारी सुनहु न सूरजदास—२६३४ ।

अन्योन्य—सर्व. [स.] परस्पर, आपस में ।

अन्वय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) परस्पर संबंध । (२) संयोग, मेल । (३) कार्य-कारण का संबंध ।

अन्हवाइ—क्रि. स. [हिं. नहाना] नहलाकर, स्नान

करा के । उ.—फूली फिरत जसोदा तन-मन, उबटि
कान्ह अन्हवाइ अमोल—१०-६४ ।

अन्हवाएँ—क्रि. स. सवि. [हिं. नहाना, नहलाना]
स्नान कराने से, नहलाने से । उ.—गज की कहा
सरित अन्हवाए, बहुरि धरै वह ढग—१-३३२ ।

अन्हवाऊँ—क्रि. स. [हिं. नहाना] स्नान कराऊँ, नहलाऊँ ।
उ.—मोहन, आउ तुम्है अन्हवाऊँ—१०-१८५ ।

अन्हवायौ—क्रि. स. भूत [हिं. नहाना] स्नान कराया,
नहलाया । उ.—नद करत पूजा, हरि देखत । घट
बजाइ, देव अन्हवायौ, दल चंदन लै भेंटत—१०-
२६१ ।

अन्हवावति—क्रि. स. स्त्री [हिं. नहाना] नहलाती है ।
उ.—यह कहि जननी दुहुँनि उर लावति । सुमना,
सत अंग परसि, तरनि-जल, बलि-बलि गई, कहि-कहि
अन्हवावति—५१४ ।

अन्हवावन—क्रि. स. [हिं. नहलाना] स्नान कराने को,
नहलाने को । उ०—जसुमति जबहि कह्यो अन्हवावन
रोइ गए हरि लोटत री—१०-१८६ ।

अन्हवावहु—क्रि. स. [हिं. नहाना] नहलाओ, स्नान
कराओ । उ.—बिप्रनि कह्यो याहि अन्हवावहु । याकँ
अंग सुगंध लगावहु—५-३ ।

अन्हाइ—क्रि. अ. [हिं. नहाना] स्नान करता है,
नहाता है । उ.—जबै आवौ साधुसगति, कछुक मन
ठहराइ । ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता, बहुरि वहै
सुभाइ—१-४५ ।

अन्हिए—क्रि. अ. [हिं. नहाना] नहाने, स्नान करने ।
उ.—हम लकेस-दूत प्रतिहारी, समुद-तीर कौं जात
अन्हिए—६-१२० ।

अन्हिएत—क्रि. अ. [हिं. नहाना] स्नान करते हुए,
नहाते हुए ।

मुहा.—अन्हिएत-खात—नहाते-खाते । आशय यह कि
दैनिक जीवन सुखमय हो, चिंता उनके पास न फटकै ।
उ.—कुसल रहै बलराम स्याम दोउ, खेलत-खात-
अन्हिएत—१०-२५७ ।

अन्हान—क्रि. अ. [हिं. नहाना] नहाने, स्नान करने ।
उ.—यह कहिकै रिषि गए अन्हान—६-५ ।

अन्हवै—क्रि. सं. [हिं. नहाना] स्नान करे, नहाए ।

उ—वेद धर्म तजि कै न अन्हवै । प्रजा सकल कौं
यहै सिखावै—५-२ ।

अन्हवावहु—क्रि. अ. [हिं. स्नान, नहाना] नहलाओ,
स्नान कराओ । उ.—कान्ह कह्यो, गिरि दूध
अन्हवावहु—१०२३ ।

अन्हैबो, अन्हैबौ—क्रि. अ. [हिं. नहाना] नहावें ।
उ.—(क) कैसे बसन उतारि धरै हम कैसे जलहि
समैबौ । नंद-नदन हमको देखैंगे, कैसे करि जु
अन्हैबौ—७७६ । (ख) नंद-नंदन हमको देखैंगे,
कैसे करि जो अन्हैबो—८१८ ।

अपंग—वि. [स. अपांग, हीनाग] (१) अंगहीन । (२)
काम करने में अशक्त असमर्थ । उ.—सुभट भए
डोलत ए नैन । आपुन लेभ अत्र लै धावत
पलक कवच नहि अंग । हाव भाव रस लरत कटाक्षनि
अकुटी धनुष अपंग—पृ ३२६ । (३) लंगड़ा ।

अपकर्म—संज्ञा. पु. [स. अप+कुरा+कर्म] बुरा काम,
कुकर्म, पाप । उ०—गतिको धर्म इहे प्रतिपालै,
जुवती सेवा ही को धर्म । जुवती सेवा तऊ न त्यागै
जो पति कोटि करै अपकर्म—पृ० ३४१ (१) ।

अपकाजी—वि. [हिं. आप+काज] अपस्वार्थी, मतलबी ।
उ०—अहकारि लंपट अपकाजी संग न रह्यो
निदानी । सूरस्याम बिनु नागरि राधा नागर चित्त
भुलानी—१६४७ ।

अपकार—संज्ञा पु. [स.] (१) द्वेष, द्रोह, बुराई ।
(२) अपमान । (३) अत्याचार, अनीति ।

अपकारी—वि० [स. अपकारिन्, हिं. अपकार] (१)
हानिकारक, अनिष्टकारी । उ०—यह ससि सीतल
काहे कहियत । ...मीनकेत अबुज आनंदित
ताते ताहित लहियत । बिरहिनि अरु कमलनि त्रासत
कहुँ अपकारी रथ नहियत—२८५६ । (२) विरोधी,
द्वेषी ।

अपकारीचार—वि० [सं. अपकार+आचार] हानि
पहुँचानेवाला ।

अपकीरति—संज्ञा स्त्री. [सं. अपकीर्ति] अपयश,
निंदा, बुराई ।

अपघात—संज्ञा पु. [सं.] (२) हत्या, हिंसा । (२)
बंचना, धोखा ।

संज्ञा पु० [सं० अप = अपना + घात = मार]

आत्मघात ।

अपचाल—संज्ञा पु० [सं०] कुचाल, खोटाई ।

अपच्छी—संज्ञा पु० [सं० अ = नहीं + क्षी = क्षालना]
विपक्षी, विरोधी ।

अच्छरा—संज्ञा पु० [सं० अ = सारा, प्रा० अच्छरा]
असरा ।

अपजस—संज्ञा पु० [सं० अपयश] (१) अपकीर्ति,
बुराई । (२) कलंक, लांछन ।

अपडर—संज्ञा पु० [सं० अप + डर] भय, शंका ।

अपडरना—क्रि० अ० [हि० अपडर] भयभीत होना,
डरना, शंकिता होना ।

अपड़ाई—क्रि० अ० [सं० अपर, हि० अपडाना] खींचा-
तानी करता है । उ०—मन जो कहो करै री माई ।

... । निलज भई तन सुधि बिसराई गुरुजन करत
लराई । इत कुलकानि उतै हरिकौ रस मन जो अति
अपडाई—१६६६ ।

अपड़ाना—क्रि० अ० [सं० अपर] खींचातानी करना ।

अपड़ाव—संज्ञा पु० [सं० अपर, हि० परावा = गराया]
झगड़ा, रार, तकरार । (क) महर ढोटौना सालि रहे ।
जन्महि ते अपडाव करत है गुनि गुनि हृदय कहे—
२४६३ । (ख) हंसत कहत कीधौ सतभाव । यह कहती
औरै जो कोऊ तासों मै करती अपड़ाव—१२४० ।

अपत—संज्ञा स्त्री० [सं० आपत्] दुर्दशा, दुर्गति ।
उ०—जौ मेरे दीनदयाल न होते । तौ मेरी अपत
करत कौरव-सुत, होत पडवनि ओते—१-२५६ ।

वि० [सं० अ = नहीं + पत्र, प्रा० पत्त, हि० पत्ता]

(१) बिना पत्तों का । (२) नग्न । (३) निर्लज्ज ।

वि० [सं० अपात्र, पा० अपत्त] अधम, पातकी ।

उ०—प्रभु जू हौं तौ महा अधर्मी । अपत, उतार,
अभागौ, कामी, बिषयी निपट कुकर्म—१-१८६ ।

अपतई—संज्ञा स्त्री० [सं० अपात्र, पा० अपत्त + ई (हि०
प्रत्य०)] (१) निर्लज्जता, ढिठाई । उ०—नयना
लुब्धे रूप के अपने सुख माई । ... । मिले धाय
अकुलाय कै मै करति लराई । अति ही करी उन
अपतई हरि सो समताई—१० ३२३ । (२)
चंचलता । उ०—कान्ह तुम्हारी माय महाबल सब

जग अपबस कीन्हो हो । सुनि ताकी सब अपतई सुकें
सनकादिक मोहे हो—पृ० ३४६ (५६) ।

अपताना—संज्ञा पु० [हि० अप = प्रपना + तानना]
जंजाल, प्रपंच ।

अपति—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = मुरा + पति = गति]
अगति, दुर्गति, दुर्दशा । उ०—बैठी सभा सकल भूपनि
की, भीषम-द्रोन-करन व्रतधारी । कहि न सकत कोउ-
बात बदन पर, इन पतितनि मो अपति बिचारी—
१-२४८

वि०—पापी, दुष्ट ।

अपथ—संज्ञा पु० [सं०] कुपथ, कुमार्ग । उ०—(क)
माधौ नैकु हटको गाइ । भ्रमत निसि-बासर अपथ-
पथ, अगह गहि नहि जाइ—१-५६ । (ख) अपथ
सकल चलि चाहि चहुँ, दिसि भ्रम उघटत मतिमंद—
१-२०१ । (ग) हरि है राजनीति पढि आए । तै
क्यौ नीति करै आपुन जिन और न अपथ छडाए ।
राजधर्म सुन इहै सूर जिहि प्रजा न जाहि सताए—
३३६३ । (२) बीहड़ राह, विकट मार्ग ।

अपद—संज्ञा पु० [सं०] बिना पैर के रेंगनेवाले जंतु ।
यथा साँप, केंचुआ । उ०—राजा इक पडित पौरि
तुम्हारी । अपद-दुपद-पसु भाषा बूभत, अवि-
गत अल्प-अहारी—८-१४ ।

अपदाँव—संज्ञा पु० [सं० अप = बुरा + हि दाँव] चाल-
बाजी, चालाकी, कुचाल, घात । उ०—कियौ वह
भेद मन और नाही । पहिले ही जाइ हरि सो कियौ
भेद वहि और वे काज कासो बताही । दूसरे आइकै
इद्रियनि लै गयो ऐसे अपदाँव सब इनहि कीन्हो—
पृ० ३२१ ।

अपदेखा—वि० [हि० अप = अपने को + देखा = देखने-
वाला] अपने को बड़ा समझनेवाला ।

अपन—सर्व० [हि० अपना] अपना, निजी, स्वयं का ।

अपनपौ—संज्ञा पु० [हि० अपना + पौ या पा (प्रत्य०)]
(१) आत्मभाव, निजस्वरूप । (२) संज्ञा, सुघ, ज्ञान ।
(३) आत्मगौरव, मान ।

अपनाई—क्रि० सं० [हि० अपनाना] ग्रहण की, शरण
में लिया । उ०—ना हमको कछु सुदरताई । भक्त
जानि के सब अपनाई ।

अपनाऊँ—क्रि० सं० [हि. अपनाना] अपने पक्ष में करूँ, स्वयं करूँ । उ०—सूरस्याम बिन देखे सजनी कैसे मन अपनाऊँ ।

अपनाना—क्रि० सं० [हि. अपनाना] अपने अनुकूल करना, अपने वश में करना । (२) ग्रहण करना, शरण में लेना ।

अपनाम—संज्ञा पु. [सं.] निंदा, अपयश ।

अपनायो—क्रि. स. भूत. [हि. अपना, अपनाना] अपना बनाया, अंगीकार या ग्रहण किया, शरण में लिया । उ०—अब हौं हरि, सरनागत आयो । कृपानिधान सुदृष्ट हेगिये, जिहि पतितनि अपनायो—१-२०५ ।

अपनियोँ—सर्व. स्त्री. [हि. अपना] अपनी । उ०—सूरदास प्रभु निरखि मगन भए, प्रेम-बिबस कछु सुधि न अपनियोँ—१०-१०६ ।

अपनी—सर्व. स्त्री. [स. आत्मनो, प्रा. अतणो अप्पणो; हि. अपना] निजी, निज की ।

मुहा.—करत अपनी अपनी—स्वार्थ दिखाते हैं, केवल अपनी ही चिंता करते हैं । उ०—रुहा कृपिन की माया गदिये, करत फिरत अपनी अपनी । खाइ न सकै, खरच नहि जानै, ज्यो भुवग सिर रहत मनी—१-३६ । अपनी सी कीन्ही—शक्ति भर प्रयत्न किया, भरमक चेष्टा की । उ०—दोवल कहा देति मोहि सजनी तू तो बड़ी सुजान । अपनी सी मैं बहुतै कीन्ही रहाति न तेरी आन ।

अपने—सर्व. [हि. अपना] निजी, निज के ।

अपनै—सर्व. [हि. अपना] अपने, निज के । उ०—अपनै सुख को सब जग बाँध्यो, कोऊ काहू को नाही—१-७६ ।

अपनो, अपनौ—सर्व. [हि. अपना] निजी, निज का । उ०—कारो अपनौ रंघ न छाँड़ै, अनरंग कबहुँ न होई—१-६३ ।

अपबस—वि. [हि. अप=अपना+सं. वश] अपने वश में, स्वयं । उ०—(क) जो बिधवा अपबस करि पाऊँ । ता सखि कही होइ कछु वेरी सपनी साध पुराऊँ । (ख) कन्हू तुम्हारी झाड़ महाबल सब जग अपबस कीन्हो हो—पृ. ३४२ (५६) ।

अपभय—संज्ञा पु. [सं.] (१) निर्भयता । (२)

अकारण भय । (३) डर, भय ।

वि—निर्भय, निडर ।

अपमान—संज्ञा पु. [स. अप. (उप.) + मान] (१) अनादर, अवज्ञा । (२) तिरस्कार, दुस्कार । उ०—कोर-कोर-कारन कुबुद्धि, जड, किते सहत अपमान—१-१०३ ।

अपमानत—क्रि. सं. [स. अपमान, हि. अपमानना] अपमान करते हैं, तिरस्कारते हैं । उ०—हारि जीति नैना नहि जानत । धाए जात तही को फिरि फिरि वै कितनो अपमानत—पृ. ३२८ ।

अपमानना—क्रि. स. [सं. अपमान] निंदा करना, तिरस्कारना ।

अपमानै—क्रि. स. [सं. अपमान, हि. अपमानना] अपमान करती हैं, तिरस्कारती हैं । उ०—ताको ब्रज-नारी पति जानै । कोउ आदर कोऊ अपमानै—१६२६ ।

अपमारग—संज्ञा पु. [स. अपमार्ग] कुमार्ग, कुपथ । उ०—(क) माया नटी लकुट कर लीन्है, कोटिक नाच नचावै । । महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहि लगावै—१-४२ । (ख) चोरी अपमारग बटपारघो इनि पटतर के नहि कोऊ है—११५६ ।

अपमारगी—वि. [स. अपमार्गिन, हि. अपमार्गी] कुमार्गी, अन्यथाचारी, कुपंथी । उ०—नैना नोनहरामी ये । चोर दुँड बटपार अन्याई अपमारगी कहावै जे—पृ. ३२६ ।

अपयोग—संज्ञा पु. [सं. अप=बुरा+योग] (१) कुयोग । (२) कुसगुन । (३) बुराई । उ०—सबै खोट मधुबन के लोग । जिनके संग स्याम सुन्दर सखि सीखे सब अपयोग—३०५२ ।

अपरंपार—वि. [सं. अपर = दूसरा + हि. पार=छोर] जिसका पारावार न हो, असीम

अपर—वि [सं.] अन्य, दूसरा, भिन्न, और । उ०—भुज भुजग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित लरनि । रहे बिबरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरी डरनि—१०-१०६ ।

अपरछन—वि. [सं. अप्रच्छन्न] छिपा, गुप्त ।

अपरता—वि. [हि. अप=प्राप+स. रत=लगा हुआ] स्वयं में लगा हुआ, स्वार्थी ।

अपरती—उत्ता स्त्री. [हिं. अप=प्राप+सं. रति=लीनता]
स्वार्थ ।

अपरना—संज्ञा स्त्री. [सं. अ=नही+नर्ण=पत्ता]
पार्वती का एक नाम ।

अपरस—वि. [सं. अ=नही+स्पर्श, हिं. परस] (१)
जो छुआ न जाय । (२) न छूने योग्य, अस्पृश्य । (३)
जो अछूता न हो, अछूत, जो छूना न चाहे, दूर
रहनेवाला । उ०—ऊधो तुम हो अति बड़भागी ।
अपरस रहत सनेह लगा ते नाहिन मन अनुरागी—
३३४६ ।

अपराध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दोष, पाप । (२)
भूल-चूक ।

अपराधिनि—वि. स्त्री. [सं. अपराधिन्, हिं अप-
राधिनी] दोषयुक्त स्त्री, पापिनी । उ०—हम अपराधिनि
मर्म न जान्यो अरु तुमहू ते तूटी—१०३०-८० ।

अपराधी—वि. पुं. [सं. अपराधिन्] (१) अपराध
करनेवाले, दोषी । (२) पाप करनेवाले, पापी ।
उ०—तुम मो से अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग
पठाए (हो)—१-७ ।

अपराधु—संज्ञा पुं. [सं. अपराध] (१) दोष, पाप (२)
भूल-चूक । उ०—चारौ मुख अस्तुति करत, छमौ
मोहि अपराध—४६२ ।

अपराधौ—संज्ञा पुं. [सं. अपराध] दोष, पाप । उ०—
जब ते बिछुरे स्याम तबते रह्यो न जाइ सुनौ सखी
मेरोइ अपराधौ—१८०६ ।

अपरिमित—वि. [सं.] (१) इयत्ताशून्य, असीम ।
उ०—अलख अनंत - अपरिमित महिमा, कटि-तट
कसे तनीर—६-२६ । (२) असंख्य, अनंत । उ०—
कृपा सिंधु, अपराध अपरिमित छमौ, सूर तैं सब
बिगरी—१-११५ ।

अपलोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अपयश, अपकीर्ति ।
उ०—रहि रहि देख्यो तेरो ज्ञान । सुफलकसुत
सरबस रस लै गयो तू करन आयौ ज्ञान । बूथा कत
अपलोक लावत कहत यह उपदेस—३१२३ ।

अपवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विरोध, प्रतिवाद ।
(२) निंदा, अपकीर्ति । (३) दोष, पाप ।

अपसगुन—संज्ञा पुं. [सं. अपशकुन] असगुन, बुरा

सगुन । उ०—अर्जुन बहुत दुखित तब भए । इहाँ
अपसगुन होत नित नए । रोवै बृषभ, तुरग अरु
नाग । स्यार द्यौस, निसि बोलै काग—१-२८६ ।

अपसना—क्रि० [सं० अपसरण=खिसकना] (१)
सरकना । (२) चल देना, चंपत होना ।

अपसमार—संज्ञा पुं. [सं० अपस्मार] रोग-विशेष,
मृगी, मूरछा । उ०—सुरभीतमजासुतपित नाही चहत
हार चित हेरो । अपसमार जहँ सूर समारत बहु
बिषाद उर पैंरो—सा० ६७ ।

अपसर—वि० [हिं० अप=अपना+सर (प्रत्य०)]
आप ही आप, मनमाना, अपनी तरंग का, अपने
मन का । उ०—रहु रे मधुकर मधु मतवारे..... ।
लोटत पीत पराग कीच महँ नीच न अंग सम्हारे ।
बारबार सरक मदिरा की अपसर रटत उधारे—
२६६० ।

अपसोच—क्रि० अ० [सं० अप+हिं० सोचना] चिंता
करके । उ०—काहे को अपसोच मरति है । नैन
तुम्हारे नाही—पृ० ३२१ ।

अपसोस—संज्ञा पुं. [फा० अफसोस] चिंता, सोच,
दुख ।

अपसोसना—क्रि० अ० [हिं० अपसोस] सोच करना,
चिंता करना ।

अपसोसनि—संज्ञा पुं. सवि० [फा० अफसोस, हिं०
अपसोस] चिंता, सोच या दुख में । उ०—तातैं अब
मरियत अपसोसनि । मथुरा-हूँ तैं गए सखी सी,
अब हरि कारे कोसनि—१० उ—८८ ।

अपसोसों—संज्ञा पुं. [हिं० अपसोस] सोच, चिंता । उ०—
भैनी मात पिता बंधव गुरु गुरुजन यह कहैं मोसो ।
राधा कान्ह एक सँग बिलसत मन ही मन अपसोसो—
१२२१ ।

अपसौन—संज्ञा पुं. [सं. अपशकुन] असगुन ।

अपस्वारथी—वि. [हिं० अप=अपना + सं. स्वार्थी]
स्वार्थ साधनेवाला, मतलबी । उ०—नैना, लुब्धे रूप
को अपने सुख माई । अपराधी अपस्वारथी मोको
बिसराई—पृ० ३२३ ।

अपहरन—संज्ञा पुं. [सं. अपहरण] हरलेना, हरण ।
उ०—सोच सोच तू डार देखि दीनदयाल आयो ।

अपहरन पुनि बरन बस हरि जानि हौ केहि योग
भायो—१० उ.—१८ ।

अपहरना—क्रि. स. [स. अपहरण] । (१) छीनना,
लूटना । (२) चुराना । (३) कम करना, नाश करना ।
अपहारी—सज्ञा पु. [स. अपहारिन्] (१) चोर,
लुटेरा । (२) हरने वाला ।

वि.—पराजित, हारा हुआ । उ.—गुव मुख देखि
उरत ससि भारी । कर करि के हरि हेर्यो चाहत,
भाजि पताल गयो अपहारी—१०-१९६ ।

अपा—सज्ञा स्त्री. [हि. आप] अहंकार, गर्व ।

अपान—वि. [स. अ=नही + पान=पेय] अपेय, न
पीने योग्य । उ.—भच्छि अभच्छ, अपान पान करि,
कबहुँ न मनमा धापी । कामी, बिबस कामिनी कै
रस, लोभ लालसा थापी—१-१४० ।

सज्ञा पु. [हि. अपना] (१) आत्मतत्त्व, आत्म-
ज्ञान । (२) आपा, आत्मगौरव । (३) सुध. संज्ञा,
ज्ञान । (४) अहम्, अभिमान ।

सर्व—अपना, निजका ।

अपाना—सर्व. [हि. अपना] अपना, अपने वश का,
अपने हाथ का । उ.—निकट बसत हुती अस कियो
अब दूर पयाना । बिना कृपा भगवान उपाउन सूर
अपाना—१० उ.—८१ ।

अपाय—सज्ञा पु. [स. अ=नही + पाप] जो पाप न
हो, पुण्य ।

अपाय—सज्ञा पु. [सं०] उपद्रव, अन्यथाचार । (

वि० [स० अ=नही + पाद, प्रा० पाय=पैर]

(१) लँगड़ा, अपाहिज । (२) निरुपाय असमर्थ ।

अपार—वि० [सं०] (१) सीमारहित, अनन्त, असीम ।

(२) असंख्य, अगणित, अधिक ।

अपारा—वि० [सं० अपार] अपार, असीम, अनन्त ।

उ०—सब मिलि गए जहाँ पुरुषोत्तम, जिहि गति
अगम, अपारा—१०-४ ।

अपारी—वि० स्त्री० [हि. अपार] जिसका पार न हो,
असीम । उ०—रसना एक नही सत कोटिक साभा
आमत अपारी—पु० ३४६ ।

अपारी—वि० [सं० अपार] जिसका पार न हो, सीमा-
रहित, बहुत बड़ी-चड़ी । उ०—ममता-घटा, माह की

बूंदे, सरिता में अपारी । बूडत कतहुँ थाह नहिं
पावत, गुरुजन-ओट अधारी—१-२०६ ।

अपावन—वि० [सं०] अपवित्र, अशुद्ध ।

अपीच—वि० [स० अपीच्य] सुन्दर, अच्छा ।

अपुन—सर्व० [हिं० आत्मनो, प्रा० अत्तणो, आप्पणो
हिं० अपना] अपना ।

मुहा०—अनुप करि—अपना करके, अपना सम्भ-
कर, अपने अनुकूल बनाकर । उ०—जौ हरि-व्रत
निज उर न धरैगो । तौ को अस आता जु अपुन करि,
कर कुशर्व पकरैगो—१-७५ ।

अपुनपौ—सज्ञा पु० [हिं० अपना+गौ या पा (प्रत्य०)]
(१) आत्मभाव, निजस्वरूप, आत्मज्ञान । उ०—(क)
अति उन्मत्त मोह-माया-बस नहिं कछु बात
बिचारौ । करत उपाव न पूछत-काहु, गनत न खोटो-
खारौ । इन्द्री स्वाद-बिबस निसिबासर आप अपुनपौ
हारौ—१-१५२ । (ख) अपुनपौ आपुन ही मैं पायौ ।
सब्दहिं सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ—
४-१३ । (२) संज्ञा, सुध, ज्ञान । उ०—(क)
अपुनपौ आपुन ही बिसरायौ । जैसे स्वान काँच-मदिर
मे भ्रमि भ्रमि भूकि मरचौ—२-२६ । (ख) अद्भुत
इक चितयौ हौ सजनी नंद महर कै आन री ।
सो मैं निरखि अपुनपौ खोयौ, गई मथानी माँगन
री—१०-१३७ । (३) आत्मगौरव, मान, मर्यादा ।
उ०—ऐसौ कौन मारिहै नाको, मोहि कहै सो आद ।
वाकौ मारि अपुनपौ राखै, सूरब्रजहिं सो जाद—१०-
६० । (४) स्वशक्तिज्ञान । उ०—कृष्ण कियो मन
ध्यान असुर इक बसत अंधेरै । बालक बछरन राखिहौ
एक बार लै जाउँ । कछुक जनाऊँ अपुनपौ, अब लौ रह्यौ
सुभाउ—४३१ । (५) अपनायत, आत्मीयता, सम्बन्ध ।
उ०—अगनित गुन हरिनाम तिहारै अजौ अपुनपौ
धारौ । सूरदास स्वामी यह जन अब, करत करत लम
हार्यो—१-१५७ । (६) अहंकार, ममता ।

अपूठता—क्रि. सु. [स. अ=नही + पूठ, पा. पुठ=पीठ]
(१) विध्वंसना, नाशना । (२) उलटना-पलटना ।

अपूठा—वि. [सं. अपुष्ट, प्रा. अपुठ] अज्ञानकार,
अनभिज्ञ ।

वि. [सं. अस्फुट, प्रा. अष्फुट] जो खिला न हो, अविकसित ।

अपूठी—क्रि. स. [सं. अ=नहीं+पृष्ठ=पीठ, प्रा. पुट्ट=पीठ, हि. अपूठना] उलट-पुलट कर । उ.—रावन हति, ले चलों साथ ही, लंका धरौ अपूठी । यातै जिय सकुचात, नाथ की होइ प्रतिज्ञा भूठी—६-८७।

अपूत—वि. [सं. अ=नहीं+पूत=विविध] अपवित्र ।
वि० [स. अपुत्र, पा अपुत्त] जिसके पुत्र न हो, अरूना ।

संज्ञा पु.—कुपुत्र ।

अपूर—वि. [सं. आपूर्ण] पूरा, भरपूर ।

अपूरना—क्रि. स. [स. आपूर्णन्] (१) भरना । (२) (बाजा आदि) बजाना या फूँकना ।

अपूरा—संज्ञा पु. [सं. अ+पूर्ण] भरा हुआ, फैला हुआ, व्याप्त ।

अप्रेत—वि. [स. अ=नहीं+पीड=दबाना, ढकेलना] जो हटे नहीं, अटल ।

अपेठ—वि. [सं. अप्रविष्ट, पा. अपविट्ट, प्रा. अपइठ्ठ] जहाँ पहुँच न हो सके, दुर्गम ।

अपराग—संज्ञा स्त्री. [स.] इन्द्र सभा में नाचने वाली देवांगना ।

अपरना—क्रि. अ. [स. स्फार=अचुर] (१) भोजन से तृप्त होना, अग्राना । (२) ऊबना ।

अफुल्ल—वि. [स.] जो फूला या खिला न हो, अविकसित ।

अबध—वि. [स. अ=नहीं+बध=बधन] जो बंधन में न हो, अबद्ध, निरंकुश । उ.—हमता रीफि लटू भइ लालन महाप्रम तिय जानि । बंध अबंध अमति निसि-बासर का सुरभावति आनि—२८११ ।

अबध्य—वि. [म.] सफल, फलीभूत, अव्यर्थ ।

अब—क्रि. वि. [स. अथ, प्रा. अह; अथवा स. अद्य] इस समय, इस घड़ी ।

अवतस—संज्ञा पु. [स. अवतंस] भूषण, अलंकार ।
उ.—स्रुति अवतस विराजत हारसुत सिद्ध दरस सुत ओर—सा. उ०-२७ ।

अवद्र—वि. [स.] (१) जो बंधा न हो, मुक्त । (२) निरंकुश । (३) असंबद्ध ।

अबध—वि. [सं. अवध्य] (१) जिसे मारना उचित न हो । उ.—तोकौ अबध कहत सब कोऊ तातै सहियत बात । बिना प्रयास मारिहौ तोकौ, आजु रैन के प्रात—६-७६ । (ख) रावन कह्यो, सो कह्यो न जाई, रह्यो क्रोध अति छाई । तब ही अबध जानि के राख्यो मंदोदरि समुभाइ—६-१०४ । (२) शास्त्र में जिसे मारने का विधान न हो । (३) जिसे कोई मार न सके ।

अबधू—वि. [सं. अबोध पु. हि. अबोधु] अज्ञानो, अबोध, मूर्ख ।

संज्ञा पु. [स. अवधूत] त्यागी, संत, साधु, विरागी ।

अबर—वि. [हि अवर] अन्य, और, दूसरा । उ०—सरिता सिधु अनेक अबर सखी बिलसत पति सहज सनेह—२७७१ ।

अवरन—वि. [सं. अ=नहीं+वर्ण्य] जो दर्शन न हो सके, अकथनीय ।

वि [स. अ=नहीं+वर्ण्य=रंग] (१) बिना रूप-रंग का, वर्णशून्य । उ०—सुक सारद से करत बिचारा । नारद से पावहि नहि पारा । अवरन बरन सुरति नहि धारै । गोपिनि के सो बदन निहारै—१०-३ । (२) जो एक रंग का न हो, भिन्न ।

अबराधे—क्रि. स. [स. आराधन, हि. अवराधना] उपासना करे, पूजे, सेवा करे । उ०—ऊधो मन न भए दस-बीस । एक हुतो सो गयो स्याम सँग को अबराधे ईस—३१४६ ।

अबल—वि [स.] निर्बल, बलहीन । उ०—अबल प्रह्लाद, बलि दैत्य सुखही भजत, दास भ्रुव चरन चित-सीस नायौ—१-११६ ।

अबलनि—संज्ञा स्त्री बहु. [स. अबला+नि (प्रत्य.)] स्त्रियों को । उ—अबलनि अकेली करि अपने कुल नीति दिसरी अबधि सँग सकल सूर भहराइ भाजै—२८१६ ।

अबल-हुतासन मद्ध—संज्ञा. पु. [स. अबल=अजोर+हुताशन=अग्नि+मध्य=बीच ('अजोर' और 'अग्नि' का मध्य=जोग)] योग । उ.—अबल हुतासन केर सँदेसो तुमहूँ मद्ध निकासो—सा. १०५ ।

अबला—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) स्त्री । (२) अनाथ

अथवा निस्सहाय नारी । उ०—मन मैं डरी, कानि जिनि तोरै, मोहि अबला जिय जानि—६-७६ ।

अवाती—वि. [सं. अ=नही+वात=वायु] (१) बिना वायु का । (२) भीतर-भीतर सुलगनेवाला ।

अवाद—वि० [सं० अ=नही+वाद] वादशून्य, निर्विवाद ।

अबाध—वि० [सं०] । (१) बेरोक, बाधारहित । (२) निर्विघ्न । (३) अपार, अपरिमित । उ०—अकल अनीह अबाध अभेद । नेति नेति कहि गावहिं वेद ।

अबाधा—वि० [सं० अबाध] अपार, असीम । उ०—खेलौ जाइ स्याम संग राधा ।संग खेलत दोउ भगरन लागे, सोभा बढी अबाधा—७०५ ।

अबार—संज्ञा स्त्री० [सं० अ=बुरा+बेला=हि० बेर=समय] देर, बिलम्ब । उ०—(क) सूरदास प्रभु कहत चलौ घर, बन मैं आजु अबार लगाई—४७१ । (ख) चलौ आजु प्रातहि दधि बेचन नित तुम करति अबार—१०७८ । (ग) बानरहितजापति पतिनी से बाँधे बार अबार—सा० ३५ ।

अवास—संज्ञा पु० [सं० आवास] रहने का स्थान, घर । उ०—उत ब्रजनारि संग जुरि कै वै हँसति करति परिहास । चलौ न जाइ देखियै री वै राधा को जु अवास—१६१६ ।

अविगत—वि० [सं० अविगत] (१) जो जाना न जाय । (२) अज्ञात, अनिर्वचनीय । उ०—(क) अविगत-गति कछु कहत न आवै—१-२ । (ख) काहू के कुल-तन न बिचारत । अविगत की गति कहि न परति है, व्याध अजामिल तारत—१-१२ । (३) जो नष्ट न हो, नित्य । (ग) अपद-दुपद-पसु-भाषा बूझत, अविगत अल्प-अहारी—८-१४ ।

अविचल—वि० [सं० अविचल] जो विचलित न हो, अचल, स्थिर, अटल । उ०—अजहूँ लगि उत्तानपाद-सुत अविचल राज करै—१-३७ ।

अविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिथ्या ज्ञान, अज्ञान, मोह । उ०—कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल-मुधि नहिँ काल । सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल—१-१५३ ।

अविधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अविधि] व्यवस्थाविरुद्ध,

नियमरहित, कर्तव्यविरुद्ध । उ०—राग-द्वेष विधि-अविधि, असुचि-सुचि, जिहिँ प्रभु जहाँ सँभारौ । कियौ न कबहुँ बिलम्ब कृपानिधि, सादर सोच निवारौ—१-१५७ ।

अबिनासी—वि० पु० [सं० अविनाशिन्, हिं० अविनाशी] (१) जिसका विनाश न हो, अक्षय । उ०—अज, अबिनासी, अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ—२-३६ । (२) नित्य, शाश्वत ।

अबिर—संज्ञा पु० [अ० अबीर] (१) रंगीन बुकनी, गुलाब । उ०—चोवा, चंदन अबिर, गलिनि छिरका-वन रे—१०-१८ । (२) अभ्रक का चूर्ण । (३) श्वेत रंग की बुकनी जो वल्लभ-संप्रदायी मंदिरों में उत्सवों पर उड़ाई जाती है ।

अविरथा—वि० [सं० वृथा] वृथा, व्यर्थ ।

अविरल—वि० [सं० अविरल] घना, सघन । उ०—अलक अविरल, चारु हास-बिलास, भृकुटी भग—६२७ ।

अविवेकी—वि. [सं० अविवेकिन्, हिं० अविवेकी] (१) अज्ञानी, विवेकरहित । (२) मूढ़, मूर्ख ।

अविसेक—वि. [सं० अविशेष] तुल्य, समान । उ०—प्रेमहित करि छीरसागर भई मनसा एक । स्याम मनि से अग चंदन अमी के अविसेक—सा. उ.-५ ।

अविहित—वि. [सं० अविहित] (१) विरुद्ध । (२) अनुचित, अयोग्य । उ०—अविहित बाद-बिवाद सकल मत इन लागि भेष धरत । इहिँ विधि भ्रमत सकल निसि-दिन गत, कछु न काज सरत—१-५५ ।

अबीर—संज्ञा पु० [अ०] रंगीन बुकनी जो होली के दिनों में मित्र परस्पर डालते हैं । उ०—उडत गुलाल अबीर जोर तहे बिदिस दीप उजियारी—२३६१ ।

अबुध—वि. [सं०] अबोध, नादान ।

अबूझ—वि० [सं० अबुद्ध, पा० अबुज्झ] अबोध, नासमझ, नादान ।

अवेध—वि. [सं० अविद्ध] जो छिदा न हो, अनवेधा ।

अवेर—संज्ञा स्त्री० [सं० अवेना] विलंब, देर । उ०—(क) खेलन कौं हरि दूरि गयो री । संग संग धावत डोलत है, कह धौ बहुत अवेर भयो री—१०-२१६ ।

(ख) आजु अवेर भई कहूँ खेलत, बोलि लेहु हरि की कोउ बाम री—१०-२३५ ।

अबेरौ—संज्ञा स्त्री [सं. अबेला, हिं. अबेर] देर, विलंब ।

उ. —वकित भई ग्वालिनितन हेरौ । माखन छाँडि गई मथि बैसैहि, तब तै कियो अबेरौ । देखै जाइ मटुकिया रीती, मै राख्यौ कहूँ हेरि—१०-२७१ ।

अबेस—वि. [फा. बेश=अधिक] बहुत, अधिक । उ०—कीर कदंब मजुका पूरन सौरभ उडत अबेस । अगर धूप सौरभ नासा सुख बरषत परम सुदेस ।

अबै—क्रि. वि. [हिं. अब] इसी समय, अभी-अभी ।

उ.—(क) हो रघुनाथ, निसाचर कै मँग अबै जात हौ देखो—६-६४ । (ख) जसुमति देख आपनो कान । बरष सर को भयौ पूरन अबै ना अनुमान—सा० ११४ । (ग) हरि प्रति अग अग की सोभा अँखियन मग ह्वै लेउ अबै—१३०० ।

अबोल—वि. [सं. अ=नही+हिं. बोल] (१) मौन, अवाक् । (२) जिसके विषय में बोल न सकें, अनिर्वचनीय ।

संज्ञा पु०—कुबोल, बुरा बोल ।

अबोला—संज्ञा पुं. [स. अ=नही+हिं. बोलना] मान या रिस के कारण न बोलना ।

अबोले—वि. [सं. अ=नही+हिं. बोल] मौन, अवाक् । उ०—कबहुँ न भयौ सुन्यौ नहिँ देख्यौ तनु ते प्रान अबोले—२२७५ ।

अभंगी—वि. [स. अभंगिन्] (१) पूर्ण, अखंड । (२) जिसका कोई कुछ न ले सके । उ०—आए माई दुर्ग स्याम के सगी । । सुधी कहत सबन समुझावत, ते साँचे सरबंगी । औरन को सरवसु लें मारत आपुन भए अभंगी ।

अभंगुर—वि. [सं.] (१) जो टूट न सके, दृढ़ । (२) जो नाश न हो, अमिट ।

अभच्छ—वि. [सं० अभक्ष्य] (१) जिसके खाने का निषेध हो । उ०—भच्छि अभच्छ, अपान पान करि, कबहुँ न मनसा धापी—१-१४० । (१) अखाद्य, अभोज्य ।

अभय—वि. [सं०] निर्भय, निडर । उ०—जाकों दीनानाथ निवाजै । भवसागर मै कबहुँ न भूकै, अभय निसाने बाजै—१-३९ ।

मुहा०—अभय दयो—शरण दी, निर्भय किया ।

उ०—ब्रह्मा रुद्रलोक हूँ गयो । उनहुँ ताहि अभय नहिँ दयो ।

अभयदान—संज्ञा पु. [सं.] निर्भय करना, शरण देना, रक्षा का वचन देना । उ०—नरहरि देखि हर्ष मन कीन्हौ । अभयदान प्रह्लादहि दीन्हौ—७-२ ।

अभयपद—संज्ञा पुं. [सं.] निर्भय पद, मोक्ष, सुख । उ०—पिता-वचन खंडे सो पापी, सोइ प्रह्लादहि कीन्हौ । निकसे खभ-बीच तै नरहरि, ताहि अभयपद दीन्हौ—१-१०४ ।

अभर—वि. [सं. अ=नही+भार=बोझा] न बोझ योग्य ।

अभरन—संज्ञा पु. [सं. आभरण] गहना, आभूषण । उ०—(क) सूरदास कचन के अभरन लै भगरिनि पहिराई—१०-१६ । (ख) इक अभरन लेहिँ उतारि, देत न सक करै—१०-२४ ।

अभरम—वि. [सं. अ=नही+भ्रम] (१) अभ्रम, अचूक । (२) निशंक, निडर ।

क्रि. वि.—निःसन्देह, निश्चय ।

अभल—वि. [अ=नही+हिं. भला] जो भला न हो, बुरा ।

अभाऊ—वि. [सं. अ=नही+भाव] जो अच्छा न हो, अप्रिय । (२) जो न सोहे, अशोभित ।

अभाग—संज्ञा पु. [सं. अभाग्य] दुर्भाग्य, बुरा भाग्य ।

अभागि—वि. स्त्री. [हिं. अभागिनी] (१) भाग्यहीन । (२) स्त्रियों की एक गाली । उ०—कबहुँ बाँधति, कबहुँ मारति, महरि बडी अभागि—३८७ ।

अभागिनि—वि. स्त्री. [सं. अभागिन्, हिं. अभागिनी] भाग्यहीन । उ०—तृष्णा बहिन, दीनता सहचरि, अधिक प्रीति बिस्तारी । अति निमक, निरलज्ज, अभागिनि, घर घर फिरत न हारी—१-१७३ ।

अभागे—वि. [हिं. अभागा] भाग्यहीन, प्रारब्धहीन ।

अभागौ—वि. [सं. अभाग्य, हिं. अभागा] अयत्न, भाग्यहीन, मन्दभाग्य । उ०—प्रभु जू हौं तो यहू अघमीं । अपत, उधार, अभागौ, कामी, विषयी निपट कुकमीं—१-१८६ ।

अभाव—संज्ञा पु. [सं.] कुभाव, दुर्भाव, विरोध ।

अभास—संज्ञा पुं. [सं. आभास] (१) प्रतिबिम्ब,

मलक, समानता । उ०—(क) तहँ अरि पंथ पिता
जुग उदित बारिज बिबि रंग भजो अभास—सा.
उ० २८ और २७२३ । (ख) नाथ तुम्हारी जोति
अभास । करत सकल जग मै परकास १०३०-१२६ ।
अभिद—वि. [सं. अभेद्य, हि. अभेद] भेदशून्य, एक-
रूप, समान । उ.—अभिद अछेद रूप मम जान । जो
सब घट है एक समान—३-१३ ।
अभिन—वि. [म. अभिन्न] (१) जो भिन्न न हो, एक-
मय । (२) मिला हुआ, सटा हुआ, संबद्ध । उ.—
अब इह वर्षा बीति गई । उदित चारु
चंद्रिका अवर उर अतर अमृत मई । घटी घटा सब
अभिन मोह मोद तमिता तेज हई—२८५३ ।
अभिमान—संज्ञा पुं. [सं.] गर्व, अहंकार, घमंड ।
मुहा.—बाँधे अभिमान—गर्व से युक्त हैं । उ.—
आदि रसाल जगफल के सुत जे बाँधे अभिमान ।
सूरज सुत के लोक पठावत से सब करत नहान—
सा. ७४ ।
अभिमानिनि—वि. [सं. अभिमानी+हि. नि (प्रत्य.)]
अभिमानियों से, अहंकारियों से । उ.—यह आसा
पापिनी दहै । धन-मद-मूढनि, अभिमानिनि
मिलि, लोभ लिए दुर्बचन सहै—१-५३ ।
अभिमानी—वि. [सं. अभिमानिन्] अहंकारी, घमंडी,
दर्पी ।
अभिरत—वि. [सं.] (१) लीन, लगा हुआ । (२)
युक्त, सहित ।
अभिरना—क्रि. स. [सं. अभि=सामने+रण=युद्ध]
(१) लड़ना, मिड़ना । (२) टेकना, सहारा लेना ।
अभिराम—वि. [स.] अग्नददायक, सुंदर, रम्य ।
उ.—नैन चकोर सतत दरसन ससि, कर अरचन
अभिराम—२-१२ ।
संज्ञा पुं.—आनंद, सुख ।
अभिरामिनि—वि. स्त्री. [हि. अभिरामिनी] (१)
रमण करनेवाली, व्याप्त होनेवाली । (२) सुंदर,
रम्य । उ०—उमुना पुलिन मल्लिका मनोहर सरद
सुहाई यामिनि । सुंदर ससि गुन रूप राग निधि
अंग अंग अभिरामिनि—पृ. ३४४ ।
अभिलाख—संज्ञा पुं. [सं. अभिलाष] इच्छा, मनोरथ ।

अभिलाखना—क्रि. स. [सं. अभिलषण] चाहना,
इच्छा करना ।
अभिलाख्यौ—क्रि. स. [सं. अभिलषण, हि. अभि-
लाखना] इच्छा की, चाहा । उ०—विधि मन चकित
भयो बहुरि ब्रज कों अभिलाख्यौ—४६२ ।
अभिलाष—संज्ञा पुं. [सं.] इच्छा, मनोरथ । उ०—
(क) पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तंदुल
खाए (हो) । संपति दै बाकी प्रतिनी कों, मम
अभिलाष पुराए (हो)—१-७ । (ख) पेर-तिव-रति
अभिलाष निसादिन मन-पिटरी लै भरती—१-२०३ ।
अभिलाष्यौ—क्रि. स. भूत. [स. अभिलषण, हि. अभि-
लाखना] इच्छा की, चाहा । उ०—जब हिरनाच्छ
जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मै अति गरबाऊ—१०-२२१ ।
अभिलासी—वि. [सं. अभिलाषिन्, हि. अभिलाषी]
चाह रखनेवाला, इच्छुक, रुचि रखनेवाला । उ०—
निर्गुन कौन देस को बासी । कैसो बरन
भेष है कैसो केहि रस में अभिलासी—३०८२ ।
अभिलासा—संज्ञा पुं. [स. अभिलाषा] इच्छा, चाह,
कामना ।
अभिषेक—संज्ञा पुं. [सं.] सविधि मंत्र-पाठ के साथ
जल छिड़ककर अधिकार प्रदान करना ।
अभिसरन—संज्ञा पुं. [सं. अभिशरण] सहारा, आश्रय,
शरण ।
अभिसरना—क्रि. अ. [स. अभिशरण] जाना, प्रस्थान
करना ।
अभिसार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सहारा, अवलंब ।
(२) नायक या नायिका का प्रेमिका या प्रेमी से
मिलने के लिए संकेत-स्थल को जाना ।
अभिसारना—क्रि. अ. [सं. अभिसारणम्] (१) जाना,
घूमना (२) प्रिय से मिलने के लिए नायिका का
संकेत-स्थल को जाना ।
अभिसारी—क्रि. अ. [सं. अभिसारणम्, हि. अभि-
सारना] घूमे-फिरे, विचरण किया, बिहार किया ।
उ.—धनि गोपी धनि ग्वारि धन्य सुरभी बनचारी ।
धनि इह पावन भूमि जहाँ गोविंद अभिसारी—
३४४३ ।
अभू—क्रि. वि. [हि. अब+हू=भी] अब भी ।

अभूखन्—संज्ञा पु. [सं० आभूषण] गहने, भूषण ।

अभूत—वि. [सं.] अपूर्व, विलक्षण, अनूठी । उ.—
उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीत
उठाए । नील जलद पर उडुगन निरखत, तजि
सुभाव मनु तड़ित छपाए—१०-१०४ ।

अभूषन्—संज्ञा पु. [सं. आभूषण] गहना, अलंकार ।
उ०—करि आलिंगन गोपिका, पहिरै अभूषन चीर—
१०-२६ ।

अभेद—संज्ञा पु. [स.] (१) अभिन्नता । (२) एक-
रूपता, समानता ।

वि.—(१) भेदशून्य । उ०— इह अछेद अभेद
अविनासी । सर्व गति अरु सर्व उदासी—१२-४ ।

(२) एकरूप, समान ।

वि. [स. अभेद्य] जिसको भेदा या छेदा न जा
सके ।

अभेरा—संज्ञा पु. [स. अभि=सामने+रण=नड़ाई]
रगड़, टक्कर ।

अभेव—संज्ञा पु. [स. अभेद] अभेद, एकता, अभिन्नता ।
वि.—अभिन्न एक ।

अभै—वि० [स० अभय] निर्भय, निडर ।

मुहा०—अभै (पद) दियो—निर्भयकर दिया ।
उ०—(क) ध्रुवहि अभै पद दियो मुरारी—१-२८ ।
(ख) सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तनि अभै
दियो—१-१२१ ।

अभोग—वि० [स०] जिसका भोग न किया गया हो,
अश्रुता ।

अभोगी—वि. [स० अ=नहीं+भोगी=भोग करनेवाला]
इन्द्रियों के सुख से उदासीन ।

अभोज—वि. [स० अभोज्य] न खाने योग्य, अखाद्य ।

अभ्यन्तर—वि. [स० अभि+अन्तर] भीतरी, हृदय की ।
संज्ञा पु० [स०] (१) हृदय, अन्तःकरण ।

उ०—अभ्यन्तर अन्तर बसे पिय मो मन भाए—
१६६४ । (२) मध्य, बीच । उ०—हमारी सुरत लेत
नहिं माधो । तुम अलि सब स्वारथ के गाहक नेह न
जानत आधो । निसि लौ मरत कोस अभ्यन्तर जो हिय
कहो सु थोरी । भ्रमत भोर सुख ओर सुमन साँग कमल
देत नहिं कोरी—३२४४ ।

अभ्यास—संज्ञा पु० [सं०] बार बार एक काम को करना,
अनुशीलन, आवृत्ति । उ०—नाना रूप निसाचर
अद्भुत, सदा करत मद-पान । टोर-टोर अभ्यास
महाबल करत कुन्त-असि-बान—६-७५ ।

अभ्र—संज्ञा पु० [स०] (१) आकाश । उ०—निरखि
सुन्दर हृदय पर भृगु-पाद परम सुलेख । मनहुँ सोभित
अभ्र-अन्तर सभुभूषन बष—६३५ । (२) मेघ, बादल ।

अमंगल—वि० [स०] मंगलरहित, अशुभ ।

संज्ञा पु०—अकल्याण, दुख, अशुभचिह्न । उ०—
(क) भागे सकल अमंगल जग के—१०-३२ । (ख)
सूर अमंगल मन के भागे—२३६७ ।

अमंद—वि० [स० अ=नहीं] जो धीमा न हो, तेज
(प्रकाश वाला) । उ०—रही न सुधि सरीर अरु
मन की पीवति किरनि अमद—१०-२०३ ।

अमनिया—वि० [स० अ+मल, अथवा कमनीय]
शुद्ध, पवित्र, अछूतो ।

अमनैक—संज्ञा पु० [स. आम्नापिक=वंश का, अथवा
स० आत्मन । प्रा० अप्पण, हि० अपना से 'अपनैक']
(१) अधिकारी । (२) ठीठ, साहसी ।

अमर—वि० [स०] जो मरे नहीं, चिरजीवी । उ०—
(क) मेरे हित इतनी दुख भरत । मोहिं अमर काहे
नहिं करत—१-२२६ । (ख) अज अविनासी अमर
प्रभु, जनमै-मरै न सोइ—२-३६ ।

संज्ञा पु०—देवता, सुर ।

अमरख—संज्ञा पु० [स० अमर्ष=क्रोध] कोप, रिस ।

अमरखी—वि० [सं० अमर्ष] क्रोधी, बुरा माननेवाला ।

अमरपद—संज्ञा पु० [स०] मोक्ष, मुक्ति ।

अमरपन—संज्ञा पु० [स०] अमरत्व, अमरता । उ०—
ग्रह नछत्र अरु बेद अरु करि खात हरष मन
बाढो । तातै चहत अमर पद तन को समुझ समुझ
चित काढो—स० ६५ ।

अमरपुर—संज्ञा पु [स.] अमरावती ।

अमरपुरी—संज्ञा स्त्री० [स०] अमरावती ।

अमरराज—संज्ञा पु. [स.] देवताओं का राजा, इन्द्र ।

अमरा—संज्ञा स्त्री. [स.] इन्द्रपुरी, अमरावती ।

अमराई, अमराव—संज्ञा स्त्री. [स. आम्रराजि] आम
का बगीचा ।

अमरराजसुत—सज्ञा पु. [सं. अमरराज=इंद्र + (इन्द्र का) सुत=अर्जुन=पार्थ (पार्थ=पार्थ=पंथ)] मार्ग, रास्ता । उ.—माधौ बिलम बिदेस रहो री । अमर-राजसुत नाम रहनि दिन निरखत नीर बहो री—सा. उ.—५१ ।

अमरापति—सज्ञा पु. [सं.] इंद्र । उ.—अमरापति चरनन लै परघौ जब बीते जुग गुन की जोर—६६८ ।

अमल—वि [सं.] (१) निर्मल, स्वच्छ । उ.—भूषन सार सूर स्रम सीकर सोभा उडत अमल उजियारी—सा. ५१ । (२) निर्दोष, पापशून्य । (३) सुन्दर । उ.—चपकली सी राधिका राजत अमल अदोष—२०६५ ।

सज्ञा पु. [अ] (१) बान, टेव, आदत । उ.—(क) आनंदकंद चद मुख निसि दिन अवलोकत यह अमल परघो । सूरदास प्रभु सो मेरी गति जनु लुब्धक कर मीन तरघो—१०-८६१ । (ख) हरि दरसन अमल परघो लाज न लजानी । (२) प्रभाव । (३) अधिकार, शासन ।

अमला—सज्ञा स्त्री. [सं.] राधा की एक सखी गोपी का नाम । उ.—कहि राधा किन हार चुरायो । ब्रज युवतिनि सबहिन मै जानति घर घर लै लै नाम बतायो । अमला अवला कंजा मुकुना हीरा नीला प्यारि—१५८० ।

अमातना—क्रि. स. [सं. आमंत्रण] बुलाना, निमंत्रित करना, न्योता देना ।

अमाति—क्रि. स. [सं. आमंत्रण, हि. अमातना] आमंत्रित करके, निमंत्रण देकर, आह्वान करके । उ.—कह्यो महारि सो करौ चडाई, हम अपने घर जाति । तुमहूँ करौ भाग सामग्री, कुल-देवता अमाति—८११ ।

अमान—वि. [सं.] (१) अपरिमित, परिमाणरहित । (२) अनगिनती, बहुत । (३) गर्वरहित, निरभिमान, सीधा-सदा । (४) मानशून्य, अप्रतिष्ठित, अनादृत ।

अमाना—क्रि. अ. [सं. अ=पूरा + मान = माप] (१) समाना, अँटना । (२) फूलना, उमड़ना, इतराना ।

अमानो—वि. [सं. अमानिन्] घमंडरहित, निरभिमानी ।

क्रि. अ. स्त्री. [हि. अमाना] फूल गई, इतराने लगीं । उ.—करि कछु ज्ञान अभिमान जान दै है कैसी मति ठानी । तन धन जानि जाम जुग छाया भूलति कहा अमागी ।

अमानुष—वि. [सं.] (१) जो मनुष्य से न हो सके । (२) जो मनुष्य के स्वभाव से बाहर हो ।

अमाप—वि. [सं.] जो मापा न जा सके, असीम, अपरिमित । उ.—उलटी रीति नंदनंदन की घरि घरि भयो सँताप । कहियो जाइ जोग आराधे अबिगत अकथ अमाप—२६७६ ।

अमाया—वि. [सं.] (१) मायारहित, निर्लस । उ.—आदि सनातन, हार अविनासी । सदा निरंतर घट-घट बासी । जरा भरन तै रहित अमाया । मातु पिता, सुत बंधु न जाया—१०-३ । (२) निस्वार्थ, निष्कपट, निश्छल ।

अमारग—सज्ञा पु. [सं.] (१) कुमार्ग, कुराह, । उ.—माधौजू, यह मेरी इक गाय । यह अति हरहाई, हटकत हूँ बहुत अमारग जाति—१-५१ । (२) बुरी चाल, दुराचरण ।

अमिट—वि. [सं. अ = नही + हि. मिटना] जो नष्ट न हो, स्थायी, अटल, अवश्यंभावी ।

अमित—वि. [सं.] (१) अपरिमित, असीम, बेहद । (२) बहुत अधिक । उ.—(क) अबिगत-गति कछु कहत न आवै । ज्यों गूँगे मीठे फल कौ रस अतरगत ही भावै । परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै—१-२ । (ख) अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटति रस रुचि ठावहि ठाउँ—६६३ ।

अमिय—सज्ञा पु. [सं. अमृत, प्रा. अमिअ] अमृत ।

अमिरती—सज्ञा स्त्री. [सं. अमृत, हि. इमरती] इमरती नाम की मिठाई जो उर्द की फेटी हुई महीन पीठी और चौरेटे की बनती है ।

अमिल—वि. [सं. अ=नही+हि. मिलना] (१) जो न मिल सके, अप्राप्य । (२) बेमेल, बेजोड़ । (३) जिससे मेल-जोड़ न हो । (४) ऊबड़-खाबड़, ऊँचा-नीचा ।

अमी—सज्ञा पु. [सं. अमृत, प्रा. अमिअ, हि. अमिय] (१) अमृत । (२) अमृत के समान । उ.—(क) अमी-बचन सुनि होत कुलाहल देवनि दिवि दुहुभी

बजाई—६-१६६ । (ख) स्याम मनि से अंग चंदन,
अमी से अबिसेक—सा. उ.—५ ।
अमीगलित—वि. [सं] अमृत से हीन या रहित ।
उ.—घट सुत असन समै सुत आनन अमीगलित जैसे
मेत—सा. उ.—२६ ।
अमीकर—संज्ञा पु. [अमृतकर] चंद्रमा ।
अमीत—संज्ञा पु. [स. अमित्र, प्रा. अमित] जो मित्र
न हो, शत्रु ।
अमीन—संज्ञा पु. [अ.] एक अदालती कर्मचारी । उ.—
नैन-अमीन अधर्मिनि कै बस, जहँ को तहाँ छयो—
१-६४ ।
अमूल्य—वि. [सं.] (१) अनमोल । (२) बहुमूल्य ।
अमृत—संज्ञा पु. [सं.] पुराणानुसार समुद्र से निकले
चौदह रत्नों में एक जिसे पीकर जीव अमर हो
जाता है ।
अमृतकुंडली—संज्ञा स्त्री. [स] एक प्रकार का बाजा ।
अमेली—वि. [स. अमेलन] अनमिल, असंबद्ध ।
अमोघ—वि [स.] अव्यर्थ, अचूक, वृथा न होनेवाला ।
उ.—प्रभु तव माया अगम अमोघ है लहि न सकत
कोउ पार—३४६४ ।
अमोचन—संज्ञा पु. [स.] छुटकारा न होना ।
वि.—न छूटने वाला, दृढ़ । उ०—मूँदि रहे पिय
प्यारी लोचन अति हित बेनी उर परसाए बेष्टित
भुजा अमोचन—पृ. ३१८ ।
अमोरि—संज्ञा स्त्री. [हि. अमोरी (आम+अमोरी-प्रत्य.)]
(१) कच्चा आम, अंबिया । (२) आमड़ा, अम्मारी ।
उ०—और सखा सब जुरि जुरि ठाढ़े आप दनुज संग
जोरि । फल को नाम बुझावन लागे हरि कहि दियौ
अमोरि—२३७७ ।
अमोल—वि. [सं. अ=नही+हि. मोल] अमूल्य ।
अमोलक—वि. [सं. आ+हि. मोल] अमूल्य, बहुमूल्य ।
उ०—लोभी, लंपट, बिषयिनि सो हित, यौ तेरी
निबही । छाँडि कनक-मनि रतन अमोलक काँच की
किरच गही—१-३२४ ।
अमोले—वि. [हि. अमोल] बहुमूल्य । उ०—देखिबे
की साध बहुत सुनि गुन विपुल अतिहि सुदर सुने
दोउ अमोले—२४६७ ।

अमोही—वि. [सं. अ=नही+मोह] (१) विरक्त, उदासीन
(२) निर्मोही, निष्ठुर ।
अम्मर—संज्ञा पु. [म. अबर] वस्त्र ।
मुहा०—अम्मर लेत—वस्त्र हरण करना, वस्त्र
हटाना । उ०—मुता दविपति सौ क्रोध भरी । अम्मर
लेत भई खिभि बालहि सारंग सग लरी—२०७५ ।
अम्रित—संज्ञा पु. [स. अमृत] सुधा, पियूष, अमृत ।
उ०—हरि कह्यौ साग-पत्र मोहि अति प्रिय, आम्रत
ता सम नाही—१-२४१ ।
अयन—संज्ञा पु. [सं.] घर, वासस्थान । उ०—जाको
अयन जल मे तेहि अनल कैसे भावै—३१२६ ।
अयाचक—वि. [सं] (१) न माँगनेवाला । (२)
संतुष्ट ।
अयाची—वि. [स. अयाचिन्] (१) जो न माँगे ।
(२) पूर्णकाम, संतुष्ट । उ०—किए अयाची याचक
जन बहुरि—१०३-२४ ।
अयान—वि [स. अजान] अनजान, अज्ञानी । उ०—
सूरदास प्रभु कहौ कहाँ लागे है अयान मतिहीनी—
३४४६ ।
अयानप, अयानपन—संज्ञा पु. [हि. अजान+प या पन]
(१) अनजानपन (२) भोलापन, सीधापन ।
अयाना—वि पु. [हि. अजान] अज्ञानी, बुद्धिहीन,
अनजान ।
अयानी—वि. स्त्री. [हि. अजान, अयान (पु.)] (१)
अज्ञान, बुद्धिहीन । उ०—मोहन कत खिभत अयाना
लिए लाइ हिऐ नँदरानी—१०-१८३ । (२) मूर्छित,
संज्ञाहीन, बेहोश । उ०—द्विगजापति पतिनी पति
सुत के देखत हम मुर्झानी । उठि उठि परत धरनि
पर सुदर मंदिर भई अयानी—सा० ५५ ।
अयाने—वि. [हि. अजान] अजान, बुद्धिहीन । उ०—
(क) ऊधौ जाह तुम्है हम जानै ।बडे लोग
न बिवेक तुम्हारे ऐसे भए अयाने—२६०६ ।
(ख) जानत तीनि लोक की महिमा अबलनि काज
अयाने—३२२१ ।
अयानो—वि. [हि. अजान] बुद्धिहीन, अज्ञानी । उ०—
जानि-बूझि कैहौ कत पठ्यौ सठ बाबरो अयानो—
३४६७ ।

अयान्यौ—वि. [हि. अजान] अज्ञानता से युक्त, मूर्खता पूर्ण । उ.—चूक परी मोको सबही अग कहा करों गई भूलि सयान्यौ । वे उतही को गए हरषमन मेरी करनी समुक्ति अयान्यौ—१४६० ।

अयोग—संज्ञा पु. [सं.] (१) योग का अभाव । (२) कुसमय । (३) कठिनाई, संकट । (४) अप्राप्ति, असंभव । वि [सं.] बुरा ।

वि [स.] अयोग्य, अनुचित । उ.—सिर पर कस मधुपुरी बैठो छिनकही मे करि डारौ सोग । फूँकि फूँकि धरणी पग धारौ अब लागी तुम रन अयोग—१४६७ ।

अयोग्य—वि. [स. अयोग्य] जो योग्य न हो, निकम्मा, अपात्र ।

अयोपतिका—संज्ञा स्त्री. [सं. आगतपतिका] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में से एक । ऐसी नायिका जिसका पति बाहर से आया हो । उ.—सूर अनसंग नजत तावत अयोपतिका रूप—सा. ३९ ।

अरंग—संज्ञा पु. [स. अर्घ्य=पूजा द्रव्य] सुगंध, महक ।

अरंभ—संज्ञा पु. [स. आरंभ] आरंभ, शुरू । उ.—जग अरंभ करि नृप तहँ गयो—६-३ ।

अरंभना—क्रि. स. [स. आ+रंभ=शब्द करना] बोलना, नाद करना ।

क्रि. स. [सं० आरंभ] आरंभ करना, शुरू करना ।

क्रि. अ. [सं० आरंभ] आरंभ होना, शुरू होना ।

अर—संज्ञा पु. [हि. अड] हठ, अड़, जिद्द । उ.—हो तो न भयो री घर, देखत्यो तेरी यौ अर, फोरतौ बासन सब, जानति बलैया—३७२ ।

संज्ञा पु. [स. और] शत्रु, वैरी । उ.—निसि दिन कलमनात सुनि सजनी सिर पर गाजत मदन अर । सूरदास प्रभु रही मौन है कहि न सकति मैन के भर—२७६४ ।

अरु—संज्ञा पु. [सं.] सेवार ।

अरकना—क्रि. अ. [अनु०] टकराना, अररा कर गिरना ।

क्रि. अ. [हि. दरकना] फटना ।

अरगजा—संज्ञा पु. [हि. अरग+जा] शरीर में लगाने का एक सुगंधित द्रव्य । उ.—खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन-अंग—१-३३२ ।

अरगजी—संज्ञा पुं. [हि. अरगजा] एक रंग जो अरगजे की तरह होता है ।

वि.—(१) अरगजे रंग का । (२) अरगजा की सुगंध का । उ.—उर धारी लटे छूटी आनन पर भीजी फूलेलन सौ आली हरि सग केलि । सोधे अरगजी अर मरगजी सारी केसरि खोरि बिराजति कहूँ कहूँ कुचनि पर दरकी अंगिया घन बेलि—१५८२ ।

अरगजे—संज्ञा पुं. [हि. अरगजा] एक सुगंधित द्रव्य । उ.—भले हाजू जाने लाल अरगजे भीन मौल केसरि तिलक भाल मैन मत्र काचे—२००३ ।

वि.—अरगजा की सुगंध से युक्त । उ.—तही जाहु जहँ रैन बसे हो । काहे को दाहन हो आए अग अग देखति चिन्ह जैसे हो । अरगजे अग मरगजी माला बसन सुमंध भरे से हो—१६५३ ।

अरगट—वि. [हि. अलगट] अलग, भिन्न ।

अरगल—संज्ञा पु. [स. अर्गल] ब्योढ़ा, गज ।

अरगाइ—क्रि. अ. [हि. अलगाना] (१) अलग, पृथक् ।

(२) सन्नाटा खींचे हुए, मौन, चुप साधे हुए । उ०—

(क) ब्रह्मादिक सब रहे अरगाइ । क्रोध देखि कोउ निकट न जाइ—७-२ । (ख) सूनै सदन मथनियाँ कै ठिग, बैठि रहे अरगाइ—१०-२६५ । (ग) सुनि लीन्हो उनही को कह्यौ । अपनी चाल समुक्ति मन माही गुनि अरगाइ रह्यौ—३४६७ ।

मुहा—प्राण रहे अरगाइ—प्राण सूख गए, विस्मित हो गए । उ०—जासो जैसी भाँति चाहिए ताहि मिल्यो त्यो छाइ । देस देस के नृपति देखि यह प्राण रहे अरगाइ—१० उ १६२ ।

अरगाई—क्रि. अ. [हि. अलगाना] (१) सन्नाटा खींच कर, चुप्पी साधकर, मौन होकर । उ०—एक समय पूजा के अवसर नद समाधि लगाई । सालिग्राम मेलि मुख भीतर बैठ रहे अरगाई—१०-२६३ । (ख) कुँवरि राधिका प्रात खरिक गई तहाँ कहूँ धौ कार खाई । यह सुनि महारि मनहि मुसुक्यानी, अबहि रही मेरै गृह आई । सूरस्याम राधहि कछु कारन, जसुमति समुक्ति रही अरगाई—७५४ । (ग) जननी अतिहि भई रिसिहाई । बार-बार कहै कुँवरि राधिका री मोती श्री कहाँ गँवाई । बूझे ते तोहि जवाब न आवै कहाँ

चौन्ही । आपु भए पति वह अरधंगी ॥ गोपित नाव
धरघो नवरंगी—२६७५ ।

अरध—वि. [सं. अर्द्ध] आधा, अपूर्ण । उ.—(क) अंत
औसर अरध-नाम-उच्चार करि सुअत गज ग्राह तै
तुम छुडाए—१-११६ । (ख) कहै तो जनक गेह
दै पठवौ अरध लंक कौ राज—६-७६ ।

क्रि. वि. [सं. अधः] अन्दर, भीतर ।

अरधधाम—संज्ञा पुं. [सं. अर्द्ध = आधा + धाम = घर
(घर का आधा = पाखा) (पाखा = अक्ष = दो सप्ताह)]
पक्ष । उ.—सखी री सुनु परदेसी की बात । अरध
बीच दै गयी धाम को हरि अहार चलि जात—
सा. २३ ।

अरधांगी—संज्ञा स्त्री. [सं. अर्द्धा गिनी] पत्नी ।

अरनि—संज्ञा स्त्री. [सं. अल = वारण करना, हि.
अडना] हठ, टेक । उ.—वरषि निकरे मेघ पाइक
बहुन कीने अरनि । सूर सुरपति हारि मानी तब
परे दुहुँ चरनि—६६५ ।

अरन्य—संज्ञा पुं. [सं. अरण्य] वन, जंगल । उ.—
भली कही यह बात कन्हाई, अतिही सघन अरन्य
उजारि—४७२ ।

अरपन—संज्ञा पुं. [सं. अर्पण] (१) देना, दान । (२)
भेंट ।

अरपना—क्रि. स. [सं. अर्पण] भेंट करना, देना ।

अरपित—वि. [सं. अर्पित] अर्पण किया हुआ ।

अरपी—क्रि. स. [सं. अर्पण, हि. अरपना] अर्पण की,
भेंट की, दान दी । उ.—जाबवती अरपी कन्या भरि
मनि राखी समुहाय । करि हरि ध्यान गयी हरि
पुर कौ जहाँ जोगेस्वर जाय ।

अरपै क्रि. स. [सं. अर्पण, हि. अरपना] अर्पण किये ।
मुहा.—प्राण अरपै—प्राण सूख गये, विस्मित होगये ।
अर्पणकर दिये । उ.—तड़ित आघात तररात उत-
पान सुनि नर-नारि सकुचि तनु प्राण अरपै—
६४६ ।

अरप्यौ—क्रि. स. भूत. [सं. अर्पण, हि. वर्त, अरपना]
अर्पण किया, भोग लगाया । उ.—(क) पट अनर दै
भोग लगायौ, आरति करी बनाइ । कहत कान्हू, बाबा
तुम अरप्यौ, देव नही कछ खाइ—१०-२६१ । (ख)

हम प्रतीति करि सरबस अरप्यौ गन्यौ नही दिन
राती—३४१८ ।

अरबर—वि. [अनु.] (१) जटपटाँग, असंबद्ध । (२)
कठिन ।

अरबराइ—क्रि. अ. [हि. अरबराना] लड़खड़ाकर,
जटपटाकर, अड़बड़ाकर । उ.—(क) सिखवति चलन
जसोदा मैया । अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ
घरनी धरे पैया—१०-११५ । (ख) गहे अँगुरिया
ललन की नँद चलन सिखावत । अरबराइ गिरि परत
हैं, कर टेक उठावत—१०-१२२ ।

अरबराना—क्रि. अ. [हि. अरबर] (१) घबड़ाकर,
व्याकुल होकर । (२) जटपटाकर, अड़बड़ाकर ।

अरबरी—संज्ञा स्त्री. [हि. अरबर] घबड़ाहट, हड़बड़ी ।

अरबिद—संज्ञा पु. [सं. अरविंद] कमल ।

अरबीला—वि. [अनु.] भोलाभाला, अंडबंड ।

अरभक—वि. [सं. अभंक] छोटा, अल्प ।

संज्ञा पुं.—बच्चा, लड़का ।

अरररात—क्रि. स. [हि. अरराना (अनु.)] टूटने या
गिरने का अरररर शब्द करके गिरते (हुए) । उ.—
अरररात दोउ बूच्छ गिरे घर । अति अघात भयो ब्रज
भीतर—३६१ ।

अरराई—क्रि. स. [हि. अरराना (अनु.)] टूटने या
गिरने का अरररर शब्द करके । उ.—तर दोउ धरनि
गिरे भहराइ । जर सहित अरराइ कै, आघात सबद
सुनाइ—३८७ ।

अररात—क्रि. स. [हि. अरराना (अनु.)] अरररर शब्द
करते हैं । उ.—(क) बरत बन पात, भहरात, भहरात
अररात तर महा घरनी गिरायौ—५६६ । (ख) घटा
घनघोर घहरात अररात दररात सररात ब्रज लोग
डरपे—६४६ ।

अरराना—क्रि. स. [अनु.] (१) टूटने या गिरने का
अरररर शब्द करना । (२) तुमुल शब्द करके गिरना ।
(३) सहसा गिर पड़ना ।

अरवाती—संज्ञा स्त्री. [हि. ओखती] छाजन का
किनारा जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है ।
ओखती, ओरौनी । उ०—सजनी नैना गये भगाइ ।
अरवाती को नीर वेरडी कैसे फिरिहै धाइ—पृ. ३३१ ।

अरस—वि. [स.] नीरस, फीका । (२) गँवार, अनादी ।

संज्ञा पुं. [सं. अलस] आलस्य । उ०—नहिं दुरत
हरि पिय कौ परस । मन को अति आनंद, अधरन
रंग, नैनन को अरस—२१०८ ।

संज्ञा पुं. [अ. अर्थ] (१) छूत, पाटन । (२)
धरहरा, मेहल । उ०—नार मार कहि गारिहे धृग
गाय चरैया । कंस पास ह्वै आइयै कामरी उढैया ।
बहुरि अरस तै आनि कै तब अंबर लीजै ।
अरस नाम है मेहल को जहाँ राजा बैठे । गारी दै दै
सब उठे भुज निज कर ऐठे—२५७५ ।

अरसना—क्रि. अ. [सं. अलस] शिथिल पड़ना, ढीला
होना, मंद होना ।

अरसना परसना—क्रि. स. [स. स्पर्शन] छूना ।
(२) मिलना, भेंटना, आलिंगन करना ।

अरस परस—क्रि. स. [सं. स्पर्शन, हिं. अरसना-परसना]
छूकर, मिलकर, लिपटकर, मपटकर । उ०—(क)
खेलत खात गिरावही, भगरत दोउ भाई । अरस-
परस चुटिया गहै, बरजति है भाई—१०-१६२ ।
(ख) चलत गति करि रुनित किकिनि घूँघरु भनकार ।
मनो हंस रसाल बानी अरस परस बिहार—पृ०
३४६ । (ग) जो जेहि बिधि तासो तैसेहि मिलि
अरस परस कुसलात—२६४१ ।

संज्ञा पुं [स. स्पर्श] आँखमिचौनी का खेल,
छुआछुई ।

अरसि परसि—क्रि. स. [सं. स्पर्शन] मिल-भेंटकर,
आलिंगन करके । उ०—काहू के मन कछु दुख नाही ।
अरसि परसि हँसि हँसि लपटाही ।

अरसाना—क्रि. अ. [स. अलस] अलसाना, निद्राग्रस्त
होना ।

अरसाय—क्रि. अ. [स. अलस, हिं. अरसाना,
अलसाना] अलसाकर, निद्राग्रस्त होकर । उ०—
मरगजे हार बिथुरै बार देखियत आइ गई एक याम
यामिनी । और सोभा सोहाई अंग अंग अरसाय
बोलति है कहा अलसामिनी—१५८१ ।

अरसी—संज्ञा पुं [सं. अतसी] अलसी, तीसी ।

अरसीला—वि. [स. अलस] आलस्ययुक्त ।

अरसौहो—वि. [स. आलस्य] आलस्ययुक्त ।

अरहना—संज्ञा स्त्री. [स. अर्हण] पूजा ।

अराज—वि [सं. अ+राजन्] बिना राजा का । उ.—
जग अराज ह्वै गयौ, रिषिनि तब अति दुख पायौ ।
लै पृथ्वी कौ दान, ताहि फिरि बनहिं पठायौ—
६-१४ ।

अराधन—संज्ञा पुं [स. आराधन] पूजा, उपासना ।

अराधना—क्रि. स. [सं. आराधन] (१) उपासना
करना । (२) पूजा करना । (३) ध्यान करना ।

अराधा—संज्ञा स्त्री. [हिं. आराधना] सेवा, पूजा,
उपासना । उ.—जेहि रस सिव सनकादि मगन भए
सभु रहत दिन साधा । सो रस दिए सूर प्रभु तोको
सिवा न लहति अराधा—१२३४ ।

अराध्यौ—क्रि. स. [हिं. आराधना] उपासना की ।
उ.—हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ—३०१४ ।

अराअरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. अड़ना] अड़ाअड़ी, होड़,
स्पर्धा ।

अरिंद—संज्ञा पुं. [सं. अरि+इंद्र] शत्रु ।

अरिंदम—वि. [सं.] (१) शत्रु का दमन करनेवाला ।
(२) विजयी ।

अरि—संज्ञा पुं. [सं.] शत्रु, बैरी ।

क्रि. अ. [हिं. अड़ना] अड़कर, हठ करके ! उ.—
को कर-कमल मथानी धरिहै को माखन अरि खँहै—
२५१२ ।

अरिकेसी—संज्ञा पुं. [सं. अरि + केशी] केशी दैत्य
का शत्रु, कृष्ण ।

अरियाना—क्रि. स. [सं. अरे] 'अरे' कहकर बुलाना,
तिरस्कार करना ।

अरिष्ट—संज्ञा पुं. [सं.] एक राक्षस का नाम जिसे
श्रीकृष्ण ने मारा था । उ.—अघ-अरिष्ट, केसी,
काली मथि, दावानलहिं पियौ—१-१२१ ।

वि. [सं.] (१) दृढ़, अविनाशी । (२) शुभ ।
(३) बुरा, अशुभ ।

अरी—अव्य. [स. अयि] संबोधनार्थक अव्यय जिसका
प्रयोग प्रायः स्त्रियों के लिए ही होता है । उ.—अरी
अरी सुंदर नारि सुहागिनि, लागौ तेरँ पाउँ—
६-४४ ।

क्रि. अ. स्त्री. [हिं. अड़ना] अड़ गयी, फँसी,

उलझी । उ.—खेवनहार न खेवत मेरै, अब मो
नाव अरी—१-१८४ ।

अरुधति—संज्ञा स्त्री. [सं. अरुधती] वशिष्ठ मुनि की
स्त्री । उ.—रमा, उमा अरु सची अरुधति निसि
दिन देखन आवै—पृ. ३४५ ।

अरु—सयो. [हि. और] शब्दों या वाक्यों को जोड़ने
वाला संयोजक शब्द । उ.—बिद्रुम अरु बंधूक बिब
मिलि देत कबिन छवि दान—सा. उ.-१५ ।

अरुचि—संज्ञा स्त्री. [स.] रुचि का न रहना, अनिच्छा ।

अरुभत—क्रि. अ. [हि. अरुभना] उलझने हैं, फँसते
हैं । उ.—इक परत उठत अनेक अरुभत मोह अति
मनसा मही—१० उ.-२४ ।

अरुभति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. अरुभना] लड़ती-
झगड़ती है । उ.—रुहौ तुमहि हमको कहा बूझति ।
लै लै नाम सुनावहु तुमही मोसो काहे अरुभति—
११०६ ।

अरुभाइ—क्रि. स. [हि. अरुभाना] उलझाकर, फँसा
कर । उ.—(क) बाबा नद, भखत किहिं कारन,
यह कहि मयामोह अरुभाइ । सूरदास प्रभु मातु-पिता
को, तुरतहिं दुख डारघो बिसराइ—५३१ । (ख)
नागरि मन गई अरुभाइ । अति विरह तन भई
आकुल, घर न नैकु समाइ—६७८ ।

अरुभाई—क्रि. स. [हि. अरुभना] उलझाकर,
फँसाकर ।

यौ.—रहे अरुभाई-उलझा रहे हैं, फँसा रहे हैं ।

उ.—कहत सखा हरि सुनत नही सो, प्यारी सों रहे
चित अरुभाई—७१७ ।

अरुभाए—क्रि. स. [हि. अरुभना, अरुभाना] (१)
उलझा दिये, फँसा दिये । उ.—भक्त बछल बानो है
मेरो, बिरुदहिं कहा लजाऊँ । यह कहि मया-मोह
अरुभाए सिसु ह्वै रोवन लागे—१०-४ । (२)
जटका दिये, टाँग दिये । उ.—लीन्हे छीनि बसन
सबही के सबही लै कुजनि अरुभाए—१०९३ ।

अरुभाने—क्रि. स. [हि. अरुभना] उलझा दिया ।
फँसा दिया । उ.—मन हरि लीन्हो कुँवरि कन्हाई
..... । कुटिल अलक भीतर अरुभाने अब
निरवारि न जाई—१४७७ ।

अरुभानो—क्रि. अ. [हि. अरुभना] उलझ गया, फँस
गया । उ.—मेरो मन हरि चितवनि अरुभानो—
१२०६ ।

अरुभावत—क्रि. स. [हि. अरुभाना] उलझाते हो,
फँसाते हो, रोकते हो । उ.—सूरस्याम माखन
दधि लीजै जुवतिन कत अरुभावत—११०४ ।

अरुभाहीं—क्रि. अ. [हि. अरुभना] उलझते हैं,
झगड़ते हैं । उ.—जाइ न मिलो सूर के प्रभु को
अरुभेन सो अरुभाही—पृ० २३८ ।

अरुभि—क्रि. अ. [हि. अरुभना] उलझ गया, फँसा,
यौ.—अरुभि परयो (रह्या) उलझ गया, फँस
गया । उ०—(क) ग्वाल-बाल सब संग लगाए,
खेलत मै करि भाव चलत । अरुभि परचौ मेरो मन
तब तै, कर भटकत चक-डोरि हलत—६७१ (ख)
क्यौ सुरभाऊँ री नंदलाल सौं अरुभि रह्यो मन
मेरो—४१७० ।

अरुभी—क्रि. अ. [हि. अरुभना] (१) उलझ गयी,
फँस गयी । उ.—खसि मुद्रावलि चरन अरुभी । गिरी
घरनि बलही—३४५१ । (२) लिपटी है, उलझी
है । उ.—रसना जुगल रसनिधि बोलि । कनक-
बेलि तमाल अरुभी सुभुज बंध अखोलि—सा०
उ.—५ ।

अरुभे—क्रि. अ. बहु० [हि. अरुभना] उलझ गये,
फँसे । उ.—(क) प्रगटी प्रीति न रही छपाई ।
परी इष्टि बृषभानु-सुता की, दोउ अरुभे, निरवारि
न जाई—७२० । (ख) मन तो गयी नैन है
मेरे । क्रम क्रम गए, कह्यौ नहि काहू स्याम
सग अरुभे रे—पृ० ३२० । (ग) चंचल द्रग
अंचल-पट-दुति छवि भलकत चहुँ दिसि भालरी ।
मनु सेवाल कमल पर अरुभे भँवत भ्रमर भ्रम
चाल री—१०-१४० ।

अरुभ्यौ—क्रि. अ. [हि. अरुभना (उलभना,)
उलझा, फँसा, अटका । उ.—दधि-सुत जामे नंद-
दुबार । निरखि नैन अरुभ्यौ मनमोहन, रटत देहु
कर बारंबार—१०-१७३ ।

अरुन—वि. पु [सं. अरुण] जाल । उ०—नील खुर
अरु अरुन लोचन, सेख सींग सुहाइ—१-५६ ।

मज्ञा पु.—सूर्य । उ.—उगत अरुन विगत सर्वरी,
ससांक किरनहीन, दीपक सु-मलीन, छीन दुति समूह
तारे—१०-२०५ ।

अरुनता—मज्ञा स्त्री. [सं. अरुणता] (१) ललाई,
लालिमा, लाली । उ.—(क) नान्ही एड़ियनि अरुनता,
फल-बिब न पूजै—१३४ । (ख)—सूर स्याम छबि
अरुनता (हो) निरखि हरष ब्रज-बाल—१०-४२ ।
अरुनाई—सं. स्त्री. [हि. अरुणाई] लालिमा, रक्ता,
लाली । उ.—लछिमन, रचौ हुतासन भाई ।
आसन एक हुतासन बैठी, ज्यो कुदन-अरुनाई—
६-१६२ ।

अरुनाए—क्रि. अ. [मं. अरुण,] लाल रंगे हुये ।
उ.—नीलाबर, पाटबर, सारी, सेत, पीत, चूनरी,
अरुनाए—७८४ ।

अरुनानी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. अरुनाना] लाल
हो गयी । उ.—बोले तमचुर चारो याम को गजर
मारघौ पौन भयौ सीतल तमतमता गई । प्राची
अरुनानी धानि किरिन उज्यारी नभ छाई उडगन
चंद्रमा मलिनता लई—१६१० ।

अरुनित—वि. [सं. अरुणित] लाल रंग का, लाल
किया हुआ ।

अरुनिमा—मज्ञा स्त्री. [सं. अरुणिमा] लाली, लालिमा ।
अरुनाना—क्रि. अ. [सं. अरुण] लाल होना ।

क्रि. स.—लाल करना ।

अरुनारा—वि. [सं. अरुण+आरा (प्रत्य.)] लाल,
लाल रंग का ।

अरुनोदय—मज्ञा पुं. [सं. अरुण+उदय] सूर्योदय,
उषाकाल ।

अरुनाना—क्रि० स० [हि० अरुनाना] (१) मरोड़ना ।
(२) सिकोड़ना ।

अरुलना—क्रि० अ० [सं० अरुस्=वाव] झिलना,
चुभना ।

अरूप—वि० [सं०] रूप या आकार से रहित ।

अरुनना—क्रि० अ० [सं० अरुस्=वाव] दुखित होना ।

अरे—अव्य० [सं०] सम्बोधनार्थक अव्यय ; रे, ऐ, ओ ।
उ०—(क) सुनि अरे अंध दसकध, लै सीय मिलि,
सेतु करि बंध रघुबीर आयौ—६-१२८ ।

क्रि० अ० [म० अल=वास्ता करना, हि० अड़ना]
(१) रुक गये, ठहरे । (२) अड़ गये, हठ करने लगे,
ठान लिया । उ०—(क) कलबल कै हरि आइ परे ।
नव रंग बिमल नबीन जलधि पर, मानहुँ द्वै ससि
आनि अरे—१०-१४१ । (ख) पठवति हौं मव
तिनहि मनावन निसि दिन रहत अरे री—१४४२ ।
(ग) को जानै काहे ते सजनी हम सो रहत अरे—
१८४१ । (घ) लंपट लवनि अटक नहि मानत चंचल
चपल अरे रे—पृ० ३२५ । (३) उमड़ कर आये ।
उ०—(क) को करि लेइ सहाइ हमारौ प्रलय काल
के मेघ अरे—६५३ । (ख) बादर ब्रज पर आनि
अरे—६६८ ।

अरेरना—क्रि० स० [हि.] रगड़ना ।

अरै—क्रि० अ० [सं० अल=वास्ता करना, हि० अड़ना]
(१) हठ करता है, टेक पकड़ता है । उ०—जब दधि
मथनी टेकि अरै । आरि करत मटुकी गहि मोहन,
वासुकि संभु डरै—१४२ । (२) भिड़ता है, खड़ता
है, रगड़ता है । उ०—कह्यौ न काहु को करै
बहुरि अरै एक ही पाइ दै इक पग पकरि पछारघौ
—१० उ०-५२ ।

मज्ञा पुं० [सं० हट=जिद] हठ, टेक, जिद । उ०—
जा कारन ते सुनि सुत सुन्दर, कीन्ही इती अरै । सोइ
सुधाकर देखि कन्हैया, भाजन माँहि परै—१०-१६५ ।

अरो—क्रि० अ० [हि० अड़ना] अड़ गया, हठ किया,
ठान लिया । उ०—क्यौ मारौ दोउ नन्द ठोटौना ऐसी
अरनि अरो—२४६१ ।

अरोगना—क्रि० अ० [हि० आरोगना] खाना ।

अरोगै—क्रि. अ. [सं. आ+रोगना (रुज=हिंसा), हि
अरोगना] खाते हैं, भोजन करते हैं । उ०—नन्द-
भवन में कान्हू अरोगै । जसुदा ल्यावै षटरस भोगै—
३६६ ।

अरोच—मज्ञा पुं० [सं. अरुचि] रुचि का अभाव,
अनिच्छा ।

अरोहना—क्रि० अ० [आरोहण] चढ़ना, सवार होना ।

अरौ—क्रि० अ० [हि० अड़ना] रुकते हो, ठहरते हो,
अड़ते हो । उ०—हित की कहत कुहित की लागत
इहाँ बेकाज अरौ—३०६६ ।

अर्क—सज्ञा पु० [सा०] सूर्य । उ०—बेदन अर्क
बिभूषित सोभा बेदी रिच्छ बखानो—सा० १०३ ।

अर्गजा—सज्ञा पु० [हि० अरगजा] एक सुगन्धित लेप ।

अर्व—सज्ञा पु० [सा.] (१) षोडशोपचार में से एक, जल
दूध आदि मिलाकर देवता पर चढ़ाना (२) जलदान ।
(३) भेंट ।

अर्चन—सज्ञा पु० [सा०] (१) पूजा । (२) आदर,
सत्कार ।

अर्चमान—वि० [सा०] पूजा करने के योग्य, पूजनीय ।

अर्चित—वि० [सा०] पूजित ।

अर्जन—सज्ञा पु० [स.] (१) पैदा करना, उपार्जन ।
(२) संग्रह, संग्रह करना ।

अर्जुन—सज्ञा पु० [स.] (१) मझले पांडव का नाम ।
ये परम वीर और धनुर्विद्या में निपुण थे । श्रीकृष्ण से
इनकी बड़ी मित्रता थी । (२) एक वृक्ष । (३) दो
वृक्ष जो गोकुल में थे । नारद ऋषि के शाप से कुबेर
के दो पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव इन पेड़ों के रूख
में जन्मे थे । श्रीकृष्ण ने इनका उद्धार किया था ।
उ०—जमल अर्जुन तोरि तारे, हृदय प्रेम बढाई—
४६८ । (४) सहस्रार्जुन । (५) सफेद कनैल । (६)
मोर ।

अर्थ—सज्ञा पुं० [स.] (१) शब्द का अभिप्राय, भाव,
संकेत । उ०—एकन कर है अगर कुमकुमा एकन कर
केसर लै घोरी । एक अर्थ सो भाव दिखावति नाचति
तरुनि बाल वृद्धि भोरी—२४३६ । (२) अभि-
प्राय, प्रयोजन । (३) हेतु, निमित्त । (४) इंद्रियों के
पाँच विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध । (५)
चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) में से एक, धन
संपत्ति । उ०—कहा कमी जाके राम धनी । . . ।
अर्थ, धर्म अरु काम मोक्ष फल चारि पदार्थ देत
गनी—१-३६ ।

अर्थपति—सज्ञा पु० [सं.] (१) प्रयोजन का कारण या
स्वामी, श्रीकृष्ण । उ०—हम तो बँधी स्याम गुन
सुंदर छोरनहार न कोई । जो ब्रज तजो अर्थपति
सूरज सब सुखदायक जोई—सा. १०५ । (२)
अर्थपति नामक अलंकार । इसमें एक बात के कहने
से दूसरी की सिद्धि आप से आप हो जाती है । उक्त

उदाहरण का आशय है—ब्रज में ऐसा कोई नहीं है
जो अपने अर्थपति कृष्ण को छोड़ दे जो सब सुखों के
दाता है । इससे सिद्ध हो गया कि बिना कृष्ण के
सुख नहीं मिल सकता ।

अर्थना—क्रि. स. [स.] माँगना ।

अर्थाना—क्रि. स. [सं. अर्थ+आना (प्रत्य.)] अर्थ
समझाकर कहना ।

अर्थी—वि. [स. अर्थिन] (१) चाह रखनेवाला । (२)
याचक ।

अर्दना—क्रि. स. [सं. अर्दन=रीडन] पीड़ित करना ।

अर्धांगिनी—सज्ञा स्त्री. [स. अर्द्धांगिनी] पत्नी, भार्या ।
उ०—कहाँ स्याम की तुम अर्धांगिनी मैं तुम सर की
नाही—२६३७ ।

अर्धगी—सज्ञा स्त्री. [सं. अर्द्धांगिनी] पत्नी, भार्या ।
उ०—ऐसी प्रीति की बलि जाउँ । सिंहासन तजि चले
मिलन को सुनत सुदामा नाउँ । अर्धगी
बूझत मोहन को कैसे हित तुम्हारे—१० उ०—६२ ।

अर्द्धांग—सज्ञा पु० [सं.] आधा अंग । (२) शिव ।

अर्द्ध—वि. [सं.] दो समभागों में से एक, आधा ।

अर्ध—वि. [सं. अर्द्ध] आधा । उ०—अर्ध निसा तिनको
लै गयी—१-२८४ ।

अर्धांगिनी—सज्ञा स्त्री. [सं. अर्द्धांगिनी] पत्नी भार्या ।
उ०—ऊधो यह राधा सो कहियौ । कहा
स्याम की तुम अर्धांगिनी, मैं तुम सर की नाही—
२६३७ ।

अर्पत—क्रि. स. [स. अर्पण, हि. अर्पना] अर्पण करता
है, भेंट देता है । उ०—गँडे नहिँ भोग लगावन पावे ।
करि करि पाक जबै अर्पत है, तबही तब छवै आवै—
१०-२४६ ।

अर्पन—सज्ञा पु० [सं. अर्पण] अर्पण करने की क्रिया,
देना । उ०—सिव-संकर हमको फल दीन्हौ । पुहुप,
पान, नाना फल, मेवा, षटरस अर्पन कीन्हौ—७६८ ।

अर्पना—क्रि. स. [स. अर्पण] अर्पण करना, देना ।

अर्पि—क्रि. स. [स. अर्पण, हि. अर्पना, अरपना] अर्पण
करके, भेंट देकर । उ०—अगनिक तरु फल सुगंध-
मृदुल-मिष्ट-खाटे । मनसा करि प्रभुहिँ अर्पि, भोजन
करि डाटे—६-६६ ।

अर्पे—क्रि. स. [सं. अर्पण, हि. अरपना] अर्पण करने पर, भोग लगाने पर, भेंट देते हैं । उ.—बदत बेद-उपनिषद छहौं रस अर्पे भुक्ता नाहिं । गोपी-गवालनि के मडल में हँसि-हँसि जूठनि खाहि—४८७ ।

अर्यौ—क्रि. अ. भूत. [स. अल=वारण करना, हि. अडना] (१) अड़ गया, ठान लिया । उ.—जैमै गज लखि फटिकसिला में, दसननि जाइ अर्यौ—२-२६ । (२) टिकाकर, अड़ाकर, जमाकर । उ.—लपकि लीन्हो धाइ दबकि उर रहे दोउ अम भयौ जगहि कहाँ गए वैधौ । अर्यौ दै दसन धरनी कढे बीर दोउ कहत अबही याहि मारै कैधौ—२५६२ ।

अलंबन—संज्ञा पु. [स. अवलंबन] आश्रय, सहारा, अवलंब । उ.—अब लगि अवधि अलंबन करि करि राख्यो मनहिं सवाहि । सूरदास या निर्गुन सिंधुहिं कौन सकै अवगाहि—३१४५ ।

अलंकार—संज्ञा पु. [सं.] (१) आभूषण, गहना । (२) शब्द और अर्थ में विशेषता लाने की युक्ति ।

अलंकृत, अलंकृत—वि [स] (१) विभूषित, आभूषणों से युक्त । उ.—(क) भूषन बार सुधार तासु रग अँग अगन दीपत हैहै । यह विधि सिद्ध अलंकृत सूरज सब विधि सोभा छैहै—सा० ६७ । (ख) सूर स्याम के हेत अलंकृत कीनो अमल सुमिल हितकारी—सा० ६८ । (२) सजाया हुआ, सुन्दर । उ०—यो प्रतपेद अलंकृत जबहू सुमुखी सरस सुनायौ । सूर कहो मुसुकाय प्रानप्रिय मो मन एक गनायौ—सा. ६५ । (३) काव्यालंकार से युक्त । उ.—करत बिग ते बिग दूसरी जुक्त अलंकृत माही—सा० ८७ ।

अल—संज्ञा पु. [स.] (१) बिच्छू का डंक । (२) विष, जहर । उ.—अति बल करि-करि काली हार्यौ । लपटि गयो सब अग-अग प्रति, निर्विष कियौ सकल अल (बल) भार्यौ—५७४ ।

अलक—संज्ञा पु. [सं.] इधर-उधर लटकते हुए झल्लेदार बाल ।

अलक लड़ैता—वि. [हि. अलक=बाल, लाड=दुलार (लड़ता=दुलारा)] दुलारा, लाडला ।

अलकलड़ैतौ—वि. [हि. अलकलड़ैता] लाडला, दुलारा । उ.—सूर पथिक सुन, मोहि रैन दिन

बढ्यौ रहत उर सोच । मेरो अलकलड़ैतौ मोहन ह्वै करत सँकोच—२७०७ ।

अलकसलोरा—वि. पु. [सं. अलक=बाल+हि. सलोना=अच्छा] लाडला, दुलारा ।

अलकसलोरी—वि. स्त्री. [हि. पु. अलकसलोरा] लाडली, दुलारी । उ.—हम तेरे नित ही प्रति आवै सुनहु राधिका गोरी हो । ऐसो आदर कबहुँ न कीन्हो मेरी अलकसलोरी हो—पृ० ३१६ ।

अलकावलि—संज्ञा स्त्री. [स.] केश, बालों की लटें ।

अलकै—संज्ञा पु. बहु० [स. अलक] मस्तक के इधर-उधर लटकते हुए घुँघराले बाल । उ.—बिथुरि अलकै रही मुख पर बिनहि बपन सुहाइ—१०-२२५ ।

अलख—वि. [सं. अलक्ष्य] (१) ईश्वर का एक विशेषण । उ.—(क) अलख-अनत-अपरिमित महिमा, कटितट कसे तूनीर—६-२६ । (ख) ब्रह्मभाव करि मैं सब देखो । अलख निरजन ही को लेखो—३३०८ । (२) अगोचर, इंद्रियातीत । उ.—(क) जोपै अलख रह्यो चाहत तौ बादि भए ब्रजनायक—३३६३ । (ख) पूरन ब्रह्म अलख अविनासी ताके तुम हो ज्ञाता—२६१६ । (३) अदृश्य, अप्रत्यक्ष ।

अलखित—वि. [सं. अलक्षित] (१) अप्रकट, अज्ञात । (२) अदृश्य । (३) अचिह्नित ।

अलगाइ—क्रि. अ. [हि. अलग, अलगाना] अलग हो गये, बिछुड़ गये । उ.—कह्यौ मयत्रेय सो समुझाइ, यह तुम बिदुरहिं कहियौ जाइ । बदरिकासरम दोउ मिलि आई । तीरथ करत दोउ अलगाइ—३-४ ।

अलगाना—क्रि. स. [हि. अलग+आना (प्रत्य.)] (१) छुँटना, बिलगाना । (२) दूर करना ।

अलच्छ—वि. [स. अलक्ष्य] (१) जो देख न पड़े । (२) जिसका लक्षण न कहा जा सके ।

अलज—वि. [स. अ=नही+लज्जा] निर्लज्ज, बेहया ।

अलप—वि. [स. अल्प] थोड़ा, कम, न्यून, छोटे । उ.—(क) अँग फरकाइ अलप मुसुकाने—१०-४६ । (ख) सोभित सुकपोल-अधर, अलप-अलप दसना—१०-६० । (ग) चपल द्रग, पल भरे अँसुवा, कछक

ढरि ढरि जात । अलप जल पर सीप द्वै लखि मीन
मनु अकुलात—३६० ।

अलबेला—वि. पु. [सं. अलभ्य+हि. ला (प्रत्य.)]
(१) बाँका, बना-ठना । (२) अनूठा, सुंदर । (३)
मनमौजी ।

अलबेली—वि. स्त्री. [हि. अलबेला (पु.)] (१)
बनी-ठनी । (२) अनोखी, सुंदर । उ.—आजु
राधिका रूप अन्हायौ । देखत बने कहत नहि आवै
मुखछवि उपमा अंत न पायौ । अलबेली अलक
तिलक केसरि कौ ता बिच सेदुर बिन्दु बनायौ—
९०६३ । (३) अरुहड़, मनमौजी उ.—इहाँ ग्वाल
बनि बनि जुरी सब सखी सहेली । सिरनि लिए दधि-
दूध सबै यौवन अलबेली—१००७ ।

अलस—वि. [सं.] आलस्ययुक्त, अलसाया हुआ ।
उ.—(क) कन्हैया हालरौ हलरोइ । हौ वारी
तव इंदु-बदन पर, अति छवि अलस भरोइ—१०-
५६ । (ख) कुंजभवन तै आजु राधिका अलस,
अकेली आवत—सा० १३ ।

अलसाई—क्रि. अ. [हि. अलसाना] अलसा जाती है,
क्लांत होती है, शिथिलता का अनुभव करती है ।
उ.—काया हरि के काम न आई । भाव-भक्ति जहँ
हरि-जस सुनियत, तहाँ जात अलसाई—१-२६५ ।

अलसात—क्रि. अ. [सं. अलस, हि. अलसाना]
आलस्य दिखाना, उदासीनता दिखाना । उ०—अब
मोसो अलसात जात हौ अधम-उधारनहारे—१२५ ।

अलसान—सज्ञा-स्त्री. [सं. आलस्य] आलस ।

अलसाना—क्रि. अ. [सं. अलस] आलस्य या शिथिलता
का अनुभव करना ।

अलसाने—क्रि. अ. बहु. [सं. अलस, हि. अलसाना]
थक गये, क्रांत हुए, शिथिल हो गये । उ.—बल मोहन
दोऊ अलसाने—१०-२३० ।

अलसामिनी—सज्ञा स्त्री. [हि. अलसाना] वह युवती
जो अलसायी हुई या निद्रामग्न हो । उ०—नरगजे
हार बिथुरि बार देखियत आइ गई, एक याम
यामिनी । औरै सोभा सोहाई अंग अंग अरसाय
बोलति है कहा अलसामिनी—१५५१ ।

अलिबाहन को प्रियतम बाला ता बाहन रिपु—सज्ञा

पु. [सं. अलिबाहन (कमल)+प्रियतम (कमल
का प्रियतम=समुद्र)+बाला (समुद्र की बाला=
समुद्र की स्त्री=गंगा)+बाहन (गंगा का बाहन
करनेवाला=शिव)+रिपु (शिव का रिपु=काम)]
कामदेव, काम ।

अलिसुत—सज्ञा-पु. [सं.] भौंरा । उ.—अलिसुतप्रीति
करी जलसुत सौ सपुट माँक गह्यौ—२८०६ ।

अलसेट—सज्ञा पुं. [सं. आलस] (१) ढील-ढाल,
व्यर्थ की देर । (२) बाधा, अड़चन । (३) टाल-
मटोल ।

अलसौ हैं—वि. पुं. [सं. अलस+ग्रोहाँ (प्रत्य.)]
आलस्ययुक्त, क्लांत, शिथिल ।

अलिसौ हैं—वि. [सं. अलस+ग्रोहाँ (प्रत्य.)] क्लांत,
आलस्ययुक्त, शिथिल । उ.—जावक भाल नागरस
लोचन मसिरेखा अधरनि जो ठए । बलि या पीठि
बचन अलिसौ हैं बिन गुन कंदक हार बनए—
२०६१ ।

अलाप—सज्ञा पु. [सं. आलाप] (१) बातचीत ।
(२) स्वर-साधन, तान ।

अलापना—क्रि. अ. [हिं. अलापना] (१) बातचीत
करना । (२) तान लगाना, सुर खींचना । (३)
गाना ।

अलापति—क्रि. स. स्त्री. [हि. अलापना] (१) गाती
है । उ.—गावत स्याम स्यामा रग । सुधरगतिनागरि
अलापति सुर धारति पिय संग—पृ. ३५१ (७६) ।
(२) सुर खींचती है, तान लगाती है ।

अलापि—क्रि. अ. [हि. अलापना] सुर खींचकर, ताल
लगाकर उ.—नटवर बेप धरे ब्रज आवत । अधर
अनूप मुरलि सुर पूरत गौरी राग अलापि बजावत—
२३४६ ।

अलापी—वि. [सं. आलापी] (१) बोलनेवाला ।
(२) गानेवाला ।

अलाभ—सज्ञा. स्त्री. [सं.] लाभ का उलटा, हानि ।
उ.—दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहि
मरत हौ रोइ—१-२६२ ।

अलायक—सज्ञा. पु. [सं. अ=नहीं+प्र., लायक]
अयोग्य ।

अलार—सज्ञा पु. [सं. अलात] अलाव, अँवाँ, भट्ठी ।
अलाल—सज्ञा पु. [स. अलात=अंगार] घास-फूस से
जलायी हुई आग जिसको गाँव के लोग तापते हैं,
कौड़ा ।

अलिगन—संज्ञा पु. [सं. आलिगन] हृदय से लगाने की
क्रिया, परिरंभण । उ.—(क) करि अलिगन गोपिका,
पहिरै अभूषन-चीर—१०-२६ । (ख) सूर लरचौ
गापाल अलिगन सकल किए कचन घट—८६० ।

अलिद—सज्ञा पु. [स. अलीद्र] भौंरा ।

अलि—सज्ञा पु. [सं.] भौंरा, अमर ।

सज्ञा स्त्री.—श्यामता । उ.—छिति पर कमल
कमल पर कदली पंकज कियौ प्रकास । तापर अलि
सारंग प्रति सारंग रिपु लै कीनो बास—सा. उ.
२८ ।

संज्ञा स्त्री [म. आली, हि. अली] सखी,
सहचरी । उ.—हौ अलि केतने जतन बिचारौ । वो
मूरत वाके उर अतर बसी कौन बिधि टारौ—
सा. ६७ ।

अलिप्त—वि [स.] (१) जो जिस न हो, जो कोई
संबंध न रखे, बेजोस, निर्लिप्त । उ.—जीवन-मुक्त
रह्ये या भाइ । ज्यौ जल-कमल अलिप्त रहाइ—
३-१३ । (२) राग-द्वेष से मुक्त, अनासक्त । उ.—
देहभिमानी जीवहिँ जानै । ज्ञानी तन अलिप्त करि
मानै—५-४ ।

अलिवाहन—सज्ञा पु. [सं. अलि=भौंरा+वाहन=सवारी]
कमल ।

अली—संज्ञा स्त्री. [स. आली] (१) सखी, सहचरी,
सहेली । उ.—(क) गुन गावत मगलगीत, मिलि दस-
पाँच अली—१०-२४ । (ख) का सतरात अली
बतरावत उतन नाच नचावै—सा. ८४ । (ग) बन
ते आजु नदकिसार । अली आवत करत मुरली की
महाधुनि घोर—सा. ३६ । (२) श्रेणी, पंक्ति ।

संज्ञा पु. [स. अलि] भौंरा ।

अलीक—सज्ञा पु. [स. अ=नहीं+हि. लीक] अप्रतिष्ठा ।
वि.—अप्रतिष्ठित ।

वि. [स.] मिथ्या, झूठा ।

अलीगन—सज्ञा पु. [सं. अलि=भौंरा+गण (भौंरो

का समूह । भौंरे काले होते हैं, इसलिए प्रलीगन
से अर्थ लिया गया कालिमा=श्यामता=काजल)]
अंजन, काजल । उ.—चारि कीर पर पारस बिद्रुम
आजु अलीगन खात—सा. ६ ।

अलीन—वि. [स. अ=नहीं+लीन=रत] (१) अग्राह्य,
अनुपयुक्त । (२) अनुचित ।

अलीह—वि. [स. अलीक] मिथ्या, असत्य ।

अलुभना—क्रि. प्र. [स. अवर्धन, प्रा. आरुज्जन, हि.
उलभना] (१) फँसना, अटकना । (२) लिपट
जाना । (३) लीन होना । (४) लड़ना, झगड़ना ।

अलुटना—क्रि. प्र. [सं. लुट=नाटना=लडखडाना]
लडखडाना, गिर पडना ।

अलूप—वि. [स. लुप्त=अभाव] लुप्त, अदृश्य ।

अलूला—संज्ञा पु. [हि. बुलबुला, बलूता] भभूका,
लपट, उद्गार ।

अलेख—वि. [स.] (१) दुर्बोध, अशेष । (२)
अनगिनती, बहुत अधिक ।

वि. [स. अलक्ष्य] अदृश्य ।

अलेखनि—वि [स. अलख] (१) अनगिनती, बहुत
अधिक । (२) व्यर्थ, निष्फल ।

अलेखा—वि [स. अलेख] (१) जो गिना न जा सके ।
(२) व्यर्थ, निष्फल ।

अलेखी—वि. [स. अलेख] अवेर करनेवाला, अन्यायी ।

अलेखे—वि. [स. अलेख, हि. अलेखा] (१) अनगिनती,
बेहिसाब । उ.—पिवत धूम उपहास जहाँ तहँ अपयस
सवन अलेखे—३०१४ । (२) व्यर्थ, निष्फल ।

उ.—सूरदास यह मति आए बिन, सब दिन गए
अलेख । कहा जानै दिनकर की महिमा, अध नैन
बिन देखे ।—२-२५ । (३) असत्य, बेसमझे-बूझे ।

उ.—कहा करति तुम बात अलेखे । मोसो कहति
स्याम तुम देखे तुम नीके करि देखे—१३११ ।

अलेखे—वि. [सं. अलेख] व्यर्थ, निष्फल । उ.—अरु जो
जतन करहुग हमको ते सब हमहि अलेखे । सूर सुयन
सा तव सुख माने कमलनैन मुख देखे—३३६३ ।

अलोक—वि [स.] (१) जो देखने में न आवे, अदृश्य ।
(२) जहाँ कोई न हो, निर्जन ।

सज्ञा पु.—अनदेखी बात, मिथ्या दोष, कलंक ।

अलोकना—क्रि. स. [सं. आलोकन] देखना, ताकना ।
अलोना—वि. [सं. अलवण] (१) जिसमें नमक न हो । (२) स्वादरहित, फीका ।

अलोल—वि. [स. अ=नहीं+लाल=वंचल] जो चल न हो, स्थिर ।

अलोलिक—संज्ञा पु. [स. अलोल] स्थिरता, धीरता ।
अलौकिक—वि. [सं.] (१) इस लोक से परे, लोकोत्तर । (२) असाधारण, अद्भुत ।

अल्प—वि. [सं.] (१) थोड़ा, कम, न्यून । (२) छोटा ।

संज्ञा पु.—एक अलंकार जिसमें आधेय की तुलना में आधार की अल्पता का वर्णन हो । उ.—नैन सारंग सैन मोतन करी जानि अधीर । आठ रवि ते देख तब ते परत नाहि गम्हीर । अल्प सूर सुजान का सो कहो मन की पीर—सा. ४४ । [यहाँ नेत्रों को अपेक्षा रास्ते की अल्पता का वर्णन होने से 'अल्प' अलंकार है ।]

अल्लाना—क्रि. अ. [सं. अल्=बोलना] जोर से बोलना, चिल्लाना ।

अवकलना—क्रि. स. [सं. अवकलन=ज्ञात+होना] समझ पड़ना, विचार में आना ।

अवगतना—क्रि. स. [सं. अवगत+हिं. ना (प्रत्य.)] सोचना, समझना, विचारना ।

अवगनना—क्रि. अ. [सं. अवगणन] (१) निंदा करना, अपमान करना । (२) नीचा दिखाना, पराजित करना । (३) गिनना ।

अवगारना—क्रि. स. [सं. अव+गृ] समझाना-बुझाना, जताना ।

अवगारे—क्रि. स. [स. अव+गृ, हिं. अवगारना] समझावे-बुझावे, जतावे । उ.—कहा कहत रे मधु मतवारे । । हम जान्यो यह स्याम सखा है यह तो औरे न्यारे । सूर कहा याके मुख लागत कौन याहि अवगारे—३२६८ ।

अवगाह—वि. [सं. अवगाध] अथाह, बहुत गहरा, अत्यंत गंभीर । उ.—(क) उर-कलिद तै धँसि जल-धारा उरर-धरनि परबाह । जाहि चली धारा है अध कौ, नाभी-हृद अवगाह—६३७ । (ख ,

बिहरत मानसरस कुमारि । कैसेहुँ निकसत नही, हो रही करि मनुहारि । मौन पारि अपार रचि अवगाह अंस जु वारि—२०२८ । (२) अनहोनी, कठिन ।

संज्ञा पु.—(१) गहरा स्थान । (२) कठिनाई ।

संज्ञा पु.—जल में प्रवेश करके स्नान करना ।

अवगाहत—क्रि. अ. [स. अवगाहन, हिं. अवगाहना] खोजते हैं, ढूँढ़ते हैं, छानबीन करते हैं । उ०—कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौ, कर सो पकरन चाहत । किलकि हँसत राजत द्वै दँतियाँ, पुनि पुनि तिहिँ अवगाहत—१०-११० । (२) सोचते-विचारते हैं, समझते हैं । उ०—(क) नागरि नागर पथ निहारै । । अग सिंगार स्याम हित कीने बृथा होन यइ चाहत । सूर स्याम आवहिँ की नाही मन मन यह अवगाहत—१५६८ । (ख) कहा होन अबही यह चाहत । जहँ तहँ लोग इहै अवगाहत—१०४६ । (३) धारण करते हैं, ग्रहण करते हैं, अपनाते हैं, स्थापित करते हैं ।

अवगाहन—संज्ञा पु. [सं.] (१) निमज्जन । (२) मथन, मथना । (३) थहाना, खोज, छानबीन । (४) जीन होकर विचार करना ।

अवगाहना—क्रि. अ. [म. अवगाहन] (२) धँसना, मग्न होना । (२) निमज्जन करना ।

क्रि. अ.—(१) छानबीन करना । (२) मथना । (३) सोचना, विचारना (४) धारण करना, ग्रहण करना ।

अवगाहि—क्रि. स. [सं. अवगाहन, हिं. अवगाहना] (१) सोच-विचार कर, समझ-बूझ कर । उ.—जब मोहिँ अंगद कुसल पूछिहै, कहा कहौगो ताहि । या जीवन ते मरन भलौ है, मै देख्यो अवगाहि—६-७५ । (ख) यह देखत जननी मन ब्याकुल बालक मुख कहा आहि । नैन उधारि, बदन हरि मूँद्यौ, माता मन अवगाहि—१०-२५३ ।

अवगाहै—क्रि. अ. बहु. [स. अवगाहन, हिं. अवगाहना] सोचते-विचारते हैं । उ.—कोउ कहै दैहँ दाम, नृपति जेतौ धन चाहै । कोउ कहै जैए सरन, सबै मिलि बुधि अवगाहै—५८६ ।

अवगाहै—क्रि. स. [सं. अवगाहन, हिं. अवगाहना]

ग्रहण करता है, धारण करता या अगनाता है । उ.—

(क) तमोगुनी चाहै या भाइ । मम बैरी क्यौहूँ मरि जाइ । सुद्धा भवित मोहि कौ चाहै । मुक्तिहुँ कौ सो नहि अवगाहै—३-१३ । (ख) तमोगुनी रिपु मारिबौ चाहै । रजोगुनी धन कुटँबवगाहै—३-१३ ।

अवगाहौँ—क्रि. अ. [सं. अवगाहन, हिं. अवगाहना]
(१) निमज्जित होता हूँ, धँसता या पैठता हूँ, मग्न होता हूँ ।

क्रि. स. (१) थहाता या छानबीन करता हूँ ।
(२) मथता हूँ, हलचल करता हूँ । (३) ज्ञाता या हिलाता-डुलाता हूँ । (४) सोचता-विचरता हूँ ।
(५) धारण या ग्रहण करता हूँ ।

अवगुण—सज्ञा पु. [स. अवगुण] (१) दोष, दूषण ।
(२) अपराध, बुराई ।

अवग्रह—सज्ञा पु. [सं.] (१) रुकावट, अड़चन ।
(२) प्रकृति, स्वभाव ।

अवघट—वि. [स. अव+घट=घाट] अटपट, विकट, कठिन, दुर्घट । उ.—घाट-बाट अवघट जमुना तट बार्त कहत बनाय । कोऊ एसौ दान लेत हे कौने सिख पढाय—१०२६ ।

अवचट—सज्ञा पु. [सं. अव=नही+हि. चट=जल्दी ।
अथवा स. अव=थोडा+हिं. चित्त] अनजान, अचक्का ।

अवछंग—सज्ञा पु. [स. उत्संग, प्रा. उच्छंग, हिं. उछंग] गोद, क्रीड, कोरा । उ.—इक-इक रोम बिराट किए तन, कोटि-कोटि ब्रह्माड । सो लीन्हो अवछंग जसोदा, अपनै भरि भुजदंड—४८७ ।

अवज्ञा—सज्ञा पु. [स.] (१) अपमान, अनादर ।
(२) आज्ञा का उल्लंघन, अहंहेला । (३) अपमान, अनादर, तिरस्कार । उ.—जोपै हृदय माँक हरी । तो पै इती अवज्ञा उनपै कैसे सही परी—३२०० ।

अवटना—क्रि. स. [सं. आवर्त्तन, प्रा. आवटन]
(१) मथना । (२) औटाना ।

अवटि—क्रि. स. [हिं. अवटना] औटाकर, आँच पर गरमाने से गाढ़ा करके ।

अवडेर—सज्ञा पु. [हि. अव=रार या राड] झंझट, बखेड़ा ।

अवडेरना—क्रि. स. [हि. अवडेर+ना (प्रत्य.)]
चक्कर में डालना, फँसाना ।

अवडेर—वि. [हि. अवडेर] (१) घुमाव-फिरावदार, चक्करदार । (२) बेढव ।

अवडर—वि. [स. अव+हि. ढार या ढाल] जैसी मौज हो, वैसा ही करनेवाला, मनमौजी । उ.—लच्छ सौ बहु लच्छ दीन्हौ, दान अवडर-ढरन—१-२०२ ।

अवतंस—सज्ञा पु. [सं.] (१) भूषण, अलंकार । (२) मुकुट, श्रेष्ठ ।

अवतरतौ—क्रि. अ. [स. अवतरण, हि. अवतरना] प्रकट होता, जन्मता, उत्पन्न होता । उ.—जो हरि कौ सुमिरन तू करतौ । मेरै गर्भ आनि अवतरतौ—४-६ ।

अवतरना—क्रि. अ. [सं. अवतरण] प्रकट होना, उपजना, जन्मना ।

अवरते—क्रि. अ. [हि. अवतरना] जन्मते, प्रकट होते, अवतार लेते । उ.—जो प्रभु नर देही नहि धरते । देवै गर्भ नही अवतरते—११८६ ।

अवतरि—क्रि. अ. [स. अवतरण, हि. अवतरना] अवतरे, उत्पन्न हुए, जन्म लिया । उ.—धनि माता, धनि पिता, धन्य सो दिन जिहि अवतरि—५८६ ।

अवतरिहुँ—क्रि. अ. [हि. अवतरना] जन्म लूँगा, प्रकट होऊँगा ।

अवतरी—क्रि. स. स्त्री. [हि. अवतरना] प्रकट हुई, जन्मी । उ.—बहुरि हिमाचल कै अवतरी । समय पाइ सिव बहुरी बरी—४-५ ।

अवतरे—क्रि. अ. [हि. अवतरना] प्रकट हुए, अवतार लिया, जन्मे । उ.—विष्णु-अस सौ दत्त अवतरे—४-३ ।

अवतरै—क्रि. अ. [हि. अवतरना] प्रकट हों, उपजें, जन्म लें । उ.—याकै गर्भ अवतरै जे सुत, सावधान ह्वै लीजै—१०-४ ।

अवतयौ—क्रि. अ. [हि. अवतरना] प्रकट, जन्मा, उपजा, पैदा हुआ । उ.—धन्य कोषि वह महारि जसोमति, जहाँ अवतरयौ यह सुत आई—७६१ ।

अवतार—सज्ञा पु. [स.] (१) उतरना, नीचे आना ।
(२) जन्म, शरीर-ग्रहण । उ.—नहि ऐसो जनम

बारंबार । पुरबलो लौ पुन्य प्रगट्यौ, लह्यौ नर अव-
तार—१-८८ । (३) विष्णु का संसार में जन्मना ।
(४) सृष्टि, शरीर-रचना ।

मुहा.—नीन्हौ अवतार—जन्म लिया, शरीर
ग्रहण किया । उ.—तुम्हरे भजन सबहि सिंगार ।
..... । कलिमल दूरि करन के काजै, तुम लीन्हो
जग में अवतार—१-४१ । अवतार धरना—जन्म
ग्रहण करना । अवतार करना—शरीर धारण किया ।
अवतारा—संज्ञा पु. [स. अवतार] जन्म, शरीर-ग्रहण ।
उ.—रसुराम जमदाग्नि गेह लीनौ अवतारा—
६१४ ।

अवतारी—क्रि. [सं. अवतार] (१) अवतार ग्रहण करने-
वाला । उ.—त्रिभुवन नायक भयौ आनि गोकुल
अवतारी—४६२ । (२) देवांशधारी, अलौकिक ।
उ.—(क) बारबार बिचारति जसुमति, यह लीला
अवतारी । सूरदास स्वामी की महिमा, कापे जात
बिचारी—१०-३८८ । (ख) कहत ग्वाल जसुमति
धनि मैया बडौ पूत तै जायौ । यह कोउ आदि
पुरुष अवतारी भाग्य हमारे आयौ ।

कि स. [हि. अवतारना] जन्म दिया । उ—
धन्य कोख जिहि तोको राख्यौ, धन्य घरी जिहि तू
अवतारी—३०३ ।

अवतारना—क्रि. स. [सं. अवतारण] (१) उत्पन्न
करना, रचना । (२) जन्म देना ।

अवतारे—क्रि. स. [हि. अवतारना] रचे, बनाये, उत्पन्न
किये । उ.—आपु स्वारथी की गति नाही । बिधिना
ह्यां काहे अवतारे जुवती गुनि पछिताही—पृ ३२० ।

अवतार्यौ—क्रि. स. [हि. अवतारना] उत्पन्न किया,
रचा, बनाया । उ.—प्रब यह भूमि भयानक लागै
बिधिना बहुरि कंस अवतार्यौ—२८३२ ।

अवज्ञात—वि [स] (१) उज्ज्वल, श्वेत । (२) स्वच्छ,
निर्मल । (३) पीत, पीला ।

अवध—संज्ञा पु. [स. अयोध्या] (१) कोशल देश जिसकी
प्रधान नगरी अयोध्या थी । (२) अयोध्या नगरी ।
उ.—दसरथ चले अवध आनंदत—६-२७ ।

संज्ञा स्त्री. [स. अवधि] (१) सीमा, हद,
पराकाष्ठा । उ.—यह निरंकित की अवध बाम तू

भइ सूर हत सखी नवीन—सा. ६६ । (२) निर्धारित
समय, मियाद । उ.—(क) लोचन चातक जीवो
नहि चाहत । अवध गए. पावस की आसा क्रम क्रम
करि निरबाहत—२७७१ । (ख) सूर प्रान लटि लाज
न छाँडत सुमिरि अवध आधार—२८८८ ।

वि [स. अवध्य] न मारने योग्य । उ—सिव न
अवध सुदरी बधो जिन—१६८७ ।

अवधपुर—संज्ञा पु. [स. अयोध्या] अयोध्या नगरी ।
अवधपुरी—संज्ञा स्त्री [सं.] अयोध्या नगरी ।
अवधा—संज्ञा स्त्री [हि.] राधा की एक सखी का
नाम । उ—मुखमा सोला अवधा नंदा बृ दा जमुना
सारि—१५८० ।

अवधारना—क्रि. स. [स. अवधारण] धारण करना,
ग्रहण करना ।

अवधि—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) सीमा, हद, परा-
काष्ठा । उ.—यह ही मन आनन्द अवधि सब ।
निरखि सरूप बिबेक नयन भरि, या सुख तै नहि
और कछु अब—१-६६ । (२) निर्धारित समय, प्रति-
ज्ञात काल । उ.—(क) इतनेहिं मे सुख दियो सबन
कौ मिलिहै अवधि बताइ—२५३३ । (ख) दिवस-
पति सुतमात अवधि विचार प्रथम मिलाइ—सा.
३२ । (३) अंत समय, अंतिम काल । उ.—तेरी
अवधि कहत सब कोऊ तातै कहियत बात । बिनु
बिस्वास मारिहै तोकौं आजु रैन कै प्रात ।

मुहा.—अवधि बदी—समय नियत किया । उ.—
निसि बसिबे की अवधि बदी—मोहि साँझ गएँ कहि
आवन । सूर स्याम अनतहि कहूँ लुबधे नैन भए
दोउ सावन । अवधि देना—समय निश्चित करना ।
अव्य. [सं.] तक, पर्यन्त ।

अवधिमान—संज्ञा पु. [सं.] समुद्र ।

अवधूत—संज्ञा पु. [सं.] (१) एक संन्यासी, योगी ।
(२) साधुओं का एक भेद ।

अवधेस—संज्ञा पु. [सं. अवध+ईश] श्रीरामचन्द्र ।
उ.—दै सीता अवधेस पाई परि, रहु लकेस कहावत
—६-१३३ ।

अवम, अवनु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रसन्न करना ।
(२) रक्षण, बचाव ।

सज्ञा पु. [स. अवनि] (१) भूमि । (२) राह, सडक ।

अवना—कि. अ. [सं. आगमन] आना ।

अवनि—संज्ञा स्त्री. [स.] पृथ्वी, जमीन । उ.—हमारी जन्मभूमि यह गाउँ । सुनहु सखा सुग्रीव-बिभीषन, अवनि अजोध्या नाउँ—६-१६५ ।

अवनिधरि—संज्ञा पु. [स. अवनि=पृथ्वी+हि. धरि=धारण करनेवाला] शेषनाग । उ.—भृकुटि को दड अवनिधरि चपला बिबस ह्वै कीर अरघौ—सा. उ. १४ ।

अवनी—संज्ञा स्त्री. [स. अवनि] पृथ्वी । उ.—कुटिल अलक बदन की छबि, अवनी परि लोले—१०-१०१ ।

अवनीप—संज्ञा पु. [स. अवनि+प=पति] राजा ।

अवर—वि. [हि. और] अन्य, दूसरा, और । उ.—(क) नहि मोतै कोउ अवर अनाथा—१०६६ । (ख) नवमो छोड अवर नहिं ताकत दस जिन राखै साल—सा. २६ । (२) अधम, नीच ।

वि. [स. अ=नही+बल] निर्बल, बलहीन ।

अवराधक—वि. [स. आराधक] पूजा या आराधना करनेवाला ।

अवराधन—संज्ञा पुं. [स. आराधन] उपासना, पूजा । उ.—योग ज्ञान ध्यान अवराधन साधन मुक्ति उदासी । नाम प्रकार कहा रुचि मानहि जो गोपाल उदासी—३१०१ ।

अवराधना—कि. स. [स. आराधन] उपासना करना, पूजा या सेवा करना ।

अवराधहु—कि. स. [हिं. अवराधना] उपासना या पूजा करो ।

अवराधा—कि. स. [हिं. अवराधना] उपासना की, सेवा-अर्चना की । उ.—जननी निरखि चकित रही ठाढी, दंपति-रूप अगाधा । देखति भाव दुहुँनि कौ सोई, जो चित करि अवराधा—७०५ ।

अवराधि—कि. स. [हि. अवराधना] उपासना या पूजा-सेवा करके । उ.—जोगी जन अवराधि फिरत जिहिं ध्यान लगाए । ते ब्रजबासिनि सग फिरत अति प्रेम बढ़ाए—४६२ ।

अवराधी—वि. [स. आराधन] उपासक, पूजक ।

अवराधै—कि. स. [हिं. अवराधना] उपासना करते हैं, पूजते हैं । उ.—पति के हेत नेम, तप साधे । संकर सौ यह कहि अवराधै—७६६ ।

अवराधो—कि. स. [हि. अवराधना] उपासना या पूजा करो । उ.—एसी बिधि हरि का अवराधो ।

अवरेखना—कि. स. [स. अवलेखन] (१) लिखना, चित्रित करना । (२) देखना । (३) अनुमान करना, सोचना । (४) मानना, जानना ।

अवरेखत—कि. स. [हिं. अवरेखना] (१) अनुमान या कल्पना करता है, सोचता है । (२) मानता है, जानता है ।

अवरेखिए—कि. स. [हि. अवरेखना] (चित्र) खींचिए या बनाइए, चित्रित कीजिए । उ.—स्याम तन देखि रो आपु तन देखिए । भीति जौ होइ तौ चित्र अवरेखिए—१०-३०७ ।

अवरेखी—वि. [हि. अवरेखना] लिखित, चित्रित, खिचित । उ.—चपक-पुहुप-बरन-तन-सुदर, मनौ चित्र-अवरेखी । हो रघुनाथ, निसाचर के सग अबै जात हौ देखी—६-६४ ।

क्रि. स.—देखी । उ.—फिरत प्रभु पूछत बन द्रुम बेली । अहो बंधु काहू अवरेखी (अवलकी) इहिं मग बधू अकेली—६-६४ ।

अवरेखु—कि. स. [हिं. अवरेखना] लिखी है, चित्रित है ।

अवरेखे—वि. [हिं. अवरेखना] लिखे हुए, रंगे हुए, चित्रित । उ.—एसे मेघ कबहुँ नहिं देखे । अतिकारे काजर अवरेखे—१०४८ ।

अवरेखैं—कि. स. [हि. अवरेखना] अनुमान या कल्पना करते हैं, सोचते हैं ।

अवरेख्यौ—कि. स. [हिं. अवरेखना] देखा । उ०—एसे कहत गए अपने पुर सबहि बिलक्षण देख्यौ । मानमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेख्यौ ।

अवरेब—संज्ञा पु. [स. अव=विरुद्ध+रेव=गति] (१) चक्र गति, तिरछी चाल । (२) पेंच, उलझन । (३) बिगाड़, खराबी । (४) झगड़ा, विवाद । (५) बक्रोक्ति ।

अवरे—वि. [हि. अवर] अन्य, दूसरे, बदले हुए ।
 उ०—(क) ऊधौ हरि के अवरें ढंग—३३२७
 (ख) ऊधौ अवरे कान्ह भए—३३८४ ।
 अवरोधना—क्रि. स. [सं. अवरोधन] रोकना, मना करना ।
 अवरोहना—क्रि. अ. [सं. आरोहण] उतरना, नीचे आना ।
 क्रि. अ. [सं. आरोहण] चढ़ना, ऊपर जाना ।
 क्रि. स. [हि. उरेहना] अंकित या चित्रित करना ।
 क्रि. स. [सं. अवरोधना, प्रा. अवरोहन] रोकना, घेरना ।
 अवर्त्त—सज्ञा पु. [सं. आवर्त्त] (१) भँवर, नाँद ।
 (२) घुमाव, चक्कर ।
 अवलंघना—क्रि. स. [सं. अव+लघना] जाँचना, फाँदना ।
 अवलंघ्यौ—क्रि. स. [सं. अव+लंघना, हि. अवलघना]
 जाँच लिया, पार कर लिया । उ०—राम-प्रताप,
 सत्य सीता को, यहै नाव-कन्धार । तिहि आधार छिन
 म अवलघ्यौ, आवत भई न बार—६-८६ ।
 अवलंब—सज्ञा पु. [सं.] आश्रय, सहारा ।
 अवलंबन—सज्ञा पु. [सं.] (१) आश्रय, आधार,
 सहारा । उ०—वै उत रहत प्रम अवलंबन इत ते
 पठ्यौ योग—३४६२ । (२) धारण, ग्रहण ।
 अवलंबना—क्रि. स. [सं. अवलंबन] आश्रय लेना,
 टिकना ।
 अवलंबित—वि. [सं. अवलंबन] (१) आश्रित, सहारे
 पर स्थित, टिका हुआ । उ०—एसे और पतित अव-
 लंबित ते छिन माहि तरे—१-१६८ । (२) निर्भर ।
 अवलंबिये—क्रि. स. [हि. अवलंबना] सहारा लीजिए,
 आश्रित होइए ।
 अवन्ता—सज्ञा स्त्री. [देश.] राधा की एक सखी गोपी
 का नाम । उ०—ब्रज जुवतिनि सबहिन मै जानति
 घर-घर लै-लै नाम बतायौ । अमला अवला
 कं जा मुकुता हीरा नीला प्यारि—१५८० ।
 अवलि—सज्ञा स्त्री. [सं. आवलि] समूह, मुंड । उ०—
 (क) मुख आँसू अरु माखन-कनुका, निरखि बैन
 छवि देत । मानौ स्रवंत सुधानिधि मोती उडुगन
 अवलि - समेत—३४६ । (ख) अति रमनीक कदब

छाँह-रुचि परम सुहाई । राजत मोहन मध्य अवलि
 बालक छवि पाई—४६२ ।
 अवली—सज्ञा स्त्री. [सं. आवलि] (१) पंक्ति, पंक्ति ।
 उ०—अति सुदेश मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख
 बगराई । मानौ प्रगट कंज पर मंजुल अति-अवली
 फिरि आई—१० १०८ । (२) समूह, मुंड ।
 अवलेखना—क्रि. स. [सं. अवलेखन] (१) खोदना,
 खुरचना । (२) चिह्नित करना, लकीर खीचना ।
 अवलेखो—क्रि. स. [हि. अवलेखना] चिह्नित करो ।
 अवलेप—सज्ञा पु. [सं. अवलेपन] (१) उबटन, लेप ।
 उ०—कुच कुकुम अवलेप तरुनि किए सोभित स्यामल
 गात । (२) घमंड, गर्व ।
 अवलोकत—क्रि. स. [हि. अवलोकना] (१) दिखाई
 देता है, सूझता है, निहारने से । उ०—(क) हृद
 बिच नाभि, उदर त्रिबली बर, अवलोकत भव-भय
 भाजै—१-६६ । (ख) भवसागर मै पैरि न लीन्हौ ।
 । अति गभीर तीर नहि नियरे किहि बिधि
 उतरयौ जात । नहि आधार नाम अवलोकत, जित-
 तित गोता खात—१-१७५ । (२) जाँचता हुआ,
 खोजता हुआ । उ०—फिरत बृथा, भाजन अवलोकत
 सूने भवन अजान—१-१०३ ।
 अवलोकन—सज्ञा पु. [सं.] (१) देखना । (२)
 जाँच, निरीक्षण । उ०—रबि करि बिनय सिवहि मन
 लीन्हौ । हृदय माँझ अवलोकन कौन्हौ—७६६ ।
 अवलोकनि—सज्ञा स्त्री. [सं. अवलोकन] (१) आँख,
 दृष्टि । (२) चितवन । उ०—(क) मै बलि जाऊँ
 स्याम-मुख-छवि पर । । बलि-बलि जाऊँ
 चारु अवलोकनि, बलि-बलि कुडल-रबि की—६६४ ।
 (ख) उ०—मृदु मुसुकानि नेक अवलोकनि हृदये ते
 न हरै—१८०३ । (ग) देखि अचेत अमृत अवलो-
 कनि चले जु सीचि हियौ—२८८६ ।
 अवलोकना—क्रि. स. [सं. अवलोकन] (१) देखना
 (२) जाँचना, खोज करना ।
 अवलोकहु—क्रि. स. [हि. अवलोकना] देखो, निहारो ।
 उ०—चित दै अवलोकहु नंदनंदन पुरी परम रुचिरूप ।
 सूरदास प्रभु कंस मारि कै होउ यहाँ के भूप—२५६१ ।
 अवलोकि—क्रि. स. [हि. अवलोकना] देखकर, निहार

कर। उ.—अंतरौटा अवलोकि कै, असुर महामद
माते (हो)—१-४४।

अवलोकित—वि. [हि. अवलोकना] देखी हुई, ताकती
हुई।

अवलोकी—क्रि. स. [स. अवलोकन, हि. अवलोकना]
देखी है, निहारी है। उ.—फिरत प्रभु पूछत बन-
द्रन-बेली। अहो बधु, काहूँ अवलोकी इहि मग बधू
अकेली—६-६४।

अवलोके—क्रि. स. [हि. अवलोकना] देखे, निहारे।
उ.—चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि
गने ६-५३।

अवलोक्यौ—क्रि. स. [हि. अवलोकना] देखा, निरीक्षण
किया। उ.—लुब्धौ स्वाद मीन-आमिष ज्यौ
अवलोक्यौ नहि फद—१-१०२।

अवलोचना—क्रि. स. [स. आलोचन] दूर करना।

अवशेष—वि. [सं.] (१) बचा हुआ। (२) समाप्त।

अवसर—सज्ञा पु. [सं.] (१) समय, काल। उ.—
सूरस्याम सग बिसेसोक्ति कहि आई अवसर साँभ—
सा. ३७। (२) अवकाश।

मुहा.—अवसर के चूकें—अवसर का लाभ न
उठाने पर, मौका हाथ से निकल जाने पर। उ.—
सूरदास अवसर के चूकें, फिरि पछितैहो देखि उधारी
—१-२४८।

अवसाद—सज्ञा पुं. [सं.] (१) नाश, क्षय। (२) विषाद।
(३) दीनता।

अवसान—सज्ञा पु. [स.] (१) सुध-बुध, होश-हवास,
चेत, धैर्य। (क) सुरसरी-सुवन रनभूमि आए। बान
बरषा लगे करन अति क्रुद्ध हैं, पार्थ अवसान तब सब
भुलाए—१-२७१। उ.—(ख) पूछ लीन्ही भटकि
धरनि सौं गहि पटकि फुकरघौ लटकि करि क्रोध
फूले। पूछ राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि, देखि
सब साँप-अवसान भूले—५५२। (ख) भिरकि नारि,
दै गारि, आपु अहि जाइ जगायौ। पग सौ चाँपी पूछ
सबै अवसान भुनायौ—५६६। (ग) तनु बिष रह्यौ
है छहरि।.....। गए-अवसान, भीर नहि भावै,
भावै नही चहरि—७५०। (घ) बिछुरत उमँगि नीर

भरि आई अब न कछू अवसान—२७७५। (२)
विराम, ठहराव। (३) समाप्ति, अन्त।

अवसि—क्रि. वि. [स. अवश्य] अवश्य, निश्चय करके;
निस्संदेह। उ.—रिषि कह्यौ, मै कारहो जहँ जाग।
दैहौ तुमहिँ अवसि करि भाग—६-३।

अवसेर—सज्ञा स्त्री. [सं. अवसेर=बाधक] (१) अटकाव,
उलझन। उ.—भयौ मन माधव की अवसेर। मौन धरे
मुख चितवत ठाढी ज्वाब न आवै फेर—१२१५।
(२) देर, विलंब। उ.—(क) महारि पुकारत कुँअर
कन्हाई। माखन धरघौ तिहारै काग्न आज कहाँ
अवसेर लगाई। (ख) अब तुमहूँ जुनि जाहु सखा इक
देहु पठाई। कान्हिँ ल्यावै जाइ आजु अवसेर लगाई
—५८६। (३) चिन्ता, व्यग्रता। उ.—(क) आजु
कौन बन गाइ चरावत, कहँ धौ भई अवेर। बैठ कहँ
सुधि लेउँ कौन बिधि, ग्वारि करत अवसेर—४५८।
(व) श्रीमुख कह्यौ जाहु घर सुन्दरि बडे महर
बृषभानुदुलारी। अति अवसेर करत सब ह्वैहै,
जाहु बेगि दैहै पुनि गारी—१२२६। (घ) बैचैनी,
व्याकुलता हैरानी। उ.—दिन दस घोष चलहु
गोपाल। गाइन की अवसेर मिटावहु लेहु आपने
ग्वाल। नाचत नही मोर ता दिन ते बोल न बरषा
काल—३४६३।

अवसेरत—क्रि. स. [हि. अवसेर, अवसेरना] (१) देर
लगाते हैं। (२) चिन्ता करते हैं।

अवसेरन—सज्ञा स्त्री. सवि. [हि. अवसेर] चिन्ता में,
व्यग्रता के कारण। उ.—मधुकर ए मन एसो वैन।
अहो मधुप निसिदिन मरियतु है कान्ह कुवर अव
सेरन—३२७७।

अवसेरना—क्रि. स. [हि. अवसेर] तंग करना, दुख
देना।

अवसेरि—सज्ञा स्त्री. [हि. अवसेर] (१) देर, विलम्ब।
उ.—(क) महारि पुकारत कुँवर कन्हाई। +। खन
धरघौ तिहारेहि कारन, आजु कहाँ अवसेरि लगाई—
५४६।

अवसेरी—सज्ञा स्त्री [हि. अवसेर] चिन्ता, व्यग्रता।
उ.—(क) तेरे बस री कुँअरि कन्हाई करत कहा
अवसेरी। सूरस्याम तुमकौ अति चाहत तुम प्यारी

हरि केरी—२४५७। (ख) सखी रही राधा, मुख हेरी। चकृत भई कछु कहत न आवै, करने लगी अवसेरी—१६५२। (ग) जब ते नयन गए मोहि त्यागि। इंद्रि गई, गया तन ते मन उनहिं बिना अवसेरी लागि—१८८४।

अवसेरै—संज्ञा स्त्री. [हि अवसेर] चिन्ता, व्यग्रता। उ.—ढूँढति है द्रुमबेनी बाला भई बेहाल करनि अवसेरै—१८१३।

अवसेष—वि. [सं. बचा हुआ, शेष]। उ.—सो हौ एक अनेक भाँति करि सोभित नाना भेष। ता पाछ इन गुननि गए त, रहिहौ अवसेष—२-३८।

अवसेस—वि. [स. अवशेष]। (१) बचा हुआ, शेष। उ.—विपति-काल पाडव-बधु बन मै राखी स्याम हरी। करि भोजन अवसेस जज्ञ कौ त्रिभुवन-भूख हरी—१-१६। (२) समाप्त। संज्ञा पु.—(१) शेष या बची हुई वस्तु। (२) समाप्ति, अन्त।

अवस्था—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) आयु, उम्र। (२) समय, काल। उ.—नरन अवस्था को नृप जानै। तो हूँ धर न मन मै जानै—४-१२।

अवहेलना—कि. स. [स. अवहेलन] तिरस्कार करना, अवज्ञा करना।

अवाँ—संज्ञा पु. [स. आपाक=ह. आवा] वह गढ़ा जिसमें कुम्हार बर्तन पकाते हैं।

अवाई—संज्ञा स्त्री. [स. आयन=प्रागमन] आगमन।

अवागी—वि. [सं. अवाग्विन्=प्रपटु] मौन, चुप।

अवाज—संज्ञा स्त्री. [फा. आवाज] ध्वनि, शब्द। उ.—(क) अबलौ नान्हे-नुन्हे तारे, ते सब बृथा-अकाज। सचि बिरद सूर के तारत, लोकनि-लोक अवाज—१-६६। (ख) कहियत पतित बहुत तुम तारे, सवननि सुनी अवाज—१-१०८। (ग) त्राहि त्राहि द्रौपदी पुकारी, गई बैकुण्ठ-अवाज खरी—१-२४६।

अवाजै—संज्ञा स्त्री. [फा. आवाज] ध्वनि, शब्द। उ.—ब्रज पर सजि पावस-दल आयौ।.....। चातक मोर इतर पर दागन करत अवाजै कोयल। स्याम घटा गज असन बाजि रथ चित बगपाँति सजोयल—२-१६।

अवाया—वि. [स. अवार्थ] उच्छृङ्खल, उद्धत। उ.—अकरम अविधि अज्ञान अवाया (अवज्ञा) अनमारग अनरीति। जाकौ नाम लेत अर्थ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२६।

अवारजा—संज्ञा पु. [फा.] (१) जमा खर्च की बही। (२) संक्षिप्त लेखा या घृतांत। उ.—करि अवारजा प्रम-प्रीति कौ, असल तहाँ खतियावे। दूजे करज दूरि करि दयत, नैकुँ न तामै आवै—१-१४२।

अवास—संज्ञा पु. [स. आवास] निवास स्थान, घर। उ.—(क) भयौ पलायमान दानव-कुल, व्याकुल सायक-वास। पजरत धुजा, पताक, छत्र, रथ, मनिमय कनक-आवास—६-८३। (ख) बाजत नद-आवास बधाई। बैठे खेलत द्वार आपने सात बरस के कुँअर कन्हाई—६१२।

अवासा—संज्ञा पु. [स. आवास] घर, निवासस्थान। उ.—चितवत मन्दिर भए अवासा। महल महल लाग्यौ मनि पासा—२६४३।

अवेकल—वि. [स.] (१) पूर्ण, पूरा। (२) अव्याकुल, शांत।

अविकार—वि. [स.] विकाररहित, निर्दोष। संज्ञा पु. [स.] विकार का अभाव।

अविकारी—वि. [स. अविकारिन] जिसमें विकार न हो, निर्दोष।

अविगत—वि. [स.] (१) जो जाना न जाय। (२) अज्ञात। अनिर्वचनीय। (३) जो नष्ट न हो, नित्य।

अविचर—वि. [म. अविचल] जो विचलित न हो। सदा बनी रहनेवाली, अटल, स्थिर। उ.—खरत नवल किसोर किसोरी।.....। देति असीस सकल ब्रज जुवती जुग-जुग अविचर जोरी—२-३६३।

अविचल—वि. [स.] अचल, स्थिर, अटल।

अविजन—संज्ञा पु. [स.] कुल, वंश।

अविद्य—वि. [स. अविद्यमान] नष्ट।

अविद्या—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) मिथ्या ज्ञान, मोह। (२) माया। (३) माया का एक भेद।

अविनय—संज्ञा पु. [स.] विनय का अभाव, उद्दंडता।

अविनासी—संज्ञा पु. [सं. अविनाशिन, हि. अविनाशी]

ईश्वर, ब्रह्म । उ.—तूर मधुपुरी आइकें ये भए
अबिनासी ।

वि —(१) जिसका विनाश न हो, अक्षय ।

(२) नित्य, शाश्वत ।

अविरल—वि [म.] (१) जो भिन्न न हो, सदा
हुआ (२) अना, समन ।

अविरोध—मज्ञा पु. [म.] मेल, संगति ।

अविर्या—क्रि. वि. [म. वया] व्यर्थ ही, निष्प्रयोजन
हो, बृथा हो । उ.—जा रहा अविर्या सुरपति—
१०३६ ।

अविहङ—वि. [स. अ+विघट] जो खंडित न हो,
अनश्वर ।

अव्यक्त—वि. [म.] (१) अप्रत्यक्ष, अगोचर । (२)
अज्ञात, अनिर्वचनीय ।

मज्ञा पु. —(१) विष्णु । (२) शिव । (३) प्रकृति ।

अवेश—वि [सं. आवेश] उन्मत्त, मतवाले, आदेशयुक्त ।
उ.—ग्रायौपर समभे नही हरि होरी है । राजा रंक
अवेश ग्रहो हरि होरी है—२४५३ ।

सज्ञा पुं.—(१) आवेश, मनेदेग । (२) चेतनता ।
(३) भूत लगना या चढना ।

अशन—सज्ञा पु. [सं.] (१) भोजन, आहार । उ.—
गरल अशन अहि भूषण धारि —२३७ । (२) भोजन
की क्रिया ।

अशनि—सज्ञा पु. [सं.] वज्र बिजली ।

अशुन—सज्ञा पु. [स. अश्विनी] अश्विनी नक्षत्र ।

अशेष—वि. [सं.] (१) पूरा, सब । (२) अतंत, अपार,
अनेक ।

अषाढ़—सज्ञा पुं. [सं. आषाढ] आषाढ़ नामक महीना
जो ज्येष्ठ के पश्चात् और श्रावण के पूर्व आता है ।

अष्ट—वि. [सं.] आठ ।

अष्टकृष्ण—सज्ञा पु. [म.] वल्लभकुल में मान्य आठ
कृष्ण—श्रीनाथ, नवनीतप्रिय मथुरानाथ, विटठलनाथ,
द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुलचंद्र, मदनमोहन ।

अष्टम—वि. पु. [स.] आठवाँ । उ.—अष्टम मास
संपूरन होइ—३-१३ ।

अष्टमग्रह—सज्ञा पु. [सं. अष्टम (=आठवाँ)+ग्रह (सूर्य
से आठवाँ ग्रह 'राहु', फिर 'राहु' शब्द से राह या

रास्ता अर्थ हुआ)] राह, रास्ता । उ.—आवत थी
बृषभानु नंदिनी आजू सषी के सग । गह अष्टम में
मिली नदसुत अग अनग उमा—सा. ८२ ।

अष्टमी—सज्ञा स्त्री. [स.] आठवीं तिथि, आठ ।

अष्टसुर—सज्ञा पु. [म. अष्ट (=आठ=सु, क्योंकि वसु
आठ माने जाते हैं) +सुर (=देव) (वसु+देव से
बना वसुदेव)] श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव ।

अष्टसुरन-सुत—सज्ञा पुं. [म. अष्ट (=आठ, 'व')
आठ होते हैं अतएव अष्ट=वसु) +सुर (=देव—
दोनों को मिलाने से बना 'वसुदेव') +सुत (=वसुदेव
के पुत्र)] श्रीकृष्ण । उ.—ये हैं हेमपुर अष्टसुरनमुन
दिनपति ही को बास—सा. ६५ ।

अष्टांग—सज्ञा पु. [स.] योग-क्रिया के आठ भेद—
यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण,
ध्यान और समाधि । उ.—भक्तिपथ को जा अनुसर ।
सा अष्टांग जोग कौ करे—२-२१ ।

अष्टाकुल—सज्ञा पु. [सं. अष्टाकुल] पुराणानुसार सप्त
के आठ कुल—शेष, वासुकि, कबल, कदादिदेव, पद्म,
महापद्म, शख और कुलिक । दूसरों के मत से आठ
कुल थे हैं—तरक, महापद्म, शख, कुलिक, कंबल,
अश्वतर, धृतराष्ट्र और बजाहक । उ.—चिता मानि,
चित अतग्गति, नाग-लाक कौ धाए । पारध-सांग
सोधि अष्टाकुल तब यदुनदन ल्याए—१-२६ ।

अष्टाक्षर—सज्ञा पु. [स.] (१) आठ अक्षरों का मंत्र ।
(२) वल्लभ-संप्रदाय में मान्य—श्रीकृष्णः शरणं मम ।

अष्टौ—वि. [स. अष्ट] आठौ । उ.—भोजन सब लै
धरे छहौ रस कान्ह संग अष्टौ सिधि—६२३ ।

असंक—वि. [स. अशक] निर्भय, निदर ।

असंख—वि. [सं. असंख्य] अगणित, बहुते अधिक ।

असंग—वि. [सं.] (१) अकेला, एकाकी । (२) किसी
से संबध न रखनेवाला, न्यारा, निर्लिस, मायारहित ।
उ.—मृग-तन तजि, ब्राह्मन-तन पायौ । पूर्व-जन्म-
सुमिरन तहँ आयौ । मन मैं यहँ बात ठहराई । होइ
असंग भजौ जदुराई—५-३ । (३) अलग,
पृथक ।

असंगत—वि. [स.] (१) अयुक्त, जो ठीक न हो ।

(२) अनुचित । उ.—भ्रम-भोयौ मन भयो पखावज,
चलत असगत चाल—१-१५३ ।

असंत—वि. [सं.] खल, दुष्ट बुरा । उ.—यह पूरन
हम निपट अधूरी, हम असत यह सत—१३२४ ।

असंतुष्ट—वि. [सं.] (१) जो संतुष्ट न हो । (२)
जो अग्राय न हो, अतृप्त ! (३) अप्रसन्न ।

असंभार—वि. [स.] (१) जिसकी समझाल या देख-
भाल न हो सके । (२) अपार, बहुत बड़ा ।

असंभाव—वि. [सं. असंभाव्य] न कहने योग्य ।

सज्ञा पु.—बुरा बचन, खराब बात । उ.—प्रसभाव
बोलन आई है, ठीठ ग्वालनी प्रात—१०-२६० ।

असंभु—सज्ञा पुं [स. अ=अही+शभु=हल्याण] अशुभ,
अमंगल । उ. नसै धर्म मन बचन काय करि संभु
प्रसभु करई (सिंधु अचभौ करई) । अचला चले
चलत पुनि थाकै, चिरजीति सो मरई—६-७८ ।

अस—वि [स. एष=यह, अथवा ईदृश] (१) ऐसा,
इस प्रकार का । उ.—(क) जो हरि-व्रत निज उर
न धरैगौ । तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर
कुठावै पकरैगौ—१-७५ । (ख) धन्य नद, धनि
धन्य जसोदा, जिन जायौ अस पूत—१०-३६ । (२)
तुल्य, समान ।

असक्त—वि. [सं. आसक्त] अनुरक्त, लीन, लिप्त ।
उ.—ज्वाला-प्रीति, प्रगट सन्मुख हठि, ज्यौ पतंग
तन जारचौ । विषय-असक्त, अमित अघ व्याकुल,
तगहूँ कछु न सँभारचौ—१-१०२ ।

असगुन—सज्ञा पु. [स. अशकुन] बुरा शकुन, बुरा
लक्षण ।

असन—वि. [सं. असत्] (१) खोटा, असाधु,
असंजजन । उ.—साधु-सील सद्रूप पुरुष कौ, आस
बहु उच्चरतौ । औघड-असत-कुचीलनि सौ मिलि,
माभा-जल में तरतौ—१-२०३ ।

वि. [स. अ=अही+सत्य] मिथ्या ।

असकार—सज्ञा पु. [सं.] अगमान, निरादर ।

असद्व्यय—सज्ञा पुं. [सं.] बुरे कामों में खर्च ।
उ.—हुतौ आढ्य तब कियो असद्व्यय करी न
ब्रह्म-व्रत-जात्र । पोषे नहि तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ
अपनौ गात्र—१-२१६ ।

असन—सज्ञा पु. [स. अशन] भोजन, आहार । उ —
असन, बसन बहु बिधि दए (२) औसर-औसर
ग्रानि—१-३२५ ।

असनान—सज्ञा पु [स. स्नान] स्नान । उ.—नृपति
मुरसरी कै तट आइ । कियो असनान मृत्तिका
लाइ—१-३४१ ।

असनेई—सज्ञा स्त्री. [सं. असभ्यता] अशिष्टता ।

असनं—सज्ञा पु. [स. अश्मन्त] चूल्हा ।

असन—वि. [स.] (१) जो सम या तुल्य न हो । (२)
ऊँचानोचा, ऊबड़-खाबड़ ।

असनवान—सज्ञा पु. [स. असमवाण] कामदेव ।

असनय—सज्ञा पु [स.] विपति का समय ।

वि—कुअवसर, कुसमय ।

असत्थ—वि. [स. प्रसमर्थ] (१) समर्थहीन, अशक्त ।
(२) अयोग्य ।

असमभर—सज्ञा पु. [सं. असमशर] कामदेव । उ.—
अंजन रंजित नैन, चितवनि चित चोरै, मुख-सोभा
पर वारौं अमित असमसर—१०-१५१ ।

असनेध—सज्ञा पु. [सं. अश्वमेध] अश्वमेध ।

असनाना—वि. [स. अ=अही+हि. सयाना] (१)
भोलाभाला, सीधासादा । (२) अनाडी, मूर्ख ।

असरन—वि. [स. असरण] जिसे कहीं शरण या आश्रय
न हो, अनाथ । उ.—प्रभु, तुम दीन के दुख-हरन ।
सगममु दर, मदनमोहन, बान असगन-सरन १-२०२ ।

असरगसरन—सज्ञा पु. [सं. अशरण+शरण] जिसे
कहीं आश्रय न हो उसे शरण देने वाले, अनाथ के
आश्रय दाता । उ —तो श्रीपति जुग-जुग सुमिरन-बस,
बद विमल जस गावै । असरन-सरन सूर जाँचत है,
को अब सुरति करावै—१-१७ ।

असरार—क्रि. वि. [हि. सर सर] निरंतर, लगातार,
बराबर । उ.—कहो नद कहाँ छाँडे कुमार । करुना
करै जसोदा माता नैनन नीर बहै असरार—२६७१ ।

असल—वि. [अ.] (१) सच्चा, खरा । (२) उच्च, श्रेष्ठ ।
(३) बिना मिजावट का, शुद्ध ।

सज्ञा पु. [अ.] (१) जड़, मूल, बुनियाद, तत्व ।

(२) मूल धन । उ.—बट्टा काटि कसूर भरम कौ,
फरद तने लै डारै । निहचै एक असल पै राखै, टरै

न कबहूँ टारें । करि अवारजा प्रेम प्रीति कौ, असल
तहाँ खतियावै—१-१४२ ।

सज्ञा पु [स शल्य] वाण, भाला ।

असवार—वि. [फा. सवार] सवार होकर, चढ़कर । उ —

(क) नृगति रिषिन पर ह्वै असवार । चलयो तुरंत सची
कैँ द्वार—६ ७ । (ख) करि अंतरधान हरि मोहिनी-
रूप कौँ, गरुड असवार ह्वै तहाँ आए—८ ८ ।

असवारी—सज्ञा स्त्री. [हिं. सवारी] सवारी, चढ़ना ।

उ—प्रमरन कह्यौ, करौ असवारो रात कौ
लेह हँकारी—१०६६।

क्रि. अ —सवार होकर, सवारी करके । उ.—
निकसे सब कुँवर असवारी उच्चैःस्रवा के पोर—
१० उ.—६ ।

असह—वि. [स. असह्य] जो सहा न जा सके ।

असही—वि. [स. असह] दूसरे को बढ़ती न सहन करनेवाला, ईर्ष्यालु ।

असौंच—वि. [सं. असत्य, प्रा. असच्च] असत्य, झूठ ।
असाध—वि. [स. असाध्य] जिसका साधन न हो सके,
कठिन, दुष्कर ।

वि. [सं. असाधु] दुष्ट, बुरा ।

असाधु—वि [सं.] दुष्ट, दुर्जन । उ.—महादेव कौं
भाषत साध । मै तौ देखौ बडो ग्रमाध—४-५ ।

असार—वि. [स.] (१) साहोत, व्यर्थ, निरर्थक ।

उ. यह जिय जानि, इही छिन भजि, दिन बीते
जात असार । सूर पाइ यह समी लाहु लहि, दुर्लभ
फिरि ससार—१-६८ । (२) शून्य, खाली । (३)
तुच्छ ।

असि—सज्ञा स्त्री. [स.] तलवार, खड्ग ।

असित—वि. [सं.] (१) जो सित (सफेद) न हो,
काला । उ.—(क) असित-अरुण-सित आलस लोचन
उभय पलक परि आवै—१०-२५ । (ख) उज्ज्वल
अरु असित दीसति हँ, दुहँ नननि की कोर—
३५९ । (२) दुष्ट, बुरा । उ.—हमारे हिरदै कुलसै
ज त्यों । * * * हमहूँ समुझि परी नीक करि यहै
असित तन रीत्यों—२८८४ । (३) टेढ़ा, कुटिल ।

असिता—सज्ञा स्त्री. [स.] यमुना नदी ।

असी--वि. [स. अशीति, प्रा. असीति, हि. अस्सी]

अस्सी । उ.—(क) तासौ सुत निन्यानबे भए ।
भरतादिक सब हरि-रँग राए । तिनमै नव-नव-खँड
अधिकारी । नव जोगेस्वर ब्रह्म-बिचारी । असी एक
कर्म बिप्र कौ लियौ । रिषभ ज्ञान सबही कौ दियौ—
५-२ । (ख) असी सहस्र किकर-दल तेहिके, दौरे
मोहि निहारि—६-१०४ ।

असीस--सज्ञा स्त्री. [सँ आशिष] आशीर्वाद । उ.—
इक बदन उधारि निहारि, देहि असीस खरी—
१०-२४ ।

असीसना--क्रि स [सं आशिष] आशीर्वाद देना ।

असीसैं--कि. स. [हि. असीसना] आशीर्वाद देती हैं ।

उ.—जोरि कर बिधि सौ मनावति असीसै लै नाम ।

न्हात बार न खसै इनको कुसल पहुँचै धाम—२५६५ ।

अमुचि--वि [स. अशुचि] (१) अगवित्र । (२)
गदा, मैत्रा ।

असुर--संज्ञा पु. [म.] दैत्य, राक्षस ।

अमरगुरु-सज्ञा पु. [सं] शुक्राचार्य ।

अपुराई--सज्ञा स्त्री. [सं. अमुर+हि. आई (प्रत्य.)]
खोटाई, बुराई ।

अ.भूक्त—व [स. अ+हि. सूभना] (१) अवकार
मय (२) अपार, बहुन विस्तृत । (३) विकट,
कठिन ।

असूत--वि. [सं. अस्यूत] विरुद्ध, असंबद्ध ।

असूया--सज्ञा स्त्री [स.] ईर्ष्या, एक संचारी भाव ।

उ.—चंद्र भाग सँग गयौ सुआखर-रिनु सब मुख
बिसराई । एक अबल करि रही असूया सूर सुतन
कह चाई—सा. ४६ ।

असैला—वि. [म. अ=नहीं + शैल = रीति] (१) रीति
विरुद्ध कर्म करनेवाला, कुमार्गी । (२) रीति विरुद्ध,
अनुचित ।

असोकी—वि. [स. अ. = नहं. + शोक + हि. ई (प्रत्य.)]
शोकरहित ।

असोच—वि [स. अ=नही+शोच] निश्चित, बंफिक्र ।

उ.—माधौ जू, मन सबही बिधि पोच । अति उन्मत्त
निरकुस मैगल, चिता रहित असोच—१-१०३ ।

असोज-सप्ता प. [स. अश्वयुज] आश्विन, क्वार ।

असोम—'व. [स. अ=नहीं+शोष] न सखनेवाला ।

अम। ३—४. [स. प्रज्ञाव] अधिप्र । उ.—हो असौच
प्रक्रिया, अरराधी, सनमुख होत लजाऊँ—१-१२८ ।
अनेनि—संज्ञा पु. [स. अ=ही+हि. सौ=पुगध]
दुर्गन्धि ।

अनेस—वि. [स. अनेप] (१) पूरा, सब । (२)
अवार, अधिक, अनेन । उ.—अन गर्जत बीजु तर-
पत मधुर मेह अनेस—२२६० ।

अत—वि. [सं.] (१) छिगा हुआ । (२) अदृश्य,
छुपा हुआ । (३) नष्ट, ध्वस्त ।

मज्ञा पु. [सं.] तिरोधान, लोप ।

अनान—संज्ञा पु. [स. स्तन] स्त्रियों की छाती जिनमें
दूध रहता है ।

मुडा०—प्रस्तन-पान कराई—दूध पिलाती है ।

उ.—पालक लियौ उछा दुष्टमति, हरषित अस्तन-
पान कराई—१०-५० ।

असि—संज्ञा स्त्री. [स. अस्थि] हड्डी । उ.—बहुरि
हरि आवहिगे किहि काम । । सूर स्याम ता
दिन ते विछरे अस्ति रही कै चाम—२८२३ ।

अस्तुत—संज्ञा स्त्री. [म. अ=हो+स्तुति] निंदा ।
उ.—हैं गए सूर सूर सूरज बिरह अस्तुत फेर—
भा. ३३ ।

अस्तुति—संज्ञा स्त्री. [स. स्तुति] स्तुति, विनती,
प्रार्थना । उ.—तुनि सिव ब्रह्म अस्तुति करी—४-५ ।

अस्त्र—संज्ञा पु. [स.] (१) फेंककर शत्रु पर चलाये
जाने वाले हथियार, जैसे बाण, शक्ति । (२) वह
हथियार जिससे दूसरे अस्त्र फेंके जायें जैसे धनुष,
बहुक । (३) शत्रु के हथियारों की रोक करने वाले
हथियार, जैसे ढाल । (४) मंत्र द्वारा चलाये जाने
वाले हथियार । उ.—अस्वत्थामा बहुरि खिस्त्राइ ।
ब्रह्म-अस्त्र को दियौ चलाइ—१-२८३ ।

अस्थत—संज्ञा पु. [स. स्थल] स्थल, स्थान । उ.—
अस्थल लीपि, पात्र सब धोए, काज देव के कीन्हे—
१०-२६० ।

अस्थान—संज्ञा पु. [सं. स्थान] स्थान, ठौर, आश्रय ।
उ.—गति-पावन जानि सरन आयौ । उदधि-ससार
सुख नाम-तौका तरन, अटल अस्थान निजु
गिम गायौ—१-११६ ।

अस्थाना—संज्ञा पु. [स. अस्वत्थामा] द्रोणाचार्य का
पुत्र । उ.—भीषम द्रोण करन अस्थामा सकुनि
साहत काहूँ न सरी—१-२४६ ।

अस्थि—संज्ञा स्त्री. [स.] हड्डी ।

अस्थिर—वि. [सं.] (१) जो स्थिर न हो, चंचल । (२)
बेठौर-ठिकाने का । (३) स्थिर, अवंचल । उ.—भक्तनि
हाट बेठि अस्थिर ह्वे हरि नग निर्मल लेहि । कामक्रोध
मद-लोभ मोह तू, सकल दलाली देहि—१-३१० ।

अस्नान—संज्ञा पु. [स. स्नान] स्नान । उ.—करि
अस्नान नद घर आए—१०-२६० ।

अस्पर्श—संज्ञा पु. [सं. स्पर्श] स्पर्श, छूना । उ.—जब
गजेन्द्र कौ पग तू गैहै । हरि जू ताको आनि छुटैहै ।
भएँ अस्पर्श देव-तन धरिहै । मेरौ कह्यौ नाहि यह
टरिहै—८-२ ।

अस्म—संज्ञा पु. [सं. अश्मन्, अश्म] पत्थर । उ.—
(क) कौर-कौर कारन कुबुद्धि, जड, किते सहत
अपमान । जँह-जँह जात तही तहिं त्रासत अस्म,
लकुट, पदवान—१-१०३ । (ख) आपुन तरि तरि
औरन तारत । अस्म अचेत प्रकट पानी मै, बनचर
लै लै डारत—६-१२३ ।

अस्मय—संज्ञा पु. [सं. असमय] विपत्ति का समय, बुरा
समय ।

क्रि. वि —कुअवसर पर ।

अस्व—संज्ञा पु. [स. अश्व] घोड़ा, तुरंग ।

अस्वत्थाम, अस्वत्थामा—संज्ञा पु. [स. अश्वत्थामा]
द्रोणाचार्य का पुत्र । उ.—अस्वत्थामा भय करि
भग्यौ । । अस्वत्थाम न जब लागि मारी । तब
लगि अन्न न मुख मै डारौ—१-२८६ ।

अस्वमेध—संज्ञा पु. [स. अश्वमेध] एक महान् यज्ञ
जिसमें घोड़े के मस्तक पर जय-ध्वज बांध कर भूमंडल
की दिग्विजय की जाती थी । पश्चात्, घोड़े की चर्बी
से हवन किया जाता था जो साल भर में समाप्त
होता था ।

अस्विनिसुत—संज्ञा पु. [सं. अश्विनीसुत] त्वष्ठा की पुत्री
प्रभा नामक स्त्री से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र । एक बार
सूर्य का तेज सहन करने में अममर्थ हो, यम-यमुना
नामक पुत्र पुत्री के पास अपनी छाया छोड़, प्रभा भाग

गधो और घोड़ो बन कर तप करने लगी । इस छाया से भी सूर्य को शनि और ताही नामक दो संतति हुई । पश्चात्, प्रभा की छाया ने अपनी खानान से प्रेम और प्रभा के पुत्र-पुत्री का तिरस्कार करना आरंभ किया । फलतः प्रभा के भाग जाने की बात खुल गयी । तब सूर्य अश्वरूप में अश्विनी रूपिणी प्रभा के पास गये । इस संयोग से दोनों अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति हुई ।

अहं—सर्व. [स] अहंकार, अभिमान । उ.—ज्यौ गहाराज या जलधि तँ पार कियौ, भव-जलधि पार त्यों करौ स्वामी । अह-ममता हम सदा जागी रहे, मोह-मद-क्रोध-जुत मद कामी—८-१६ ।

अहंकार, अहंकार—संज्ञा पु. [स. अहंकार] (१) अभिमान, गर्व । (२) मैं और मेरा का भाव, ममत्व ।

अहंकारी—वि. [स. अहंकारिन] अभिमानी, घमंडी ।

अहंभाव—संज्ञा पु. [स.] अपने को सब कुछ समझने का भाव, अहंकार, अभिमान । उ.—अहंभाव तँ तुम विसराए, इतनाई छूट्यो साथ—१-२०८ ।

अहंवाद—संज्ञा पु. [सं.] डींग मारना ।

अहं—संज्ञा पु. [स. अहन्] दिन । उ.—मही एक अह अरु निसि दुखी—१० उ.-१३८ ।

यौ. अहनिसि [स. अहनिश] दिनरात । उ.—तृष्णा-तडित चमकि छनहीं—छन, अहनिसि यह तन जारौ—१-२०६ ।

अहकना—क्रि. सं. [हि. अहकना (प्रत्य.)] इच्छा करना, चाहना ।

अहटाना—क्रि. अ. [हि. आहट] (१) आहट लगना, पता चलना । (२) टोह लगना ।

क्रि. अ. [म. आहत] दुखना ।

अहल्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] गौतम ऋषि की पत्नी ।

अहदी—वि. पु. [अ.] (१) आलसी । (२) अकर्मण्य ।

संज्ञा पु. [अ.] अकबर के समय के ऐसे सिपाही जो विशेष आवश्यकता के अवसर पर काम में लगाये जाते थे, शेष समय बैठे खाते थे । मालगुजारी वसूलने जाकर ये अकर बैठ जाते थे और बकाया लेकर ही लौटते थे । उ.—घेरयो आय कटुम- लसकर मँ, जम अहदी पठ्यौ । सूर नगर चौरसी भमि भमि घर घर कौ जु भयौ—१-६४ ।

अहना—क्रि. स. [स. अस्ति] वर्तमान रहना, होना ।

अहनिसि—क्रि. वि. [स. अहनिश] दिनरात ।

अहने—संज्ञा पु. [सं. आह्वान, हि. अहान,] पुकार, शोर, विलाहट ।

अहमिति—संज्ञा स्त्री. [स. अहम्मति] (१) अहंकार । (२) अविद्या । उ.—रे मन जनम अकारथ खोइसि । हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्ही, उदर भरे परि सोइसि । निस-दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि—१-३३३ ।

अहलना—क्रि. अ. [स. आहलनम्] हिलना, काँपना ।

अहलाद—संज्ञा पु. [स. आह्लाद] आनंद, हर्ष । उ.—(क) ताको पुत्र भयौ प्रह्लाद । भयौ असुर-मन प्रति अहलाद—७-२ । (ख) आनदित गोपी-गवाल नाचै कर दै दै ताल, अति अहलाद भयौ जसुमति माइ वै—१०-३१ । (ग) हस साखा सिखर पर चढि करत नाना नाद । मकरनि जु पद निकट बिहरत मिलन अति अहलाद—सा. उ०-५ ।

अहवान—संज्ञा. पु. [आह्वान] बुलाना, आवाहन ।

अहार—संज्ञा पु. [सं. आहार] भोजन ।

अहारना—क्रि. स. [सं. आहरणम्] खाना, भोजन करना ।

अहारी—वि. [सं. आहारिन्, हि. आहारी] खानेवाला । उ.—अपद-दुपद-पसु भाषा बूझत अविगत अल्प अहारी—८-१४ ।

अहि—संज्ञा पु. [सं.] साँप ।

अहिइंद्र—संज्ञा पु. [सं.] कालियनाग । उ.—यह कह्यो नद, ^मप बंदि, अहि इंद्र पै गयौ मेरौ नद, तुव नाम लीन्ही—५८४ ।

अहित—संज्ञा पु. [सं.] बुराई, अकल्याण । उ.—दुर-बासा दुरजोधन पठ्यौ पाडव-अहित विचारी । साक पत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी—१-१२२ ।

वि.—(१) शत्रु, बैरी । (२) हानिकारी ।

उ.—छहौ रस जौ धरौ आगै, तंउ न गंध सुहाइ । और अहित भच्छ अभच्छति कला बरनि न जाइ—१-५६ ।

अहिनाह—संज्ञा पु. [सं. अहिनाथ] शेषनाग ।

अहिपति-सुता-सुवन—संज्ञा पु. [स. (अहि=नाग)

अहिपति=(ऐरावत=वशी कौरव्य नाग)+सुता
(=कौरव्य नाग की कन्या उलूपी)+ सुवन (उलूपी
का पुत्र बभ्रुवाहन)] बभ्रुवाहन जो अर्जुन का पुत्र
था और जिसने युद्ध में पिता को मूर्छित कर दिया
था । उ.—अहिपति-सुता-सुवन सन्मुख हूँ बचन कह्यो
इक हीनो । पारथ बिमल बभ्रुवाहन को सीस
तिलौना दीनो—१-२६ ।

अहिनी—सज्ञा स्त्री. [स. अहि (पु.)] सर्पिन, सर्पिणी
उ.—चंदन खौरि ललाट स्याम के निरखत अनि
सुखदाई । मानहुँ अर्धचंद्र तट अहिनी सुभा चारानन
आई—१३५० ।

अहिवेल—सज्ञा स्त्री [सं. अहिवल्ली, प्रा. अहिवेली]
नागवेलि, पान ।

अहिर—सज्ञा पु. [स. आभीर, हिं. अहीर] अहीर,
ग्वाला ।

अहिराइ—सज्ञा पु. [हिं. अहिराय] कालियनाग ।
उ.—उरग लियौ हरिकौ लपटाइ । सर्व-वचन कहि-
कहि मुख-भाखत, मोकौ नहि जानत अहिराइ—५५५ ।

अहिराज—सज्ञा पु. [सं.] कालियनाग । उ.—सूर के
स्याम, प्रभु-लोक अभिराम, विनु जान अहिराज
विष-ज्वाल बरसै—५५२ ।

अहिलता—सज्ञा स्त्री. [म.] नागवेलि, पान । उ.—
अहिलता रग मिटचौ अवरन लग्यौ दीपकजात—
२१३० ।

अहिल्या—सज्ञा स्त्री. [स. अहल्या] गौतम ऋषि
की पत्नी जिसका सतीत्व इन्द्र ने अष्ट किया था
और जो पति के शाप से पत्थर की हो गयी थी । अ.
रामचन्द्रजी के चरण-स्पर्श से इसका उद्धार हुआ ।

अहिवात—सज्ञा पु. [स. अभिवाद्य, प्रा. अहिवाद]
सौभाग्य, सोहाग । उ.—(जब) कान्ह काली ल
चले, तब नारि बिनवै देव हो । चरि को
अहिवात दीजै, करै तुम्हरी सेव हा—५७७ ।

अहिसायी—सज्ञा पु. [स. अहि+हिं. शायी (स.
शायिन्)] शेषनाग की शैया पर सोनेवाले विष्णु ।
उ.—हरिहर संकर नमो नमो । अहिसायी, अहिग्रंग-
बिभूषन, अमित दान, बल-विष-हारी—१०-१७१ ।

अहीर—सज्ञा पु. [सं. आभीर] ग्वाला ।

अहीरी—सज्ञा स्त्री. [हिं. अहीरिन] ग्वालिन । उ.—
नैकहूँ न थकत पानि, निरदई अहीरी—३४८ ।

अहुटना—क्रि. अ. [स. हठ, हिं. हटना] हटना, दूर
होना ।

अहुटै—क्रि. अ. [हिं. अहुटना] दूर हो, हटे । उ.—
हम अबला अति दीन-हीन मति तुमही हो बिधि
योग । सूर बदन देखत ही अहुटै या सरीर को रोग ।

अहुटाना—क्रि. स. [हिं. अहुटना] हटाना, दूर बरग
भगाना ।

अहुठ—वि. [स. अध्युष्ठ, अर्द्ध मा. अड्डडुड] सदैव
तीन, तीन और आधा । उ.—(क) गिरि-गर
परत, जाति नहि उलँधी, अति स्रम होत नघावत ।
अहुठ पैग बसुधा सब कीनी, धाम अवधि बिरमावत
१०-१२५ । (ख) जब मोहन कर गही मथानी ।
। कबहुँक अहुठ परग करि बसुधा, कबहुँक
देहरि उलँधि न जानी ।

अहेर—सज्ञा पु. [म. आखेट] (१) शिकार, मृगया ।
(२) वह जिसका शिकार खेला जाय ।

अहेरी—सज्ञा पु. [हिं. अहेर] शिकारी, आखेटक ।
उ.—लयौ घेरि मनो मृग चहुँ दिस त अचूक
अहेरी नहि अजान—२८३८ ।

अहेरौ—सज्ञा पु. [स. आखेट, हिं. अहेर] अहेर,
शिकार, भोजन । उ.—केतिक सख जुगै जुग बीत,
मानव असुर अहेरौ—६-१३२ ।

अहै—क्रि. अ. [स. अस्ति, हिं. अहना] वर्तमान है ।
उ.—(क) राखन हार अहै कोउ और, सान
धरे भुज चारि—७-३ । (ख) मुरली म जीद-
प्राण बसत अहै मेरी—१०-२८४ ।

अहो—अव्य, [सं.] विस्मयादिबोधक अव्यय जिसका प्रयोग
करुणा, खेद, प्रशंसा, हर्ष, विस्मय आदि सूचित करने
के लिए होता है । कभी कभी संबोधन की तरह भी प्रयुक्त
होता है । उ.—(क) जिन तन-जन माहि प्राय
समरपे, सील, सुभाव, बडाई । ताको विषम विषाद
अहो मुनि मोपै सह्यो न जाई—६-७ । (ख) अहो
महरि पालागन मेरी, मैं तुमरो सुत देखत अहै—
१०-५१ । (ग) नद कह्यो घर जाहु कन्हाई । रो

मे तुम जैहो जिनि कहूँ अहो महारि सुत लेहु बुलाई—

६१२।

अहो—सज्ञा पु. [सं. अहि] सर्ग, साँग। उ.—सुधि न
रहो अति गलित गात भयौ जनु डसि गयो अहो—
२६६७।

आ

आ—देवनागरी वर्णमाला का दूसरा अक्षर। यह 'अ' का
दीर्घ रूप है।

आ.क.—सज्ञा पु. [सं. अंक] (१) अंक, चिह्न। (२)
दाग, धब्बा। उ.—कनर मिलो लोचन बरषत अति
हुता मुख के छबि रोयो। राहु केतु मानो सुमीड़ि
निधु आँक छुटावत धोयो—३४८२। (३) संख्या
का चिह्न। (४) अक्षर (५) निश्चय, सिद्धांत।
(६) अंश, भाग, हिस्सा। (७) बार, दफा।
उ.—एकहु आँक न हरि भजे, (८) रे सठ, सूर
गंवार—१-३२५। (९) गोद।

आँकना—क्रि. स. [स. अकन] (१) चिह्ना या
अंकित करना। (२) मूल्य अनुमानना। (३)
निश्चित करना, ठहराना।

आँकल—वि. [स. आकर=गान (गहरी), हि. आँकर]
(१) गहरी। (२) बहुत अधिक।

आँस—सज्ञा पु. [स. अकुश] अंकुश।

आँख—सज्ञा स्त्री. [म. अक्षि, प्रा. अक्खि, प. अँक्ख]
लोचन, नेत्र, नयन।

आँखी—सज्ञा स्त्री [हि. आँख+डी (प्रत्य.)] आँख।

आँख—सज्ञा स्त्री. [हि. आँख] नेत्र, लोचन। उ.—
हरि ग्वालनि मिलि खेलन लागे बन मे आँखि
मिचाइ—२३७८।

मुहा०—आवत न आँखि तर—आँख तले नहीं
आता, तुच्छ मानता है, कुछ नहीं समझता। उ.—
नख-सिख लौ मेरी यह देही है पाप की जहाज।
और पतिन आवत न आँखि तर देत अनौ साज—
१६६। आँख गडि लागत—(१) खटकता है,
चुभता है, बुरा लगता है। (२) मन में बसता है,
ध्यान पर चढ़ता है, पसंद आता है। उ.—जाहु
भले हो कान्हू दान अँग-अँग को माँगत। हमरी

यौवन रूप आँखि इनके गडि लागत—१०२५।

आखि दिखावत—सक्रोध देखता है, क्रोध से घूरता
है, कोप जताता है। उ.—आँखि दिखावत हौ जु कहँ
तु। करिहौ कहा रिसाय। हम अपनो भायौ करि लैहै
छगहु कँअरि के पाय—२४४७ (७)। आँखि धूरि
दनी—धोखा दिया, भ्रम में डाला। उ.—हरि की
माया कोउ न जानै आँखि धूरि सी दीनी। लाल
ढिगनि की सारी ताको पीत उठनियाँ कीनी—६६४।
धूरि दै आँखि—आँख में धूल मोंककर, धोखा देकर,
भ्रम में डालकर। उ.—साँइ अमृत अब पीवति मुरली
सगहिन के सिर नाखि। लिए छँडाइ निडर सुनि
सूरज वेनु धरि दै आँखि। आँखि लगी—(१) प्रीति
हुई। (२) टकटकी बँधी, दृष्टि जम गयी। (३) नींद
आयी, मपकी लगी। उ.—बहुरचौ भूलि न आँखि
लगी। सुपेनेहू के सुख न सहि सकी नींद जगाइ
भगी—२७९०। देखौ भरि आँखि—आँख भरकर
देखूँ, इच्छा भर देखूँ, देखकर अवा जाऊँ। उ.—
अवकै जो परचौ करि पावी अरु देखो भर आँखि।
सूरदास सोने के पानी मढौ चोच अरु पाँखि—६-
१६४। आँखि नहि मारत—पलक तहीं मपकाते,
जरा नहीं थकते, विश्राम नहीं करते, भयभीत नहीं
होते। उ.—जहि जल तून, पसु दारु बूडि, अपनै
साँ औरन पारत। तिहि जल गाजत महाबीर सब
तरत आँखि नहि मारत—६-११२।

आँखिनि—सज्ञा स्त्री सवि. [हि. आँख+नि (प्रत्य.)]
आँखों में, नेत्रों में।

मुहा०—आँखिनि धूरि दई—आँखों में धूल मोंकी,
सरासर धोखा दिया, भ्रम में डाला। उ.—ज्यों
मधुमाखी सँचति निरतर, बन की ओट लई।
बाकुल होइ हरे ज्यौ सरबस आँखिनि धूरि दई—
१-५०।

आँगी—सज्ञा स्त्री [हि. आँख] नेत्र, लोचन।

आँग—सज्ञा पु. [स. अंग] (१) अंग, शरीर। (२)
कुच, स्तन।

आँगन—सज्ञा पु. [स. अगण] घर का चौक, अजिर।

आँगिरस—सज्ञा पु. [सं.] अंगिरा के पुत्र बृहस्पति,
उतथ्य और संवर्त।

अँगो—मज्ञा स्त्री. [सं. अंगिका, प्रा. अंगिआ]
अंगिया, चोली ।

अँगुर—सज्ञा पु. [सं. अंगुली] अंगुल ।

अँगुरी—सज्ञा स्त्री. [सं. अंगुली, हि. उँगली] उँगली ।
उ.—कहाँ मेरे कान्ह की तनक सी आँगुरी, बटे
बडे नखानि के चिन्ह तेरे—१०-३०७ ।

अँच—सज्ञा स्त्री. [सं. अचि=आग की लपट, पा.
अचिच] (१) गरमी, ताप । उ.—मेरे दधि को
हरि स्वाद न पाया । बोरी धेनु दुहाइ छाँन पय मधुर
आँच मे ओटि सिरायो । (२) आग, अग्नि । (३)
ताव । (४) तेज, प्रताप । (५) विपति, सकट,
संताप । उ.—जाएँ कर बाजि-बाग दाह्न हें बैठ ।
हाँकन हरि हाँक देन, गरजत उग्री ऐठ । छाता लौ
छाँह किए साभित हरि छाती । लागन नहि देत
कहूँ समर अँच ताती—१-२३ । (६) प्रेम, मोह ।

अँचना—क्रि. स. [हि. अँच] जलाना, तपाना ।

अँवर—सज्ञा पु. [सं. अचल हि. अँवल,] अंचल,
अँवल । उ.—स्रवन मुँदि, मुख आचर ढाँप्यो, अरे
निसाचर, चोर—६-८३ ।

अँचल—सज्ञा पु. [सं. अचल] (१) स्त्रियाँ की
धोती, साडो आदि का सामने का भाग जो छाती
पर रहता है । (२) पल्ला, छोर ।

अँची—सज्ञा स्त्री. [हि. अँच] (१) तेज, प्रताप ।
(२) क्रोध । उ.—ब्रह्म रुद्र उर उरत काल कँ,
काल डरत भ्रू भँग की अँची—१-१८ ।

अँचे—क्रि. स. [हि. अँच, अँचना] जलाया, तपाया ।
उ.—प्रीति के बचन बाच विरह अनल अँचे अपनी
गरजे का तुम एक पाइ नाचे—२००३ ।

अँजति—क्रि. स. [सं. अजन] अंजन लगानी है ।
उ.—(क) रवि ससि कोटि कला अवलोकत त्रिभिध
ताप छय गाइ । सो अंजन कर लै सुन-चच्छुहिँ
आँजति जसुमति माइ—८८७ । (ख) निमिष निमिष
मे धावति आँजति सिलए आवन रग—१० ३२५ ।

अँजन—सज्ञा पु. [हि. अजन] काजल, अजन ।

अँजना—क्रि. स. [हि. अजन] अजन लगाना ।

अँजि—क्रि. स. [सं. अजन, हि. अँजना] अंजन
लगाकर । उ.—गन्हँ गरै सोहति मनि-माला, अग

अभूपन अँगुरिनि गोल । सिर चोतनी, डिठौना दीन्ही
आँखि आँजि पहिराइ निचोल—१०-६४ ।

अँजै—क्रि. स. [हि. अंजन, अँजना] अंजन या काजल
लगाकर । उ.—मूरदास सोभा क्यो पात आँखि
आधरी अँजै—३२३० ।

अँट—सज्ञा पु. [हि. अटी] (१) दाँव, चश । (२)
गाँठ, गिरह ।

अँटना—क्रि. अ. [हि. अँटना] (१) समाना, अँटना ।
(२) मिलना । (३) पहुँचना ।

अँदू—सज्ञा पु. [सं. अदू=बड़ी] (१) लोहे का कड़ा,
बेड़ी । (२) दाँवने की जंजीर ।

अँध—सज्ञा स्त्री. [सं. अंध] (१) अंधेरा, धुंध, (२)
अंधा । (३) मतवाला, कामाँव । उ.—सूर का मन
हृद्यी कागिनी, सेज छाडि भू सोयी । चारु साहिनी
आइ आँच कियौ, तब नख-सिख तँ रोयी—१-१३ ।

अँधना—क्रि. अ. [हि. अँधी] सवेग आक्रमण करना ।

अँधर, अँधरा—वि. [सं. अंध] अंधा, नेत्रहीन ।

अँधरि, अँधरी—सज्ञा स्त्री. [हि. अँधरी] अंधी
स्त्री । उ.—(क) कच खुवि आधरि काजर कानी
नकटी पहिरे बसरि—३०२५ । (ख) मूरदाम माभा
क्यौँ पावत आँखि अँधरी अँजै—३२३० ।

अँधरो—वि. [सं. अंध, हि. अंधा] अंधा । उ.—सूर,
कूर, अँधरौ, मैँ द्वार परचौ गाऊँ—१-१६६ ।

अँधरंभ—सज्ञा पु. [हि. अँधर+आरंभ] अँधरवाता ।

अँधी—सज्ञा स्त्री. [सं. अंध=अँधेरा] अंधड़, अंधबाव ।

अँध—सज्ञा पु. [सं. आम्र, हि. आम] आम । उ.—
(क) सालन सकल कपूर सुवासत । स्वाद लेत
सु दर हरि आसत । अँध आदि दै सबै सँधाने । सब
चाखे गोबर्द्धन-राने—३६६ । (ख) नीव लगाइ अँध
क्यो खावै—१०४२ । (ग) मनौ अँध दल मोर देखिकै
कुहुकि कोकिला बानी हो—१५५६ ।

अँवड़ना—क्रि. अ. [हि. उमड़ना] उमड़ना ।

अँवड़ा—वि. [हि. उमड़ना] गहरा ।

अँवरे—सज्ञा पु. बहु. [सं. आमलक, प्रा. आमलओ,
हि. अँवला] अँवले ।

अँवा—सज्ञा पु. [सं. आपाक] गड्ढा जिसमें रक्क
कुम्हार मिट्टी के बरतन पकाते हैं ।

आँस—संज्ञा स्त्री. [सं. काश=क्षत, हि. गौंस] वेदना, पीड़ा ।

आँसी—संज्ञा स्त्री. [सं. अंश=भाग] इष्ट-मित्रों के यहाँ भेजी जानेवाली मिठाई, भाजी ।

आँसु—संज्ञा पुं. [सं. अश्रु, पा० प्रा. अस्सु] अश्रु । उ.—निज कर चरन पखारि प्रेम-रस आनंद-आँसु ढरे—६-१७१ ।

आँसुवनि—संज्ञा पुं. बहु० [सं. अश्रु, पा. प्रा० अस्सु, हि. आँसू] आँसुओं से ।

मुहा०—आँसुवनि मुख धोवै—बहुत रो रहा है, बड़ा विलाप कर रहा है । उ.—देखो माई कान्ह हिलक्रियनि रोवै । इतनक मुख माखन लपटान्यौ, डरनि आँसुवनि धोवै—३४७ ।

आँसू—संज्ञा पुं० [सं. अश्रु, पा० प्रा० अस्सु] अश्रु ।

आ—अव्य० [स.] सीमा, व्याप्ति आदि सूचक अव्यय जैसे—आमरण, आजीवन ।

उप—यह प्रायः 'गति' सूचक धातुओं के पूर्व जुड़कर अर्थ में विशेषता लाता है । जैसे—आगमन ।

संज्ञा पुं.—ब्रह्मा ।

आइ—क्रि. अ. [हिं आना] आकर, पहुँचकर । उ.—
(क) कहा बिदुर की जाति बरन है, आइ साग लियौ मंगी—१-२१ । (ख) सुख में आइ सब मिलि बैठत, रहत चहुँदिसि घेरे—१-७६ ।

मुहा०—आइ परै—आ जाय, उपस्थित हो, सहना पड़े । उ.—सुख दुख कीरति भाग आपने आइ परै सो गहियै—१-६२ ।

संज्ञा स्त्री० [सं. आयु] आयु, उम्र । उ.—(क) सतयुग लाख बरस की आइ । त्रेता दस सहस्र कहि गाइ—१-२३० । (ख) पाँच बरस की भई जब आइ । सडा-गर्कहि लियौ बुलाइ—७-२ । (ग) बोलै जाम बोलि तब आयौ, सुनहुँ वंस तव आइ सरथौ—१०-५६ ।

आइयै—क्रि. अ. [हिं आना] (आदरसूचक संबोधन) आगमन कीजिए, पधारिए । उ.—टेरत हैं बार-बार आइयै कन्हारै—६१६ ।

आइयो—क्रि. अ. [हिं आना] आये है । उ.—कंस-कारन गेद खेलत कमल कारन आइयो—५७७ ।

आइस, आइसु—संज्ञा स्त्री [सं. आयसु] आज्ञा ।

आइहैं—क्रि. अ. भवि. बहु. [हिं. आना] आवेंगे ।

यौ.—लै आइहैं—ले आवेंगे । उ.—नाग नाथि लै आइहैं, तब कहियौ बलराम—५८६ ।

आइहै—क्रि. अ. भवि. एक. [हिं आना] आयगा । उ.—सर्प इक आइहै बहुरि तुम्हरे निकट—८-१६ ।

आई—क्रि. अ. स्त्री. [हिं आना] स्थल-विशेष पर एकत्र हुई या पहुँचीं । उ.—आजु बधायौ नंदराइ कै, गावहु मंगलचार । आई मंगल-कलस साजिकै, दधि फल नूतन-डार—१०-२७ ।

आई—क्रि. अ. [पु. हिं आवना, हिं आना] 'आना' क्रिया का भूतकालिक स्त्रीलिंग रूप । उ.—वकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुण्ठ पठाई—१-३ ।

मुहा०—जो मुख आई—बिना सोचे-समझे जो बात ध्यान में आयी, कह दी । उ.—भवन गई आतुर है नागरि जे आई मुख सबै कही—२१४२ ।

संज्ञा स्त्री—[सं. आयु] आयु, जीवन ।

आउ—क्रि. अ. [हिं आना] आ, आ जा, आओ । उ.—हरि की सरन महेँ तू आउ—१-३१४ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. आयु] आयु, उम्र, जीवन ।

आउज—संज्ञा पुं [सं. वाद्य, प्रा. वज] ताशा नामक बाजा । उ.—बीना-भौंक-पखाउज-आउज और राजसी भोग । पुहुप-प्रजंक परी नवजोवनि, सुखपरिमल-संजोग—६-७५ ।

आउबाउ—संज्ञा पुं. [सं. वायु=हवा] अंड-बंड, निरर्थक प्रलाप ।

आऊँ—क्रि. अ. [हिं आना] आगमन करूँ । उ.—नौका हौ नाही लै आऊँ—६-४१ ।

आऊँगो—क्रि. अ. भवि [हिं आना] आऊँगा । उ.—स्याम बाम को सुख दै बोलै रैन तुम्हारे आऊँगो—१६४४ ।

आऊ—क्रि. अ. [हिं आना] । आये, आओ । उ.—मैया बहुत बुरै बलदाऊ । कहन लग्यौ बन बड़ौ तमासौ, सब मौड़ा मिलि आऊ—४८१ ।

आए—क्रि. अ. [पु. हिं आवना, हिं आना] 'आना' क्रिया का भूतकालिक बहुवचन अथवा आदरसूचक

रूप । उ.—संतत भक्तमीत-हितकारी, स्याम विदुर
कै आए—१-१३ ।

आएँ—क्रि. अ. [हि. आना] आने पर, आ जाने से ।
उ.—पकरथौ चीर दुष्ट दुस्सासन, बिलख बदन भइ
डौलै । जैसे राहु नीच ढिग आए, चन्द्र-किरन
भक्त-भौलै—१-२५६ ।

आक—संज्ञा पुं. [सं. अर्क, प्रा. अक] मदार, अकौआ ।
उ.—जिहि दुहि धेनु औटि पय चाख्यो ते मुख परसै
छाक । ज्यौ मधुकर मधुकमलकोश तजि रुचि मानत
है आक—पृ. ३३३ ।

आकबाक—संज्ञा पुं. [सं. वाक्य] अंडबंड या ऊटपटाँग
बात ।

आकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खानि, उत्पत्ति-स्थान ।
(२) भंडार । (३) भेद, प्रकार ।

वि०—(१) श्रेष्ठ, उत्तम । (२) अधिक । (३) दक्ष,
कुशल ।

आकरखना—क्रि. स. [हिं. आकर्षना] आकर्षित
करना ।

आकरषन—संज्ञा पुं. [सं. आकर्षण] खिंचाव ।

क्रि. प्र.—करी—खींची । उ.—तिन माया आकरषन
करी । तब वह दृष्टि नृपति कै परी—६-२ ।

आकरषि—क्रि. स. [सं. आकर्षण, हि. आकर्षना]
खींचकर । आकर्षित करके । उ.—सूर-प्रभु आकरषि
ताते सकर्षन है नाम—२५८२ । (ख) कालिंदी
को निकट बुलायो जल-क्रीड़ा के काज । लियौ
आकरषि एक छन में हलिकति समरथ यदुराज ।

आकर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] खिंचाव ।

आकर्षक—वि. [सं.] अपनी ओर खींचनेवाला ।

आकर्षण—संज्ञा पुं. [सं.] खिंचाव ।

आकर्षन—संज्ञा पुं. [सं. आकर्षण] खिंचाव ।

आकर्षना—क्रि. स. [सं. आकर्षण] खींचना ।

आकर्ष्यौ—क्रि. स. [सं. आकर्षण, हि. आकर्षना]
आकर्षित किया, खींचा । उ.—(क) सजन कुटुंब
परिजन बड़े (रे) सुत-दारा-धन-धाम । महामूढ
विषयी भयौ, (रे) चित आकर्ष्यौ काम—१-३२५ ।

(ख) चित आकर्ष्यौ नंद-सुत मुरली मधुर
बजाइ—११८२ ।

आकलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रहण, लेना । (२)
संग्रह, संचय । (३) गिनती करना ।

आकली—संज्ञा स्त्री. [सं. आकुल + ई (प्रत्य.)] आकुलता,
बेचैनी ।

आकसमात, आकस्मात्—क्रि. वि. [सं. अकस्मात्]
सहसा, एकाएक ।

आकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बनावट, संघटन । उ—
(क) सागर पर गिरि, गिर पर अंबर, कपि घन कै
आकार—६-१२४ । (ख) इत धरनि उत ब्योम
कै बिच गुहा कै आकार । पैठि बदन बिदारि डारथौ
अति भये बिस्तार—४२७ । (२) आकृति, मूर्ति ।
(३) तरह, भाँति, प्रकार, रूप । उ.—सुंदर कर
आनन समीप अति राजत इहि आकार । जलरुह
मनौ बैर विधु सौ तजि, मिलत लए उपहार—
१०-२८३ । (४) डील-डौल ।

आकारि—संज्ञा पुं. [सं. आकार] स्वरूप, आकृति, मूर्ति,
रूप । उ.—एक मास यह है नारि । दूजे मास
पुरुष आकारि—६-२ ।

आकारी—वि. [सं. आकारण=आह्वान] बुलानेवाला ।

आकास—संज्ञा पुं. [सं. आकाश] (१) अंतरिक्ष, गगन ।
(२) शून्य स्थान जहाँ चंद्र, सूर्य आदि स्थित
है । उ.—लंका राज बिभीषन राजै, ध्रुव आकास
बिराजै—१-३६ ।

मुहा.—बाँधति आकास—अनहोनी या असंभव बात
कहती हो । उ.—कहा कहति डरपाइ कछू मेरे
घटि जैहै । तुम बाँधति आकास बात झूठी को सैहै ।

आकासकुसुम—संज्ञा पुं. [सं. आकाशकुसुम] (१)
आकाश का फूल । (२) अनहोनी या असंभव बात ।

आकाशबानी—संज्ञा स्त्री. [सं. आकाशवाणी] देववाणी,
आकाशवाणी । उ.—सूर आकासबानी भई तबै तहँ
यहै बैदेहि है, कर जुहारा—६-७६ ।

आकुलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] व्याकुलता, घबराहट ।
उ.—कबहुँक बिस्ह जरति अति व्याकुल आकुलता
मन मो अति—१६४६ ।

आकुलित—वि. [सं०] (१) व्याकुल घबराया हुआ ।
(२) व्याप्त ।

आकृति—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) बनावट, गठन, ढाँचा, अवयव । (२) मूर्ति, रूप । उ.—जानु सुजघन करभ-
कर आकृति, कटि-प्रेश किकिनि राजै—१-६६ ।
(३) मुख (४) मुख का भाव, चेष्टा ।

आक्रमण—संज्ञा पुं. [सं०] (१) चढ़ाई, धावा । (२)
आक्षेप करना, निंदा करना ।

आक्रोश—संज्ञा पुं. [सं०] कोसना, गाली देना ।

आक्षेप—संज्ञा पुं. [सं०] (१) आरोप, दोष लगाना ।
(२) कटूक्ति, निन्दा ।

आखत—संज्ञा पुं. [सं० अक्षत, प्रा० अक्खत] अक्षत ।

आखना—क्रि. स. [सं० आख्यान, प्रा० अक्खान, पं०
आखना] कहना, बोलना ।

क्रि० स० [सं० आकाक्षा] चाहना, इच्छा करना ।

क्रि० स० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि = आँख]
देखना, ताकना ।

आखर—संज्ञा पुं. [सं० अक्षर, प्रा० अक्खर] अक्षर ।

उ.—गौरि गनेस्वर बोनऊ (हो) देवी सारद तोहि ।

गावौ हरि कौ सोहिलौ (हो), मन-आखर दै मोहि—
१०-४० ।

आखा—वि. [सं० अक्षय, प्रा० अक्खय] (१) कुल, पूरा ।
(२) अनगढ़ा ।

आखिर—वि. [फा. आखिर] (१) अंतिम, पिछला ।
(२) समाप्त ।

संज्ञा पुं.—अंत । (२) परिणाम, फल ।

क्रि. वि.—(१) अंत में, अंत को । उ.—औरन सी
मोहू को जानति मोते बहुरि रमावैगी । सूर स्याम
तोहि बहुरि मिलैहौ आखिर हौ प्रगटावैगी—२१७७ ।

(२) हार मानकर, लाचार होकर । (३) अवश्य । (४)
भला, अच्छा, खैर ।

आखेट संज्ञा पुं. [सं० अहेर, शिकार] शिकार ।

आखेटक—संज्ञा पुं. [सं०] अहेर, मृगया ।

वि.—शिकारी, अहेरी ।

आखो—वि. [सं० अक्षय, प्रा० अक्खय, हि. आखा] कुल,
पूरा, समस्त । उ.—कहिबे जीय न कछू सक राखो ।

लावा मेलि दए हैं तुमको बकत रहो दिन आखो
—३०२१ ।

आख्या—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) कीर्ति, यश । (२)
व्याख्या ।

आख्यात—वि. [सं०] (१) प्रसिद्ध, विख्यात । (२)
कहा हुआ ।

आख्यान—संज्ञा पुं. [सं०] (१) वर्णन, वृत्तांत । (२)
कथा, कहानी ।

आख्यानक—संज्ञा पुं. [सं०] (१) वर्णन, वृत्तांत । (२)
कथा, कहानी । (३) पूर्व विवरण ।

आगंतुक—संज्ञा पुं. [सं०] अतिथि, पाहुना, आनेवाला
व्यक्ति ।

आग—संज्ञा स्त्री. [सं० अग्नि, प्रा० अग्नि] अग्नि, वसुंदर ।
उ.—तप कीन्हैं सो दैहैं आग । ता सेती तुम कीनौ
जाग—६-२ ।

संज्ञा पुं. [सं० अग्र] ऊख का अगौरा । उ.—
मिल्यौ सुहायौ साथ स्याम कौ कहाँ हंस कहाँ काग ।
सूरदास प्रभु ऊख छौड़ि कै चतुर चचोरत आग—
३०६५ ।

आगत—वि. [सं०] आया हुआ, प्राप्त, उपस्थित ।
संज्ञा पुं.—मेहमान, अतिथि ।

आगत स्वागत—संज्ञा पुं. [सं० आगत+स्वागत] आये
हुए व्यक्ति का आदर-सत्कार, आवभगत । उ.—
मेरी कही साँचि तुम जानो कीजै आगत स्वागत ।
सूर स्याम राधावर ऐसे प्रीति हिये अनुरागत—१४८२ ।

आगम—संज्ञा पुं. [सं०] (१) अवाँई, आगमन । उ.—
(क) श्री मथुरा ऐसी आजु बनी । देखहु हरि जैसे
पति आगम सजति सिंगार धनी—२५६१ । (ख)
अविनासी कौ आगम जान्यौ सकल देव अनुरागी—१०-४ ।
(ग) गिरि गिरि परत बदन तै उर पर हैं दधि-सुत
के बिदु । मानहुँ सुभग सुधाकन बरसत प्रियजन
आगम इंदु—१०-२८३ । (घ) स्याम कह्यौ सब
सखन सौ लावहु गोधन फेरि । सध्या कौ आगम
भयौ ब्रज तन हँकौ हेरि । (ङ) निसि आगम
श्रीदामा के सँग नाचत प्रभुहि देखावौ—
३४१० । (२) आनेवाला समय । (३) होनहार,

भवितव्यता । (४) समागम, संगम । (५) शास्त्र ।

उ.—भजि मन नंदनंदन चरन । परम पकज अति मनोहर, सफल सुख के करन । सनक संकर ध्यान धारत, निगम-आगम बरन—१.३०८ । (६) उत्पत्ति ।

उ.—प्रथम समागम आनंद आगम दूलह वर दुलहिनी दुलारी—१० उ.—३६ । (७) नीति ।

वि. [सं] आनेवाला, आगामी । उ.—दर्शन दियौ कृपा करि मोहन बेगि दियौ बरदान । आगम कल्प रमन तुव है है श्रीमुख कही बखान ।

आगमन—संज्ञा पुं. [सं] अवाड़े, आना ।

आगमवाणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] भविष्यवाणी ।

आगमी—संज्ञा पुं. [सं. आगम=भविष्य] ज्योतिषी ।

आगर—संज्ञा पुं. [सं आकर=खान] (१) खान, आकर । (२) समूह, ढेर । उ.—सूर स्याम ऐसे गुन-आगर नागरि बहुति रिझाई (हो)—७०० । (३) कोष, निधि । उ—सूर स्याम बिनु क्यों मन राखौ तन जोवन को आगर—२६८० ।

संज्ञा पुं. [सं. अर्गल=व्योडा] व्योडा, अगरी । उ.—आगर एक लोहजरित लीन्हो बलगड । दुहूँ करन असुर हयौ भयौ मोंस पिंड—६-६६ ।

संज्ञा पुं. [सं. आगर=घर] (१) घर । (२) छप्पर, छाजन ।

वि. [सं. आकर=श्रेष्ठ] (१) श्रेष्ठ, उत्तम । उ.—(क) सोचि विचारि सकल स्तुति-सम्मति हरितैं और न नागर—१-६१ । (ख) द्वारैं ठाढ़े हैं द्विजबावन । चारौ बेद पढत मुख आगर, अति सुकंठ सुर गावन—८-१३ । (२) चतुर, दक्ष, कुशल ।

आगरी—संज्ञा. स्त्री. [सं. आकर=खान, हि. पुं. आगर] समूह, ढेर । उ.—(क) मोहन तेरे अधीन भये री । इति रिस कबते कीजत री गुन आगरी नागरी—२२५० । (ख) मोहन ते रसरूप आगरी करति न जानि निकाई—१२३५ ।

वि.—समृद्ध, संपन्न, पूर्ण, भरी-पुरी । उ.—तेरे अनउत्तर सुनि सुनि स्याम हंसि हंसि देत नैक चितै इत भाग आगरी—२२५० ।

आगरे—संज्ञा पुं. [सं. आकर=खान, हि, आगर]

समूह, ढेर । उ.—(क) सूर एक ते एक आगरे वां मथुरा की खानि—३०५१ । (ख) मधुकर जानत हैं सब कोऊ । जैसे तुम अरु सखा तिहारे गुनन-आगरे दोऊ—३३५३ ।

आगल—संज्ञा पुं. [सं अर्गल] अगरी, व्योडा ।

आगवन—संज्ञा पुं. [सं. आगमन] आना ।

आगा—संज्ञा पुं. [सं अग्र, प्रा. अग्ग] (१) छाती, वक्षस्थल । (२) ललाट, माथा ।

आगान—संज्ञा पुं. [स. आ+गान=वात] प्रसंग, वृत्तांत ।

आगामी—वि. [सं. आगामिन्] होनहार, आनेवाला ।

आगार—संज्ञा पुं. [सं] (१) घर, मंदिर । (२) स्थान । (३) निधि, कोष ।

आगि—संज्ञा स्त्री. [सं. अग्नि, हि. आग] आग, आँच । उ.—इहि उर आनि रूप देखे की आगि उठै अगि-आई—३३४३ ।

आगिल—वि. [हि. आगे] (१) आगे का, अगला । (२) भावी, होनेवाला ।

आगिला—वि. [हि. अगला] (१) आगे का । (२) आनेवाला ।

आगिलौ—वि. [हि. आगे, अगला] भविष्य का होने वाला, आगे आनेवाला । उ.—जौ तू राम-नाम धन धरतौ । श्रवकौ जन्म, आगिलौ तेरौ, दोऊ जनम सुधरतौ—१-२६७ ।

आगिवर्त—संज्ञा पुं. [सं. अग्निवर्त] एक प्रकार के मेघ । उ.—सुनत मेघवर्तक सजि सैन लै आए । जल-वर्त, वारिवर्त, पवनवर्त, बज्रवर्त आगिवर्त, जलद संग आए ।

आगी—क्रि. वि. [सं. अग्र, प्रा. अग्ग, हि. आगे] आगे, पहले, प्रथम । उ.—ग्वालनि संग तुरत वै धाई । अपने मन मैं हर्ष बढाई । काहू पुरुष निवारयौ आइ । कहाँ जाति है री अतुराइ । तिन तौ कह्यौ न कीन्हौ कानी । तन तजि चली बिरह अकुलानी । धन्य धन्य वै परम सभागी । मिली जाइ सबहिनि तै आगी—८०० ।

आगे—क्रि. वि. [सं. अग्र, प्रा. अग्ग०] (१) और दूर पर, और बढ़कर । (२) जीते जी, जीवन में । भविष्य के लिए । उ.—पछिले कर्म सम्हारत नाही करत नहीं

कहू आगे—१-६१ । (४) समक्ष, सम्मुख. सामने ।
उ.—(क) श्रीदामा चले रोइ जाइ कहिहौं नंद आगे
—५८६ । (ख) मोंगि लेहु एही विधि मोसे मो
आगे तुम खाहू—१००४ । (ग) अब न देहि उराहनो
जसुमतिहि आगे जाइ—२७५६ । (४) अनंतर, बाद ।
(६) पूर्व, पहले । उ.—आगे हूँ के लोग भले हो पर-
हित लागे डोलत—३३६३ । (७) अतिरिक्त,
अधिक । (८) तुलना, समता, बराबरी । उ.—पूजत
सुरपति तिनके आगे—१०१६ ।

मुहा.—आगेकियौ—आगे बढ़ाया, चलाया । उ.—चक्र
सुदर्शन आगे कियौ । कोटिक सूर्य प्रकाशित भयौ ।
आगे लेन सिधायौ—स्वागत किया, अभ्यर्थना की ।
उ—हरि आगमन जानि कै भीषम आगे
लेन सिधायौ । आगे है लयौ—आगे बढ़कर स्वागत
किया । उ—तब ब्रजराज सहित सब गोपिन आगे है
लयौ—३४४४ ।

आगे—क्रि. वि [सं. अग्र, प्रा. अग, हि. आगे] (१) समक्ष,
सम्मुख, सामने । उ.—माधौ जू, यह मेरी इक गाइ ।
..... । अब आज तैं आप आगे दई, लै आइए
चराइ—१-५१ । (ख) माधौ, नैकु हटकौ गाइ ।
..... छहौ रस जौ धरौ आगे, तऊ न गंध सुहाइ
१-५६ । (ग) दोउ भुज धरि गाढै करि लीन्हे गई
महिर के आगे—१०-३१७ । (२) भविष्य में, आगे
चलकर । उ.—(क) कहत हे आगे जपिहैं राम ।
बीचहि भई और की औरे, पर्यौ काल सौं काम—
१-५७ । (ख) पाछे भयो न आगे हैहै, सब पतितनि
सिरताज—१६६ । (ग) यह तौ कथा चलैगी आगे सब
पतितनि मै हौंसी—१-१६२ । (३) और दूर, और
बढ़कर । उ.—यह कहि ऊधव आगे चले—३-४ ।

आगौन—संज्ञा पुं. [सं. आगमन, प्रा. आगवन] अवाई,
आना ।

आग्नेय—वि. [सं.] (१) अग्नि का (२) अग्नि से उत्पन्न,
अग्नि-जनित ।

आग्यौ—क्रि. वि. [सं. अग्र, प्रा. अग, हि. आगे] आगे,
भविष्य में ।

वि. [हि. आग] दग्ध, दुखित, पीड़ित ।

उ.—तौ तुम कोऊ तारथौ नाहिन जौ मोसां पतित न
दाग्यौ । सवननि सुनि कहत न एकौ, सूर सुधारौ
आग्यौ—१-७३ ।

आग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनुरोध, हठ । (२)
तत्परता । (३) बल, आवेश ।

आघ—संज्ञा पुं. [सं. अर्ध, प्रा. अगध=मूल्य] मूल्य, दाम,
कीमत ।

आघात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धक्का, ठोकर । (२) शब्द,
ध्वनि, गूँज, गरज । उ.—(क) चढि गिरि-सिखर सब्द
उचर्यौ, गगन उठ्यौ आघात—६-७४ । (ख)
सागर पर गिरि, गिरि पर अबर, कपि घन कै आकार ।
गरज किलक आघात उठत, मनु दामिन पावक भार—
६-१२४ । (ग) महाप्रलय के मेघ उठि करि जहाँ तहाँ
आघात—१०-६४ । (२) मार, प्रहार, चोट, आक्रमण ।
उ.—सुनत घहरानि ब्रज लोग चक्रित भये, कहा
आघात धुनि करत आवै—१०-६२ ।

आघ्राण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूँघना (२) अघाना,
वृत्ति ।

आचमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल पीना । (२) शुद्धि
के लिए मुँह में जल डालना ।

आचरज—संज्ञा पुं. [हि. अचरज] आश्चर्य, विस्मय ।
उ—यमुना तट आइ अक्रूर अन्हार । स्याम बलराम
कौ रूप जल मे निरखि बहुरि रथ देखि आचरज
पाए—२५७० ।

आचरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) व्यवहार, चाल-चलन ।
(२) आचार-शुद्धि । (३) अनुष्ठान ।

आचरतौ—क्रि. स. [सं. आचरना] आचारण करता
व्यवहार करता । उ.—मुख मृदु बचन जानि मति
जानहु, सुद्ध पंथ पग धरतौ । कर्म-बासना छोड़ि कबहुं
नहि साप पाप आचरतौ—१-२०३ ।

आचरन—संज्ञा पुं. [सं. आचरण] आचरण-व्यवहार,
चालचलन ।

आचरना—क्रि. स. [सं. आचरण] आचरण या
व्यवहार करना ।

आचरित—वि. [सं.] किया हुआ ।

आचरु—क्रि. स. [हि. आचरना] व्यवहार में लाओ,

आचरण करो ।

आचानक—क्रि. वि. [हि. अचानक] सहसा, एकाएक ।

आचार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रहन-सहन, कार्य-व्यवहार । (२) चरित्र, चाल-चलन । (३) शील ।

उ.—(क) नृग-तृष्णा आचार-जगत जल, तासँग मन ललचावै । कहत जु सूरदास संतनि मिलि हरि-जस काहे न गावै—२-१३ । (ख) जो चहै मोहि मै ताहि नाही चहौ, असुर कौ राज थिर नाहि देखौ । तपसियन देखि कह्यौ, क्रोध इनमै बहुत, शानियनि मै न आचार पेखौ—८-८ ।

आचारज—संज्ञा पुं. [सं. आचार्य] आचार्य ।

आचारी—वि. [सं. आचारिन्] चरित्रवान, शुद्ध आचरण का ।

आचार्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुरोहित । (२) अध्यापक ।

अचिंत्य—वि. [सं.] चिंतन करने योग्य ।

संज्ञा पुं. [सं.] परमेश्वर, जो चिंतन में नहीं आ सकता ।

आच्छन्न—वि. [सं.] ढका हुआ, आवृत्त ।

आच्छादन—संज्ञा पुं. (१) ढकन । (२) ढकने का वस्त्र ।

आच्छादित—वि. [सं.] (१) ढका हुआ, आवृत्त ।

(२) छिपा हुआ । (३) सघन, घटायुक्त ।

उ.—निसि सम गगन भयो आच्छादित बरषि बरषि भर इंदु—६६७ ।

आछत—क्रि. वि. [अ. क्रि. 'आछना' का कृदंत रूप] होते हुए, विद्यमानता में, सामने ।

आछना—क्रि. वि. [सं. अस्=होना] (१) होना । (२) विद्यमान रहना ।

आछा—वि. पुं. [हि. अच्छा] अच्छा, भला ।

आछी—वि. स्त्री. [हि. पुं. अच्छा] भली, अच्छी, उत्तम, खरी । उ.—(क) लै पौढ़ी आँगन ही सुत कौ, छिटकि रही आछी उजियरिया—१०-२४६ । (ख) सूर लखि भई मुदित सुन्दर करत आछी उक्ति—सा. १४ ।

वि. [सं. अशिन] खानेवाला ।

आछे—वि. [हि. अच्छा] अच्छे, भले, उत्तम, श्रेष्ठ ।

उ.—(क) आछे मेरे लाल (हो), ऐसो आरि न कीजै—

१०-१६० । (ख) जैहैं बिगारि दौत ये आछे, तातैं कहि समुझावति—१०-२२२ । (ग) मोर-मुकुट मकराकृति कुंडल, नैन बिसाल कमल हैं आछे..... पहुँचे आइ स्याम ब्रजपुर मै, घरहि चले मोहन-बल-आछे—५०७ ।

क्रि. वि.—अच्छी तरह, खूब, बहुत । उ.—बोंसुरी बजाइ आछे रंग सौ मुरारी । सुनिकै धुनि छूटि गई शंकर की तारी—६४६ ।

आछै—क्रि. वि. [हि. अच्छा] अच्छी तरह, खूब । उ.—आछै आँख्यौ मेलि मिठाई, रुचि करि आँचवत क्यौ न नन्हैया—१०-२२६ ।

आछो, आछौ—वि. [हि. अच्छा] (१) श्रेष्ठ, उत्तम, भला । उ.—(क) आछौ गात अकारथ गारथौ । करी न प्रीति कमल-लोचन सौ, जनम-जुवा ज्यौ हारथौ—१-१०१ । (ख) तुरत मथ्यौ दधि लागत अति प्यारौ, और न भावै मोहि—४६४ (२) मंगलकारी, शुभ घड़ीवाला । उ.—आछो दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान करथौ—१०-८८ ।

आछ्यौ—वि. [हि. आछा, अच्छा] अच्छा, भला, सुन्दर । उ.—एक सखी हलधर बपु काछ्यौ । चढ़ी नीलपट ओढे आछ्यौ—२४१७ ।

आज—संज्ञा पुं. [सं. अज, पा. अज] (१) वर्तमान दिन, जो दिन बीत रहा है, वह । उ.—माधौ जू, यह मेरो इक गाइ । अब आज तै आप आगै दई लै आइयै चराइ—१-५१ । (२) वर्तमानकाल ।

क्रि. वि.—(१) वर्तमान दिन में । (२) वर्तमान समय में ।

आजन्म—क्रि. वि. [सं.] जीवनभर, जन्मभर ।

आजानबाहु—वि. [सं.] जिसके हाथ घुटने तक लंबे हों ।

आजानु—वि. [सं.] घुटने तक लंबा ।

आजीवन—क्रि. वि. [सं.] जीवन भर ।

आजीविका—संज्ञा. स्त्री. [सं.] वृत्त, रोजी, जीवन का सहारा । उ.—बहुरि सब प्रजा मिलि आइ नृप सौ कह्यौ, बिना आजीविका मरत सारी—४-११ ।

आजु—क्रि. वि. [सं. अद्य, पा. अज,] आज । उ.—आजु हौ एक-एक करि टरिहौ ।—११३४ ।

आज्ञा—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) आदेश, निर्देश (२) स्वीकृति, अनुमति ।
 आज्ञाकारी—वि. [स. आज्ञाकारिन्] आज्ञा माननेवाला ।
 उ—(क) सती सदा मम आज्ञाकारी—४-५ । (ख) पतिव्रता अति आज्ञाकारी—१० उ.-५६ ।
 आटना—क्रि. स. [स. अट] तोपना, दबाना ।
 आठ—वि. [स. अष्ट, प्रा. अट्ठ] चार की दूनी सूचक संख्या ।
 आठक—वि. [सं. अष्ट, पा. अट्ठ, +हि. एक] आठ, लगभग आठ ।
 आठवाँ—वि. [सं. अष्टम, प्रा. अट्ठव] अष्टम ।
 आठहूँ—वि. [सं. अष्ट, प्रा. अट्ठ, हि. आठ] आठों, कुल आठ । उ.—सूर स्याम सहाइ हैं तौ आठहूँ सिधि लेहि—१-३१४ ।
 आठें—सज्ञा स्त्री. [स. अष्टम] अष्टमी तिथि ।
 आठै—सज्ञा स्त्री. [स. अष्टमी] अष्टमी तिथि । उ.—
 (क) आठै कृष्ण पच्छ भादौ, महर कै दधिकादौ, मोतिनि बँधायौ बार महल मै जाइ कै—१०-३१ ।
 (ख) सबत सरस विभावन, भादौ, आठै तिथि, बुधवार । कृष्ण पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध निसि, हर्षन जोग उदार—१०-८६ । (ग) आठै सुनि सब साजि भए हरि होरी है—१४१० ।
 आठों—सज्ञा स्त्री. [स. अष्टम] अष्टमी तिथि ।
 आठ्य—वि. [स.] (१) संपन्न, पूर्ण, धनी । उ.—हुतौ आठ्य तब कियौ असद्व्यय, करी न ब्रज-वन-जात्र । पोषे नहि तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनौ गात्र—१-२१६ । (२) युक्त, विशिष्ट ।
 आडंबर—सज्ञा पुं. [स.] तड़क-भडक, टीमटाम, झूठा आयोजन । उ.—पहिरि पटंबर, करि आडंबर, यह तन झूठ सिगारथौ । काम-क्रोध मद-लोभ, तिया-रति, बहु बिधि काज बिगारथौ—१-३३६ । (२) गंभीर शब्द ।
 आड़—सज्ञा स्त्री. [स. अल=वारण, रोक] (१) ओट, परदा । (२) शरण, आश्रय । (३) रोक । (४) टेक, थूनी ।
 सज्ञा स्त्री. [स. आलि=रेखा] (१) माथे पर

लगाने की लंबी टिकली । (२) स्त्रियों के माथे का आडा तिलक । (३) माथे पर पहनने का एक गहना ।
 आड़ना—क्रि. स. [सं. अल्= वारण वरना] (१) रोकना, घेरना (२) बाँधना । (३) मना करना । (४) गिरवी रखना ।
 आढ़—सज्ञा स्त्री. [हि. आढ़] (१) ओट, पनाह । (२) सहारा, ठिकाना । (३) अंतर, बीच ।
 मुहा.—आढ़ आढ़ कियौ—टाल-मटोल किया, आज-कल किया । उ.—जारि मोहिनी आढ़ आढ़ कियौ (चार मोहिनी आइ आधु कियौ) तब नखसिख तै रोयौ—१-४३ ।
 वि. [स. आढ्य=सपन्न] कुशल, दक्ष ।
 सज्ञा स्त्री. [हि. आड=टीका] माथे पर पहनने का स्त्रियों के लिए एक आभूषण ।
 आतंक—सज्ञा पुं. [स.] (१) प्रताप, रोब । (२) भय, शंका ।
 आततायी—सज्ञा पुं. [स. आततायिन्] अत्याचारी ।
 आतप—सज्ञा पुं. [सं.] (१) धूप, घाम । (२) उष्णता । (३) सूर्य का प्रकाश ।
 आतपत्र—सज्ञा पुं. [सं.] छाता, छतरी । उ.—आत पत्र मयूरचद्रिका लसति है रवि ऐनु—२७८५ ।
 आतम—वि. [स. आत्मन्, हि. आत्म] अपना, स्वकीय, निजी । उ.—मोह-निसा कौ लेस रह्यौ नहि, भयौ विवेक बिहान । आतम-रूप सकल घट दरस्यौ, उदय कियौ रवि-ज्ञान—२-३३ ।
 सज्ञा स्त्री. [सं. आत्मा] उ—(क) आत्म अजन्म सदा अविनासी । ताकौ देह-मोह बड़ फौसी—५-४ । (ख) एकइ आतम हम-तुम मॉही—११-६ ।
 आतमज्ञान—सज्ञा पुं. [स. आत्म ज्ञान] स्वरूप की जानकारी ।
 आतमा—सज्ञा स्त्री. [सं. आत्मा] (१) जीव । (२) चित्त । (३) बुद्धि (४) मन । (५) ब्रह्म ।
 आतिथ्य—सं. स्त्री. [सं.] (१) अतिथि-सत्कार । (२) अतिथि का उपहार ।
 आतुर—वि. [स.] (१) व्याकुल, व्यग्र, अधीर । उ.—
 (क) जब गज गह्यौ ग्राह जल-भीतर, तब हरि कै उर

ध्याए (हो) । गरुड छाँड़ि, आतुर है धाए, सो तत-
काल छुड़ाए (हो)—१-७ । (ख) नवसत साजि
सिगार बनी सुन्दरि आतुर पंथ निहारति—२५६२ ।
(२) उत्सुक । (३) दुखी ।

क्रि. वि.—शीघ्र, जल्दी । उ.—आतुर रथ हाँकौ
मधुवन को ब्रजजन भए अनाथ—२५३४ ।
आतुरता—सज्ञा स्त्री. [सं.] (१) व्याकुलता, व्यग्रता,
अधीरता । (२) उतावलीपन, शीघ्रता ।

आतुरताइ, आतुरताई—सज्ञा स्त्री [सं. आतुरता + ई
प्रत्य.] (१) शीघ्रता । उ.—(क) सैननि नागरी
समुझाइ । खरिक आवहु दोहनी लौ, यहै मिल छल
लाइ । गाइ-गनती करन जैहैं, मोहि लौ नेंदराइ ।
बोली बचन प्रमान कीन्हौ, दुहुनि आतुरताइ—६७६ ।
(ख) स्याम काम तनु आतुरताइ—६७६ । (ख) स्याम
काम तनु आतुरताई ऐसे बामा बस्य भए री—पृ. ३५३
(६८) । (२) घबडाहट, व्याकुलता, व्यग्रता । उ.—(क)
स्याम कुंज बैठारि गई । चतुर दूतिका सखियन
लीन्है आतुरताई जानि लई—१८७६ । (ख) ज्यों
ज्यौ मौन भई तुम, उनके बाढ़ी आतुरताई—
२२७५ ।

आतुरी—क्रि. वि. [सं. आतुर] शीघ्र, जल्दी ।

वि.—घबडाई हुई । उ.—नारि गई फिरि भवन
आतुरी—३६१

संज्ञा स्त्री. [सं. आतुर+ई (प्रत्य.)] (१) व्याकुलता,
व्यग्रता । (२) शीघ्रता, उतावली ।

आतुरे—वि. [सं. आतुर] अधीर, उद्विग्न । उ.—सूर
स्याम भए काम आतुरे भुजा गहन पिय लागे—१८६६ ।

आत्म—वि. [सं. आत्मन्] अपना, निजी ।

आत्मकल्याण—संज्ञा पुं. [सं.] अपनी भलाई ।

आत्मकाम—वि. पुं. [सं.] अपना ही मतलब साधने
वाला, स्वार्थी ।

आत्मगौरव—संज्ञा पुं. [सं.] अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान ।

आत्मज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुत्र । (२) कामदेव ।

आत्मज्ञ—वि. [सं. आत्म=निज + ज्ञ=जानने वाला]
अपना स्वरूप जाननेवाला ।

आत्मज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वरूप की जानकारी ।

(२) जीव और परमात्मा के सम्बन्ध की जानकारी ।

(३) ब्रह्म का साक्षात्कार ।

आत्मभू—वि. [सं.] (१) स्वशरीर से उत्पन्न । (२)
स्वयं उत्पन्न ।

आत्मश्लाघा—संज्ञा पुं. [सं.] अपनी प्रशंसा ।

आत्मा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जीव । (२) चित्त ।
(३) मन (४) ब्रह्म । (५) स्वभाव, धर्म ।

आत्मीय—वि. [सं.] निजी, अपना ।

संज्ञा पुं.—स्वजन, स्वसंबंधी ।

आथना—क्रि. अ. [सं. अस=होना, सं. अस्ति, प्रा०
अत्थि] होना ।

आथी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थातु; हि. थाती] धन-संपत्ति ।
संज्ञा स्त्री. [सं. अर्थ] समृद्धि, संपन्नता ।

आदत—संज्ञा स्त्री. (१) स्वभाव, प्रकृति । (२) अभ्यास ।

आदमी—संज्ञा पुं. [अ.] (१) मनुष्य, मानव जाति ।
(२) नौकर, सेवक । (३) पति ।

आदर—संज्ञा पुं. [सं.] सम्मान, सत्कार, प्रतिष्ठा ।
उ.—अपने कौ को न आदर देइ—१-२०० ।

आदरणीय—वि. [सं.] सम्मान के योग्य ।

आदरना—क्रि. स. [सं० आदर] आदर करना, मानना ।

आदरभाव—संज्ञा पुं. [सं. आदर + भाव] सम्मान,
सत्कार । उ.—ऊधो, चलौ बिदुर कै जइयै । दुर-
जोधन के कौन काज जहँ आदर-भाव न पइयै—
१-२३६ ।

आदरथौ—क्रि. सं. [हि. आदरना] आदर या सम्मान
किया । उ.—तेहि आदरथौ त्रिभुवन के नायक अब
क्यौ जात फिरथौ—१० उ -६८ ।

आदर्श—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जिसका अनुकरण किया
जाय । (२) दर्पण । (३) टीका, व्याख्या ।

आदान-प्रदान—संज्ञा पुं. [सं.] लेना-देना ।

आदि—अव्य. [सं] इत्यादि, आदिक । उ.—सिंह-सावक
ज्यौ तजै गृह, इंद्र आदि डरात—१-१०६ ।

वि. [सं.] प्रथम, पहला, शुरू का । उ.—गाउँ-
गाउँ के बत्सला मेरे आदि सहाई । इनकी लज्जा
नहि हमै, तुम राज बड़ाई—१-२३८ ।

अव्य. [सं.] आदिक, इत्यादि ।

मुहा० आदि दै—आदि से लेकर, इत्यादि ।

उ.—इहि राजस को को न विगोयौ ? हिरनकसिपु, हिरनाच्छ आदि दै, रावन, कुंभकरन कुल खोयौ—१-५४ ।

सज्ञा पुं. [सं.] परमात्मा, ईश्वर ।

आदिक—अव्य [सं.] आदि, इत्यादि । उ.—कौसल्या आदिक महतारी आरति करहि बनाइ—६-२६ ।

आदित—सज्ञा पुं. [सं. आदित्य] (१) देवता । (२) सूर्य । उ.—हरि दर्शन सत्राजित आयौ । लोगन जानौ आवत आदित हरिसौ जाइ सुनायौ—१० उ०-२६ ।

आदित्य—सज्ञा पुं. [सं.] (१) देवता । (२) सूर्य ।

(३) इन्द्र । (४) विश्वेदेवा । (५) वामन ।

आदिष्ट—वि. [सं.] जिसको आदेश दिया गया हो ।

आदृत—वि [सं.] आदर किया हुआ, सम्मानित ।

आदेश—सज्ञा पुं. [सं.] (१) आज्ञा । उ.—चतुर चेट की मथुरानाथ सौ कहियौ जाइ आदेश—३१२५ ।

[सूर ने इसको प्रायः स्त्रीलिंग रूप में लिखा है ।]

(२) उपदेश । (३) प्रणाम, नमस्कार ।

आदेस—सज्ञा पुं. [सं. आदेश] आज्ञा ।

आद्यंत—क्रि. वि. [सं. आदि+अंत] आदि से अंत तक ।

आध—वि. [हि. आधा] आधा । उ.—(क) आध पैड बमुधा दै राजा, ना तरु चलि सत हारी—८-१४ । (ख) हैं प्रभु कृपा करन रघुनन्दन, रिस न गहैं पल आध—६-११५ ।

आधा—वि. [सं. अर्द्ध, पा० अर्द्धो, प्रा. अर्द्ध,] किसी वस्तुके दो बराबर भागों में से एक, अर्द्ध ।

आधार—सज्ञा पुं. [सं.] (१) आश्रय, सहारा, अवलंब ।

उ.—(क) यहै निज सार, आधार मेरौ यहै, पतित-पावन विरद बेद गावै—१-११० । (ख) बेद, पुरान, सुमृति, संतनि कौ, यह आधार मोन कौ ज्यौ जल—१-२०४ । (२) पात्र । (३) नींव, मूल । (४) आश्रयदाता । सहारा देने वाला व्यक्ति ।

आधि—सज्ञा स्त्री. [सं.] चिंता, सोच ।

आधिक—वि. [हि. आधा+एक] आधा ।

क्रि. वि.—आधे के लगभग, थोड़ा ।

आधिक्य—सज्ञा पुं. [सं.] अधिकता ।

आधी—वि. स्त्री. [हि. पुं. आधा] किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक ।

आधीन—वि. [सं. अधीन] आश्रित, वशीभूत, लिस ।

उ—(क) ज्यौ कपि सीत-हतन-हित गुंजा सिमिटि होत लौलोन । त्यौ सठ वृथा तजत नहि कबहूँ, रहत विषय-आधीन—१-१०२ । (ख) भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी-आधीन—१-३२१ । (ग) सूरदास प्रभु बिन देखियत है सकल विरह आधीन—२५३६ । (२) विवश, लाचार, दीन । उ—अति आधीन हीन मति व्याकुल कहाँ लौ कहौ बनाइ—२८११ ।

सज्ञा पुं.—दास, सेवक ।

आधीनता—सज्ञा स्त्री. [सं. अधीनता] (१) परवशता । (२) लाचारी, दीनता ।

आधीनौ—वि. [सं. अधीन] आश्रित, वशीभूत, दबैल ।

उ.—(क) पंच प्रजा अति प्रबल बली मिलि, मन-विधान जौ कीनौ । अधिकारी जम लेखा माँगै, तातै हौ आधीनौ—१-१८५ । (ख) मै निज भक्तनि कै अधीनौ—६-५ ।

आधीर—वि. [सं. अधीर] व्याकुल, अधीर । उ.—समर मारहु कीट की रट सहत त्रिय आधीर—३१८० ।

आधुनिक—वि [सं] वर्तमान समय का ।

आधे—वि [सं. अर्द्ध, पा० अर्द्धो, प्रा. अर्द्ध, हि. आधा] आधा भाग । उ.—आधे-मै जल वायु समावै—३-२३ ।

क्रि. वि.—आधे के समीप, थोड़ा । उ.—इलधर निरखत लोचन आधे—२६०६ ।

आधै—वि. [सं. अर्द्ध, पा० अर्द्धो, प्रा. अर्द्ध, हि. आधा] आधा ही । उ.—लालहिँ जगाइ बलि गई माता ।

निरखि मुख-चंद-छुवि, मुदित भई मनहिँ मन, कहत आधै बचन भयो प्राता—४४० ।

आधो, आधौ—वि. [सं. अर्द्ध, पा० अर्द्धो, प्रा. अर्द्ध, हि. आधा] आधा । उ.—(क) हैं तौ पतित सिरोमनि

माधौ । अजामील बातनि हीँ तारथो, हुतौ जु मोतैं
आधौ—१-१३६ । (ख) बारंबार निरखि सुख मानत
तजत नही पल आधौ—२५०८ । (२) थोड़ा, जरा
भी । उ.—तुम अलि सब स्वारथ के गाहक नेह
न जानत आधौ—३२४४ ।

आध्यात्मिक—वि. [सं.] आत्मा-संबंधी ।

आनंद, आनंद—संज्ञा पुं. [सं०] हर्ष, प्रसन्नता, सुख,
मोद, आह्लाद ।

वि.—सानंद, आनंदमय, प्रसन्न ।

आनंदत—क्रि. अ. [सं. आनंद] आनन्द मनाते हुए,
प्रसन्न, हर्षित । उ.—दसरथ चले अवध आनंदत—
६-२७ ।

आनंदित, आनंदी—वि. [सं.] प्रसन्न, सुखी, हर्षित ।

आनंदन—संज्ञा पुं. [सं. आनंद] आनंद, सुख । उ.—(क)
कुटिल अलक मुख, चंचल लोचन, निरखत अति
आनंदन—४७६ । (ख) कुँवरि सुनि पायौ अति
आनंदन—१० उ.-१६ ।

आनन्दना—क्रि. अ. [हि. आनंद] सुख मानना, प्रसन्न
होना ।

आनंदबधाई—संज्ञा स्त्री. [सं. आनन्द+हि. बधाई] (१)
मंगल उत्सव, (२) मंगल अवसर ।

आनंदवन—संज्ञा पुं. [सं.] काशी, सप्त पुरियों में चौथी,
बनारस ।

आनन्दे—क्रि. अ. [सं. आनन्द] आनंदित हुए । उ.—

(क) ब्रज भयौ महर कै पूत, जब यह बात सुनी ।

सुनि आनंदे लोग सब, गोकुल-गनक-गुनी—१०-२४ ।

(ख) सूरदास प्रभु के गुन सुनि-सुनि आनन्दे ब्रज-
बासी—१०-८४ ।

आनंदै—संज्ञा पुं. सवि. [सं. आनंद] आनंद ही
आनंद । उ.—आनंदै आनंद बढ़्यौ अति । देवनि
दिवि दुंदुभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति
—१०-६ ।

आन—संज्ञा स्त्री. [सं. आणि=मर्यादा, सीमा] (१)

मर्यादा । (२) शपथ, सौगंद । उ.—(क) केतिक

जीव कृपिन मम बपुरौ, तजै कालहू प्रान । सूर एकहीं

बान बिदारै, श्री गोपाल की आन—१-२७५ ।

(ख) मेरे जिय अब यहै लालसा लीला

श्री भगवान । खवन करौ निसि-बासर हित
सौं, सूर तुम्हारी आन—२-३३ । (ग) मोहि

आन बृषभान बबा की मैया मंत्र न लैहै—

सा. १० । (३) दुहाई, विजय-घोषणा । उ.—(क)

मेरे जान जनकपुर फिरिहै रामचन्द्र की आन । (ख)

रीछ लंगूर किलकारि लागे करन, आन रघुनाथ की

जाइ फेरी—६-१३८ (४) ढंग, अदा, छवि । (५)

क्षण, अल्पकाल । (६) अकड़, ऐंठ, ठसक । (७)

दबाव, शंका, डर । उ.—हम दधि बेचन जाति हैं

मथुरा मारग रोकि रहत गहि अंचल कंस की आन

न मानै—१०४३ । (८) लज्जा, अदब । (९) प्रतिज्ञा,

प्रण, हठ ।

वि. [सं. अन्य] दूसरा और । उ.—(क) आन

देव की भक्ति भाइ करि कोटिक कसब करैगौ—१-

७५ । (ख) सूर सु भुजा समेत सुदरसन देखि बिरंचि

अम्यौ । मानौ आन सृष्टि करिबे कौं अंबुज नाभि

जम्यौ—१-२७३ । (ग) जै दिवि भूतल सोभा

समान । जै जै जै सूर, न सब्द आन—९-१६६ ।

आनक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) डंका, नगाड़ा । (२)

गरजता हुआ बादल ।

आनक दुंदुभी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा नगाड़ा ।

(२) कृष्ण के पिता वसुदेव जी जिनके जन्म पर

देवताओं ने नगाड़े बजाये थे ।

आनत—वि. [सं.] अत्यंत झुका हुआ, अति नम्र ।

क्रि. अ. [हि. आना] आता है, होती है । उ.—

(क) माया मंत्र पढ़त मन निसि दिन, मोह

मूरछा आनत—१-४६ । (ख) इनकै गृह रहि

तुम सुख मानत । अति निलज्ज कछु लाज न

आनत—१-२८४ ।

क्रि. स. [सं. आनयन, हिं. आनना] लाता है ।

उ.—इते मान यह सूर महासठ हरि-नग बदलि

बिषय बिष आनत—१-११४ ।

आनति—क्रि. स. [सं. आनयन, हिं. आनना] लाती है,

रखती है । उ.—तात कठिन प्रन जानि जानकी,

आनति नहि उर धीर—९-२६ ।

आनद्ध—वि. [सं.] (१) बँधा हुआ । (२) मढ़ा हुआ ।

आनन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मुख, मुँह । (२) चेहरा ।
 उ.—कुटिल भृकुटि, मुख की निधि आनन, कल-
 कपोल की छवि न उपनियों—१०-१०६ ।
 आनना—क्रि. स. [सं. आनयन] लाना ।
 आनवान—संज्ञा स्त्री. [हि.] (१) सजधज, ठाट-
 बाट । (२) ठसक ।
 आनयन—संज्ञा पुं. [सं.] लाना ।
 आनहु—क्रि. अ. [सं. आनयन, हि. आनना] आओ ।
 यौ—लै आनहु—ले आओ । उ.—आजु बन
 कोऊ वै जनि जाइ । सब गाइनि बछरनि समेत, लै
 आनहु चित्र बनाइ—१०-२० ।
 आना—संज्ञा पुं. [सं. आणक] (१) रुपए का सोलहवाँ
 भाग । (२) किसी वस्तु का सोलहवाँ भाग ।
 क्रि. अ. [पु. हि. आवना] (१) किसी स्थान की
 ओर चलना, पहुँचना । (२) जाकर वापस आना,
 लौटना । (३) प्रारम्भ होना । (४) फलना, फूलना ।
 (५) किसी भाव का जन्मना ।
 आनाकानी—संज्ञा स्त्री. [सं. आनाकर्णन] (१) सुनी
 अनसुनी करना, ध्यान न देना । (२) टालमटोल ।
 (३) कानाफूसी, इशारों से बात ।
 आनि—क्रि. स. [सं. आनयन, हि. आनना] लाकर,
 पकड़कर, । उ.—(क) सभा मेंभार दुष्ट दुस्सासन
 द्रौपदि आनि धरी—१-१६ । (ख) गुरु-सुत आनि
 दिए जमपुर तैं—१-१८ ।
 क्रि. अ. [हि. आना] आकर, पहुँचकर । उ.—(क) हरि
 सौ मीत न देख्यौ कोई । विपति-काल सुमिरत तिहिँ
 औसर आनि तिरीछौ होई—१-१० । (ख) सूर स्याम
 अबकै इहिँ औसर आनि राखि ब्रज लीजै—१८१६ ।
 आनिय—क्रि. स. [हि. आनना] लाकर, लाना । उ.—
 सगुन मूरति नदनदन हमहि आनिय देहु—३२८६ ।
 आनी—क्रि. अ. [हि. आनना] (१) लायी गयी,
 उपस्थित की गयी । उ.—जब गहि राजसभा
 मै आनी । द्रुपद-सुता पट-हीन करन कौ
 दुस्सासन अभिमानी—१-२५० । (२) ठानी,
 निश्चित की । उ.—रिषभदेव तबहुँ यह जानी ।
 कह्यौ, इंद्र यह कहा मन आनी—५-२ ।

आनीजानी—वि. [हि. आना + जाना] अस्थिर,
 क्षणभंगुर ।

आने—क्रि. अ. [हि. आनना] ले आये, छुड़ा लाये ।
 उं.—गृह आने बसुदेव—देवकी, कंस महाबल मारयौ
 —१-१७ ।

आनै—वि. [सं. अन्य, हि. आन] दूसरा, और । उ.—
 अब मैं जानी, देह बुढानी । सीस, पाउँ, कर कह्यौ
 न मानत, तन की दसा सिरानी । आन कहत आनै
 कहि आवत, नैन-नाक बहै पानी—१-३०५ ।

क्रि. स. [सं. आनयन, हि. आनना] लावे, ले
 आये । उ.—कालीदह के फूल कहौ धौं, को आनै,
 पछितात—५२७

आनौ—क्रि. अ. [हि. आनना] लाऊँगा, मानूँगा । उ.—
 जब रथ साजि चढ़ौ रन-सन्मुख जीय न आनौ तंक ।
 राघव सैन समेत सँहारौ, करौ रुधिरमय पंरु—६-१३४ ।

आनौ—क्रि. अ. [हि. आना] (कोई भाव या विशेषता)
 उत्पन्न करो । उ.—(क) जड़ स्वरूप सब माया जानौ ।
 ऐसौ ज्ञान हृदै मैं आनौ—३-१३ । (ख) सो अब तुम
 सौ सकल बखानौ । प्रेम-सहित सुनि हिरदै आनौ
 —१०-२ ।

क्रि. स. [सं. आनयन, हि. आनना] लाओ, ले आओ ।
 उ.—(क) कान्ह कह्यौ हौं मातु अधानौ । अब
 मोकौं सीतल जल आनौ—३९७ । (ख) गेद खेलत
 बहुत बनिहै आनौ कोऊ जाइ—५३२ ।

आन्यौ—क्रि. अ. [पु. हिं. आवना, हि. आना] (कोई
 भाव) उत्पन्न हुआ या किया । उ.—(क) ब्रह्मा क्रोध
 बहुत मन आन्यौ—३-७ । (ख) नेक मोहि मुसकात
 जानि मनमोहन मन सुख आन्यौ—२२७५ ।

आप—सर्व. [सं. आत्मन्, प्रा. अत्तणो, अप्पण, पु. हि.
 आपन] (१) स्वयं, अपनेआप । उ.—पारथ के
 सारथि हरि आप भए हैं—१-२३ । (२) 'तुम' और
 'वे' के स्थान में आदरार्थक प्रयोग । (३) ईश्वर ।
 उ.—अस्तुति करी बहुत धुव सब विधि सुनि
 प्रसन्न भे आप ।

सुहा.—आप आप सौं—स्वयं से, अपने मनमें (से) ।

उ.—पूरब जनम ताहि सुधि रही । आप आप सौं

तब यौ कही—५-३ ।

संज्ञा पुं. [सं. आपः=जल] जल, पानी ।

आपगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] नदी ।

आपत—संज्ञा स्त्री. [सं. आपद्] (१) विपत्ति । (२) दुःख, कष्ट ।

आपत्काल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विपत्ति । (२) कुसमय ।

आपत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुःख, क्लेश । (२) विपत्ति । संकट । (३) उज्ज, एतराज ।

आपदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुःख, क्लेश । (२) विपत्ति, संकट । (३) कष्ट का समय ।

आपन—सर्व. [हि. अपना] अपना, निजी । उ.—सुनि कृतघन, निसि दिन कौ सखा आपन, अब जो बिसारयौ करि बिनु पहचानि—१-७७

आपनपो—संज्ञा पुं. [हि. अपना + पौ या पा (प्रत्य.)] (१) अपनायत । (२) आत्मभाव ।

आपनी—सर्व. [हि. पुं. अपना] निजकी ; अपनी । उ.—गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु तोरौ—१-१३२ ।

आपने, आपनै—सर्व. [हि. अपना] अपने, अपने ही । उ.—दुख, सुख, कीरति भाग आपनै आइ परै सो गहियै—१-६२ ।

आपनौ—सर्व. [हि. अपना] अपना, स्वयं का, निजी, अपना ही । उ.—रह्यौ मन सुमिरन कौ पछितायौ । यह तन रौचि रौचि करि बिरन्यौ, क्रियौ आपनो भायौ—१-६७ ।

आपन्न—वि. [सं.] (१) दुखी । (२) प्राप्त ।

आपस—संज्ञा स्त्री. [हि. आप + से] (१) सम्बन्ध, नाता । (२) एक दूसरे का साथ ।

आपहु—सर्व. [हि. आप + हु (प्रत्य.)] स्वयं भी, आप भी । उ.—उग्रसेन की आपदा सुनि सुनि बिलखावै । कंस मारि, राज करै, आपहु सिरनावै—१-४ ।

आपा—संज्ञा पुं. [हि. आप] (१) अपनी सत्ता, अपना अस्तित्व । (२) अहंकार, गर्व । (३) होशहवास, सुधबुध ।

मुहा०—आपा सँभार्यौ—होशियार हुआ, सजग

हुआ, सँभल गया । उ.—जाइहौ अब कहाँ सिसु पौव लैहौ इहाँ छोँडि तीजार आपा सँभार्यौ—१० उ.—५६ ।

आपाधापी—संज्ञा स्त्री. [हि. आप + धाव] (१) अपनी अपनी चिंता या धुन । (२) खींचतान, लागडॉट । आपु—सर्व. [हि. आप] स्वयं को, आप को । उ.—सुत कुबेर के मत्त-भगन भए, बिषै-रस नैननि छाए (हो) । मुनि सहाय तै भए जमल तरु, तिन्ह हित आपु बँधाए (हो)—१-७ ।

आपुन—सर्व. [हि. आप] आप, स्वयं । उ.—दुखित गयंदहि जानि कै आपुन उठि धावै—१-४ ।

आपुनपौ—संज्ञा पुं. [हि. अपन + पौ या पा (प्रत्य.)] आत्मगौरव, मान, मर्यादा । उ.—धन-सुत-दारा काम न आवै, जिनहि लागि आपुनपौ हारौ—१-८० ।

आपुनी—सर्व. स्त्री. [हि. पुं. अपना] निज की । उ.—भक्ति अनन्य आपुनी दीजै—३-१३ ।

आपुनौ—सर्व. [हि. अपना] अपना । उ.—आपुनौ कल्याण करिलै मानुषी तन पाइ—१-३१५ ।

आपुस—संज्ञा स्त्री [हि. आप+से=आपस] एक दूसरे का साथ या संबंध । इसका प्रयोग कभी-कभी विशेषण की तरह भी होता है । उ.—(क) दंपति होइ करत आपुस मै स्याम खिलौना कीन्हौ री—१०-६८ । (ख) आपुस मै सब करत कुलाहल, धौरी, धूमरि धेनु बुलाए—४४७ । (ग) आपुस मै सब कहत हँसत, येई अविनासी—४९२ । (घ) इजै बिजै दोऊ आपुस में निरये बिधना आनि—१५७२ ।

आपुहि—सर्व. [हि. आप+हि (प्रत्य.)] अपने को, अपने को ही, स्वयं को । उ.—सूरदास आपुहि समुझावै, लोग बुरौ जिनि मानौ—१-६३ ।

आपूरना—क्रि. अ. [स. आपूरण] भरना ।

आपूरि—क्रि. अ. [सं. अपूरण, हि. आपूरना] भरा हुआ, पूर्ण है, घिरा है । उ.—कहा कहै छबि आबु की मुख मंडित, खुर धूरि । मानौ पूरन चंद्रमा, कुहर रह्यौ आपूरि—४-३७ ।

आपै—सर्व. [हि. आप] आप ही, स्वयं ही । उ.—
हर्ता-कर्ता आपै सोइ । घट-घट व्यापि रह्यौ है
जोइ—७-२ ।

आप्त—वि. [स०] (१) प्राप्त, लब्ध । (२) कुशल,
दत्त ।

आलावन—संज्ञा पुं. [सं] डुबाना, बोरना ।

आब—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) चमक, तडक-भडक,
छटा, आभा । (२) प्रतिष्ठा, महिमा । (३) शोभा,
छवि ।

संज्ञा. पुं.—पानी ।

आबद्ध—वि [स.] (१) बँधा हुआ । (२) बंदी,
कैद ।

आब्दिक—वि. [स] वार्षिक ।

आभ—संज्ञा स्त्री. [सं. आभा] शोभा, कांति ।

संज्ञा पुं [सं. अभ्र] आकाश ।

संज्ञा पुं. [फा. आब] पानी ।

आभरन—संज्ञा पुं. [सं. आभरण] गहना, भूषण,
आभूषण । उ.—(क) पहिरि सब आभरन, राज्य
लागे करन, आनि सब प्रजादडवत कीन्हौ—४-११ ।
(ख) मनि-आभरन डार-डारन प्रति, देखत छवि
मनही अँटकाए — ७८४ ।

आभा—संज्ञा स्त्री [स.] (१) चमक, दमक, कांति,
प्रभा । उ.—मुख-छवि देखि हो नँदघरनि । सरस
निसि कौ अंतु अगनित इंदु आभा हरनि—३५१ ।
(२) झलक, प्रतिबिंब, छाया ।

आभार—संज्ञा पुं. [स.] (१) बोझ । (२) गृहस्थी
का बोझ ! (३) उपकार, निहोर । उ.—(क) हरि
बसी हरि दासी जहाँ । हरिकरुना करिराखहु तहाँ ।
नित बिहार आभार दै—१८५६ (३०) । (ख)
योग मिटि पति आहु ब्योहार । मधुवन बसि मधुरिपु
सुनु मधुकर छाँड़े ब्रज आभार—३३७१ ।

आभरित—वि. [स.] सजाया हुआ, अलंकृत ।

आभारी—वि. [स. आभारिन्] उपकार माननेवाला,
उपकृत ।

आभास—संज्ञा पुं. [स.] (१) छाया, झलक । (२)
पता, संकेत । (३) मिथ्या ज्ञान ।

आभीर—संज्ञा पुं. [स.] अहीर, ग्वाल ।

आभूषण, आभूषन—संज्ञा पुं. [स. आभूषण] गहना,
अलंकार । उ.—उलटि अग आभूषन साजति रही
न देह सँभार—२५७२ ।

आभ्यंतर—वि. [स.] भीतरी, अंदर का ।

आमंत्रण—संज्ञा पुं [स.] (१) संबोधन, बुलाना ।
(२) निमंत्रण, न्योता ।

आमंत्रित—वि. [स.] (१) बुलाया हुआ, संबोधित ।
(२) निमंत्रित ।

आम—संज्ञा पुं. [स. आम्र] रसाल नाम का फल ।

आमरखना—क्रि. अ. [स. आमर्ष=क्रोध] क्रुद्ध होना,
क्रोध करना ।

आमरण—क्रि. वि. [स.] मृत्यु तक ।

आमर्ष—संज्ञा पुं. [स.] (१) क्रोध, गुस्सा । (२)
असहनशीलता । (३) एक संचारी भाव ।

आमलक—संज्ञा पुं [स.] आँवला ।

आमिर—संज्ञा पुं. [अ. आमिल] अधिकारी, हाकिम ।

आमिल—वि. [सं. अम्ल] खट्टा ।

आमिष—संज्ञा पुं. [सं.] मांस, गोश्त । (२) भोग्य
वस्तु । (३) लोभ, लालच ।

आमी—संज्ञा स्त्री. [हि. आम] छोटा आम, अंबिया ।
जो बहुत खट्टी होती है । उ.—आई प्रीति उधटि
कलई सी जैसी खाटी आमी—३०८० ।

आमोद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आनन्द, हर्ष, प्रसन्नता ।
उ.—सूर सहित आमोद चरन-जल लैकरि सीस
धरे—६-१७१ । (२) मनोरंजन । (३) सुगंधि ।

आमोद-प्रमोद—संज्ञा पुं० [सं.] भोगविलास, हँसी-
खुशी ।

आमोदित—वि. [स.] (१) प्रसन्न, हर्षित । (२) जिसका
जी बहला हो । (३) सुगंधित ।

आमोदी—वि. [स.] प्रसन्न रहनेवाला, हँसमुख ।

आमू—संज्ञा पुं. [स.] (१) आम का पेड़ । (२) आम का
फल ।

आय—संज्ञा स्त्री. [स.] आमदनी ।

क्रि. अ. [स. अस्=होना] 'आसना' या 'आहना'
क्रिया का वर्तमानकालिक रूप । 'आहि' शुद्ध रूप है ।

आयत—वि. [सं.] विस्तृत, दीर्घ, विशाल । उ.—आयत
दृग अरुन लोल कुंडल मंडित कपोल अधर दसन
दोपति की छवि क्यो हूँ न जात लखी री—२३६२ ।

आयतन—सज्ञा पुं. [स.] (१) घर । (२) निवास-स्थान ।
(३) देव-वंदना का स्थान ।

आयत्त—वि. [स.] अधीन, वशीभूत ।

आयसु—सज्ञा स्त्री. [स.] आज्ञा ।

आया—क्रि. अ. भूत. [हि. आना (१) उपस्थित हुआ,
प्रस्तुत हुआ । (२) जन्म लिया, पैदा हुआ, जन्मा ।
उ.—हरि कह्यो अब न ब्यापिहै माया । तब वह
गर्भ छोड़ि जग आया—१-२२६ ।

आयास—सज्ञा पुं. [स.] परिश्रम ।

आयु—सज्ञा स्त्री. [स.] वय, उम्र, जीवनकाल ।

मुहा.—आयु गई सिराइ—आयु का अंत हो गया ।

उ.—काल-अग्नि सबही जग-जागत । तुम कैसे कै
जिअन विचारत ? आयु तुम्हारी गई सिराइ । बन
चलि भजौ द्वारिकाराइ—१-२८४ । आयु खुटानी—
आयु कम हो गई । आयु तुलानी—उम्र समाप्त हो
गई, अंतकाल आ गया । उ.—रे दसकंध, अंभमति
तेरी आयु तुलानी आनि—६-७६ ।

आयुध—सज्ञा पुं. [सं.] शस्त्र । उ.—उरग-इंद्र उनमान
सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजै—१-६६ ।

आयु.—सज्ञा स्त्री. [स. आयु] वय, आयु । उ.—शत
सबत आयुः कुल होइ—१२३ ।

आयुर्दा—सज्ञा स्त्री. [स. आयुर्दाय] दीर्घायु । उ.—
नृप ऐसे आयुर्दा पाई । पृथ्वी हित नित करै उपाई
—१२-३ ।

आयुष्मान—वि. [स.] दीर्घजीवी ।

आयोजन—सज्ञा पुं. [स.] (१) किसी कार्य में लगना,
नियुक्ति । (२) प्रबंध, तैयारी । (३) उद्योग ।
(४) सामग्री, सामान ।

आयौ—क्रि. अ. [हिं. आना] (१) 'आना' क्रिया
के भूतकालिक रूप 'आया' का व्रजभाषा-रूप, आया ।
(२) जन्मा, पैदा हुआ उ.—तिहि घर देव-पितर
काहे को जा घर कान्हर आयौ—३४६ ।

प्र—बाँधि क्यौँ आयौ—किस प्रकार बाँधा गया,

बाँधते समय इतनी कठोर कैसे रह सकी । उ.—
जसुदा तोहि बाँधि क्यौँ आयौ । कसक्यौ नाहि नैकु
मन तेरौ, यहै कोखि कौ जायौ—३७४ ।

आरंभ—सज्ञा पुं. [स.] (१) किसी काम की प्रथम
अवस्था, उत्थान, शुरू । (२) उत्पत्ति, आदि ।

आरंभना—क्रि. अ. [स. आरंभण] शुरू करना ।

आरंभ्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि. आरंभना] आरंभ किया ।

आर—सज्ञा पुं. [हि. अड़] हठ, जिद । उ.—(क)
अखियों करति हैं अति आर । सुंदर स्याम पाहुने के
मिस मिलि न जाहु दिन चार—२७६६ । (ख)
कबहुँक आर करत माखन की कबहुँक मेघ दिखाइ
बिनानी ।

सज्ञा स्त्री. [अ.] (१) तिरस्कार, धृणा । (२)
बैर, शत्रुता । उ.—इहाँ नाहिन नंदकुमार । इहै
जानि अजान मधवा करी गोकुल आर—२८३४ ।

आरक्त—वि. [सं.] लाली लिये हुए, लाल ।

आरज—वि. [सं. आर्य] श्रेष्ठ, उत्तम । उ.—(क)
बिनु देखैं अब स्याम मनोहर, जुग भरि जात घरी ।
सूरदास सुनि आरज-पथ तैं, कछु न चाइ सरी
—६५१ । (ख) जब हरि मुरली अधर धरी । गृह
ब्यौहार तजे आरज-पथ, चलत न सक करी—६५६ ।
(ग) आरज पंथ चले कहा सरिहै स्यामहि राग
फिरौ री—१६७२ । (घ) इतने मान ब्याकुल भइ
सजनी आरज पथहुँ ते बिडरी—२५४४ । (ङ)
आरज पंथ छिड़ाय गोपिकन अपने स्वारथ भोरी
—२८६३ ।

आरत—वि. [स. आर्त] दुखित, दुखी, कातर ।
उ.—(क) हा जदुनाथ, द्वारिका-वासी, जुग-जुग
भक्त-आपदा फेरी । बसन-प्रवाह बढ्यौ सुनि सूरज,
आरत बचन कहे जब टेरी—१-२५१ । (ख) नंद
पुकारत आरत, ब्याकुल टेरेत फिरत कन्हारै
—६०४ ।

सज्ञा पुं.—दुखी व्यक्ति, दीन मनुष्य । उ.—
सूरदास सठ तातैं हरि भजि आरत के दुख-दाहक
—१-१६ ।

आरति—सज्ञा स्त्री. [स. आरात्रिक, हि. आरती]

फिरि चाहत सुभग सुचंदहिँ—१०-१०७ । (ख)
कल-बल कै हरि-आरि परे । नव रँग विमल नवीन
जलधि पर, मानहुँ द्वै ससि-आनि अरे—१०-१४१ ।
(ग) जब दधि-मथनी टेकि अरै । आरि करत मटुकी
गहि मोहन, बाहुकि सभु डरै—१०-१४२ ।

आरी—संज्ञा स्त्री. [स. आर = विनारा] किनारा, ओट,
तरफ ।

आरूढ़—वि. [स.] (१) चढ़ा हुआ, सवार । उ.—(क)
आजु अति कोपे हैं रन राम । ब्रह्मादिक आरूढ़
बिमाननि, देखत हैं सग्राम—६-१५८ । (ख) रथ
आरूढ़ होत बलि गई होइ आयौ परभात—२५३१ ।
(२) दृढ़, स्थिर ।

आरे—संज्ञा पुं. [स. आलय, हि. आला] आला,
ताख । उ.—दै मैया भौरा चक डोरी । जाइ लेहु
आरे पर राख्यो, कालिह मोल लै राख्यौ कोरी
—६६६ ।

आरोगत—क्रि. स. [स. आ+रोगना=हि. आरोगना]
खाते हैं, भोजन करते हैं । उ.—(क) उज्ज्वल पान,
वपूर, वस्तूरी, आरोगत मुख की छवि रूरी—
३९६ । (ख) आरोगत हैं श्रीगोपाल । षटरस सौंज
बनाइ जसोदा, रचिकै कंचन-थाल—३६७ ।

आरोगना—क्रि. स. [स. आ+रोगना (रूज्=हिसा)]
खाना, भोजन करना ।

आरोगे—क्रि. अ. [हि. आरोगना] खाया, भोजन किया ।
उ.—सबरी परम भक्त रघुबर की बहुत दिनन की
दासी । ताके फल आरोगे रघुपति पूरन भक्ति प्रकामी ।

आरोग्य—वि. [स.] रोगरहित, स्वस्थ ।

आरोधन—संज्ञा पु. [स. आ+रुंधन=फेकना] रोकने या
छेकने की क्रिया । उ.—मौनाऽपवाद पवन आरोधन
हित क्रम काम निकंदन—३०१४ ।

आरोधना—क्रि. स. [स. आ + रुंधन] रोकना, छेकना ।

आरोधि—क्रि. स. [स. आरोधना] रोककर, छेककर ।
उ.—अति आतुर आरोधि अधिक दुख तेहि कह
इरति न यम औ कालहिं ।

आरोप—संज्ञा पुं. [स.] (१) स्थापित करना, लगाना ।
(२) मिथ्याभास, झूठी कल्पना ।

आरोपण—संज्ञा पुं. [स.] (१) स्थापित करना । (२) एक
वस्तु के गुण को दूसरी में मानना । (३) मिथ्याज्ञान,
भ्रम ।

आरोपना—क्रि. स. [स. आरोपण] लगाना, स्थापित
करना ।

आरोह—संज्ञा पुं. [स.] (१) ऊपर की ओर जाना ।
(२) आक्रमण । (३) सवारी । (४) आविर्भाव, विकास ।
(५) संगीत के स्वरों का चढ़ाव ।

आरोहण—संज्ञा पु. [स.] (१) चढ़ना, सवार होना । (२)
वश में करना । उ.—आसन बैसन ध्यान धारण मन
आरोहण कीजै—३२६१ । (३) अंकुर
निकलना ।

आरोही—वि. [स. आरोहिन्] (१) ऊपर जानेवाला ।
(२) उन्नतिशील ।

संज्ञा पुं.—(१) संगीत में वह स्वर जो उत्तरोत्तर
चढ़ता जाय । (२) सवार ।

आर्जव—संज्ञा पुं. [स.] (१) सीधापन । (२) सुगमता ।
(३) व्यवहार की सरलता ।

आर्त्त—वि. [स.] (१) चोट खाया हुआ । (२) दुखी,
कातर । (३) अस्वस्थ ।

आर्त्तनाद—संज्ञा पुं. [स. आर्त्त = दुखी + नाद = शब्द]
दुखसूचक शब्द ।

आर्त्तस्वर—संज्ञा पुं. [सं. आर्त्त = दुखी + स्वर] दुख
सूचक शब्द ।

आर्त्ति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पीड़ा, दर्द (२) दुख, कष्ट ।

आर्थिक—वि. [स.] धन-सम्बन्धी ।

आर्द्र—वि. [स.] (१) गीला । (२) सना, लथपथ ।

आर्द्रता—संज्ञा स्त्री [स.] गीलापन ।

आर्द्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक नक्षत्र । (२)
आर्द्रा नक्षत्र के उदय का समय ।

आर्य—वि. [सं.] (१) श्रेष्ठ, उत्तम । (२) बड़ा,
पूज्य । (३) श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न ।

संज्ञा पुं.—(१) श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न पुरुष । (२) एक प्राचीन सभ्य जाति । ये कैस्पियन सागर से गंगा-यमुना तक बसे थे । वर्तमान हिंदू जाति अपने को इन्हीं का वंशज मानती है ।

आर्य पुत्र—संज्ञा पुं. [स.] (१) आदरसूचक शब्द । (२) पति के संबोधन का संकेत ।

आर्यावर्त—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तरीय भारत जहाँ आर्य बसे थे ।

आरथौ—संज्ञा पुं. [हि. आर=अड़] (१) अड़, हठ । (२) निवेदन, अनुरोध । उ.—बृषभानु की धरनि जसोमति पुकारथौ । पठै सुत-काज कौ कहति हौ लाज तजि, पाइ परिकै महारि करति आरथौ —७५१ ।

आर्ष—'व. [स] (१) ऋषि-संबंधी । (२) वैदिक ।

आलंकारिक—वि. [स.] अलंकार-संबंधी । अलंकार-युक्त ।

आलंब—संज्ञा पुं [सं.] (१) आश्रय, सहारा । (२) गति, शरण ।

आलंबन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सहारा, आश्रय । (२) वह अवलंब जिससे रस की उत्पत्ति होती है । (३) साधन, कारण ।

आलंबित—वि. [सं.] आश्रित, अवलंबित ।

आलंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मिलना, पकड़ना । (२) वध, हिंसा ।

आल—संज्ञा पुं. [अनु.] झंझट, बखेड़ा ।

संज्ञा पुं. [सं. आद्र] (१) गीलापन, तरी । (२) आँसू ।

संज्ञा स्त्री. [सं. अल्=भूषित करना] एक पौधा जिसका उपयोग रंग बनाने के लिए होता है । उ.—आल मजीठ लाख सेदुर कहूँ ऐसेहि बुधि अवरखत —११०८ ।

आलय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थान । उ.—जानेँ हौँ बल तेरौ रावन । पठवौँ कुटुंब सहित जम-आलय, नै कु देहि धौँ मोकौँ आवन—६-१३१ । (२) घर, मंदिर ।

उ.—मनिमय भूमि नंद केँ आलय, बलि बलि जाऊँ तोतरे बोलनि —१०-१२१ ।

आलवाल—संज्ञा पुं [सं.] धाला, अवाल । उ.—राजत रुचिर कपोल महावर रद मुद्रावलि नाइ दई री । मनहुँ पीक दल सींचि स्वेद जल आलवाल रति बेलि बई री—२११५ ।

आलस—सं. पु [सं. आलस्य] आलस्य, सुस्ती । उ.—(क) सुनि सतसंग होत जिय आलस-विषयिनि सँग बिसरामी—१-१४८ । (ख) उनके अछत आपने आलस काहे कंत रहत कसगात—१० उ—५६ । वि.—आलसी, सुस्त, जो शीघ्रता से काम न करे ।

आलसवंत—वि. [सं. आलसवंत] आलस्ययुक्त । डगमगात डग धरत परत पग आलसवंत जम्हात । मानहु मदन दत दै छाँड़े चुटकी दै दै गात—२१६५ ।

आलसी—वि. [हि. आलस] सुस्त, काम करने में धीमा ।

आलस्य—स० पुं. [स.] सुस्ती, काहिली ।

आला—वि. [सं. आद्र या ओल] (१) गीला, भीगा । (२) हरा, ताजा ।

स. पुं [सं. आलात] कुम्हार का आवाँ ।

आलान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी बाँधने की रस्सी । (२) बंधन, रस्सी ।

आलाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बातचीत । (२) स्वर-साधन, तान ।

आलापक—वि. [सं.] (१) बात कहने वाला । (२) गाने वाला ।

आलापना—क्रि. स. [सं.] गाना, सुर साधना ।

आलापित—वि. [सं.] (१) कथित, संभाषित । (२) गाया हुआ ।

आलापिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] बाँसुरी, बंसी ।

आलापी—वि. [सं. अलापिन्] (१) बोलने वाला । उ.—कामी, बिबस कामिनी केँ रस, लोभ-लालसा थापी । मन-क्रम-बचन दुसह सबहिन सौ, कटुक बचन आलापी—१-१४० । (२) तान लगाने वाला, गायक ।

आलिंगन—संज्ञा पुं. [सं.] गले से या छाती से लगाने की क्रिया, परिभरण ।

आलिङ्गना—क्रि. स. [सं.] हृदय से लगाना, गले लगाना ।

आलिङ्गित—वि. [सं.] हृदय से लगाया हुआ, परिभित ।

आलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सखी, सहेली । (२) अमरी । (३) पंक्ति, अवली ।

आली—संज्ञा स्त्री. [सं. आलि] सखी, सहेली, गोइयाँ । उ.—स्याम सुभग कै ऊपर वारौं, आली कोटि अनंग—६४० ।

वि. स्त्री. [सि. आर्द्र] गीली, तर ।

वि. [हिं. आल] आल के रंग का ।

आलेख—संज्ञा पुं. [सं.] लिखावट, लिपि ।

आलेख्य—संज्ञा पुं. [सं.] चित्र, तसवीर ।

आलेप—संज्ञा पुं. [सं.] लेप ।

आलेपन—संज्ञा पुं. [सं.] लेप करने का काम ।

आलै—संज्ञा पुं. [सं. आलय] घर, निधान । उ.—जो पै प्रभु करना के आलै । तौ कत कठिन कठोर होत मन मोहि बहुत दुख मालै—३४६१ ।

आलोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश, चाँदनी, (२) चमक, ज्योति । (३) दर्शन ।

आलोकन—संज्ञा पुं. [सं.] दर्शन ।

आलोचक—वि. [सं.] (१) देखनेवाला । (२) आलोचना करने या जाँचनेवाला ।

आलोचन—संज्ञा पुं. (सं.) (१) दर्शन । (२) गुण-दोष-विचार, विवेचन ।

आलोड़न—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मथना । (२) सोच-विचार ।

आलोड़ना—क्रि. सं. [सं. आलोड़न] (१) मथना । (२) हिलोरना । (३) सोचना-विचारना, ऊहापोह करना ।

आव—क्रि. अ. [हि. आना] आता है ।

संज्ञा पुं. [सं. आयु] आयु, उम्र ।

आव-आदर—संज्ञा पुं. [हि. आना+सं. आदर] आव-भगत, आदर-सत्कार ।

आवई—क्रि. अ. [हिं० आना] आती है । उ.—मन प्रतीति नहि आवई, उड़िबौ ही जानै—६-४२ ।

मुहा०—(मथन नहि) आवई—मथने का ज्ञान या जानकारी नहीं है । उ—मथन नहि मोहि आवई तुम सौह दिवायौ—७१६ ।

आवज—संज्ञा पु. [सं. आवाद्य, पा० आवज्ज] एक बाजा जो ताशे के ढंग का होता है और जिसे चमार बजाते हैं ।

आवभ—संज्ञा पुं. [हि. आवाज] ताशे की तरह का एक बाजा । उ—एक पटह एक गोमुख एक आवभ एक भालरी एक अमृतकुरण्डली एक डफ एक कर धारे—२४२५ ।

आवटना—संज्ञा पु. [सं. आवर्त्त, पा. आवट्ट] (१) हलचल, उथलपुथल । (२) सोचविचार, ऊहापोह ।

क्रि. स. [हि. औटना] गरम करना, खोलाना ।

आवत—क्रि. अ. [हि. आना] आता है । उ.—(क) सूरस्यामबिनु अंतकाल मै कोउ न आवत नेरे—१-८५ । (ख) देखे स्याम राम दोउ आवत गर्व सहित तिन जोवत—२५७४ ।

आवति—क्रि. अ. [हि. आना] आती है । उ.—कह्यौ, सुतनि-सुधि आवति कबही । १-२८४ ।

आवते—क्रि. अ. [पु. हि. आवना, हिं. आना] आते हैं । उ—इहि बिरिया बन ते ब्रज आवत—२७३५ ।

आवन—संज्ञा पुं. [सं. आगमन, पु. हि. आगवन] आगमन, आना, आने की क्रिया । उ.—(क) अपने आवन को कहौ कारन—४-३ । (ख) बाणी सुनि बलि पूजन लागे, इहाँ बिप्र करो आवन—८-१३ । (ग) मृदु मुसुकानि आनि राखो पिय चलत कह्यौ है आवन—२७५२ । (घ) धनि हरि लियौ अवतार, सु धनि दिन आवनरे—१०-२८ । (ङ) सुन्दर पथ सुन्दर गति-आवन, सुन्दर मुरली सबद रसाल—४७४ ।

क्रि. अ. [हि. आना] किसी भाव का उत्पन्न होना । उ.—संतोषादि न आवन पावै । विषय भोग हिरदै हरषावै—४-१२ ।

आवनहार—वि. [हि. आवन=आना+हार (प्रत्य.)=वाला] आनेवाला, आने को । उ.—माधव जी

आवनहार भए । अंचल उड़त मन होत गहगहो
फरकत नैन खए—१० उ.-१०७ ।

आवनो—संज्ञा पुं. [पु. हि० आगवन, आवन] आग-
मन, आना । उ.—सुनि स्यामा नवसत सँग सखी लै
बरसाने तेहि आवनो—२२८० ।

आवभगत—संज्ञा पुं. [हि० आवना + भक्ति] आदर-
सत्कार ।

आवभाव—संज्ञा पुं. [हि. आवना + सं. भाव] आदर-
सत्कार ।

आवरण—संज्ञा पुं. [स.] (१) आच्छादन, ढकना । (२)
परदा ।

आवर्त्त—संज्ञा पुं. [सं.] पानी का भँवर । (२) वह बादल
जिससे पानी न बरसे ।
वि.—धूमा हुआ ।

आवर्त्तन—संज्ञा पुं [सं] (१) चक्कर, घुमाव, फिराव ।
(२) विलोडन, मथन ।

आवलि आवली—संज्ञा स्त्री. [सं.] पंक्ति, श्रेणी ।

आवश्यक—वि. [सं.] (१) जरूरी । (२) काम की ।

आवश्यकता—सं. स्त्री [सं०] (१) अपेक्षा, जरूरत । (२)
प्रयोजन, मतलब ।

आवहिगे—क्रि. अ. [हिं. आवना] आयेंगे । उ.—ऐसे
जो हरि आवहिगे—२८८६ ।

आवहीं—क्रि. अ. [हिं. आवना या आनना] लाये जायँगे ।
उ.—कालिह कमल नहि आवही, तौ तुमकौ नहि
चैन—५८६ ।

आवागमन—संज्ञा पुं. [हि. अवा=आना + सं. गमन]
आना-जाना । उ.—(१) कहौ कपि जनक-सुता-
कुसलात । आवागमन सुनावहु अपनौ, देहु हमै सुख
गात—६-१०४ । (२) जन्म और मरण ।

आवागवन, आवागौन—संज्ञा पुं. [सं. आवागमन]
(१) आना-जाना । (२) जन्म-मरण ।

आवाज—संज्ञा पुं. [फा. आवाज़] (१) शब्द, ध्वनि ।
(२) बोली, स्वर । (३) कोलाहल, शोर ।

आवाय—संज्ञा पुं. [सं] (१) थाला । (२) हाथ का
कडा, कंकण ।

आवाल—संज्ञा पुं. [सं.] थाला ।

आवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निवासस्थान । (२)
मकान ।

आवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंत्र द्वारा किसी देवता
को बुलाना । (२) निमंत्रित करना ।

आविर्भाव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्पत्ति, जन्म । उ.—
दशरथ नृपति अजोध्या-राव । तारै गृह कियौ
आविर्भाव—६-१५ । (२) प्रकाश । (३) आवेश ।

आविर्भूत—वि. [सं.] (१) प्रकाशित, प्रकटित । (२)
उत्पन्न ।

आविष्कर्ता—वि. [सं.] नयी वस्तु का आविष्कार करने
वाला ।

आविष्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश, प्राकट्य । (२)
सर्वथा नयी वस्तु प्रस्तुत करना ।

आवृत्त—वि. [सं.] (१) छिपा हुआ । (२) आच्छादित ।
(३) घिरा हुआ ।

आवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दोहराना । (२) पाठ
करना, पढ़ना ।

आवेग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चित्त की प्रबल वृत्ति,
जोश । (२) एक संचारी भाव ।

आवेदन—संज्ञा पुं. [सं.] अपनी दशा बताना, निवेदन ।

आवेश—संज्ञा पुं [सं.] (१) व्याप्ति, संचार । (२)
चित्त की प्रेरणा, आतुरता ।

आवेष्टन—संज्ञा पुं. [सं.] छिपाना, ढकना ।

आवै—क्रि. अ. बहु. [हिं. आना] आते हैं ।
यौ—कहत न आवै—वर्णन नहीं किये जा सकते ।
उ.—सूर विचित्र चरित स्याम के रसना कहत न
आवै—१०-६७ ।

आवैगे—क्रि. अ. [सं. आगमन, पुं. हि. आवना, हि
आना] आवेंगे, आ पहुँचेंगे । उ.—जहाँ तहाँ तैं सब
आवैगे, सुनि-सुनि सस्तौ नाम—१-१६१ ।

आवै—क्रि. अ. [हिं. आना] आवे, आ जाय ।
मुहा०—आवै-जावै—आना-जाना, आवागमन ।

आवौ—क्रि. अ. [हिं. आवना, आना] आ जाऊँ, आऊँ,
आता हूँ । उ.—जवै आवौ साधु-सगति, कछुक
मन ठहराइ—१-४५ ।

आशंका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) डर, भय । (२) संदेह ।
(३) अनिष्ट की भावना ।

आशय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अभिप्राय, तात्पर्य । (२)
वासना, इच्छा ।

आशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] किसी इच्छित वस्तु के पाने
का थोड़ा-बहुत निश्चय ।

आशिष—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आशीर्वाद, आसीस ।
(१) एक अलंकार जिसमें ऐसी वस्तु के लिए प्रार्थना
होती है जो अप्राप्त हो ।

आशिषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] आशीर्वाद, आसीस । उ.—
सूर प्रभु चरित पुरनारि देखत खरी महत पर आशिषा
देत लोभा—२५६१ ।

आशिषाक्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] एक अलंकार ।

आशीर्वाद—संज्ञा पुं. [सं.] आशिष, आसीस ।

आशु—क्रि. वि. [सं.] शीघ्र, तुरंत ।

आशुतोष—वि. [सं.] शीघ्र संतुष्ट या प्रसन्न होनेवाला ।
संज्ञा पुं.—शिव, महादेव ।

आश्चर्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विस्मय, अचरज ।
(२) एक स्थायी भाव ।

आश्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तपोवन । (२) विश्राम
का स्थान । (३) हिंदुओं के जीवन की चार अव-
स्थाएँ—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, और संन्यास ।

आश्रय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आधार, सहारा । (२)
शरण, ठिकाना । (३) भरोसा । (४) घर ।

आश्वासन—संज्ञा पुं. [सं.] सांत्वना, धीरज ।

आश्रित—वि. [सं.] (१) सहारे टिका या ठहरा
हुआ । (२) शरणागत । (३) सेवक, दास ।

आषट—संज्ञा पुं. [सं. अक्षत] देवताओं पर चढ़ाने का
बिना टूटा चावल, अक्षत । उ.—सुर समूह पथ धार
परम हित आषट अमल चढ़ावो—सा.६ ।

आषाढ़—संज्ञा पुं. [सं.] असाढ़ का महीना जो ज्येष्ठ
के बाद आता है ।

आषी—संज्ञा स्त्री. [हि० आँख] आँख । उ.—तो हमको
होती कत यह गति निसि दिन बरषत आषी
२—७३९ ।

आसंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथ, संग । (२)
लगाव, संबंध । (३) आसक्ति, अनुरक्ति ।

आसंदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मचिया, मोढ़ा ।
(२) खटोला ।

आस—संज्ञा स्त्री. [सं. आशा] (१) आशा । उ.—
इतनेहि धीरज दियो सबन को अवधि गए दै आस—
२५३४ । (२) लालसा, कामना । (३) सहारा,
भरोसा ।

मुहा.—आस लगाये—भरोसे पर रहना, सहारे
पर रहना । उ.—पद-नौका की आस लगाये बूझत
हौ विनु छॉह—१-१७५ । आस पुजावहु—इच्छा
या आशा पूरी करो । उ.—तुम काहूँ धन दै लै
आवहु, मेरे मन की आस पुजावहु—५-३ ।

आसक्त—वि. [सं.] (१) लीन, लिस (२) मुग्ध,
मोहित ।

आसक्ति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनुरक्ति, लिसता ।
(२) लगन, चाह, प्रेम ।

आसति—संज्ञा स्त्री. [सं. आसति] निकटता, समीपता
उ.—सूर तुरत तुम जाय कहौ यह ब्रह्म बिना नहि
आसति—२६१६ ।

आसतीक—संज्ञा पुं. [सं. आस्तीक] एक ऋषि जो
जरत्कारु ऋषि और वासुकि नाग की कन्या के पुत्र
थे । इन्होंने जनमेजय के सर्पसत्र में तक्षक का प्राण
बचाया था ।

आसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बैठने के लिये मूँज,
कुश आदि का चौखूँटा बिछावन । उ.—कुस-आसन
दै तिन्हहि बिठायौ—१-३४१ । (२) बैठने की
विधि ।

आसना—क्रि. अ. [सं. अस्=होना] होना ।

संज्ञा पुं. [सं. आसन] (१) जीव । (२)
वृक्ष ।

आसन्न—वि. [सं.] समीप आया या पहुँचा हुआ,
प्राप्त ।

आसपास—क्रि. वि. [अनु. आस+सं. पार्श्व] चारों
ओर, निकट, इर्दगिर्द, अगल-बगल । उ.—कटि

पट पीत, मेखला मुखरित, पाइनि नूपुर सोहैं । आस-
पास बर ग्वाल-मंडली, देखत त्रिभुवन मोहैं—४५१ ।
आसमान—संज्ञा पुं. [प्रा.] (१) आकाश । (२)
स्वर्ग, देवलोक ।
आसय—संज्ञा पुं. [सं. आशय] (१) अभिप्राय,
तात्पर्य । (२) वासना, इच्छा ।
आसरना—क्रि. स. [सं. आश्रय] आश्रय या सहारा
लेना ।
आसरा—संज्ञा पु. [सं. आश्रय] (१) सहारा, आधार ।
(२) आशा, भरोसा । (३) शरण ।
आसरो—संज्ञा पुं. [सं. आश्रय, हिं. आसरा] भरोसा,
आशा । उ.—जब उनको आसरो कियो जिय तबही
छोड़ि गए—पृ. ३२० ।
आसव—संज्ञा पु. [सं.] फलों के खमीर से तैयार
किया हुआ मद्य ।
आसवी—वि. [सं.] मद्यप, शराबी ।
आसा—संज्ञा स्त्री. [सं. आशा] (१) आशा, अप्राप्त
के पाने की इच्छा । उ.—हिसा-मद-ममता-रस भूल्यौ,
आसाही लपटानौ—१-४७ । (२) इच्छित वस्तु
पाने के कुछ निश्चय का संतोष ।
मुहा.—आसा लागी—(काम पूरा होने या
कुछ प्राप्त होने की) आशा बंधी है । उ.—बहुत
दिननि की आसा लागी, भगारिनि भगरौ कीनौ
१०-१५ । लागि आसा रही—प्राप्ति होने या काम
पूरा होने की संभावना थी । उ.—जन्म तै एक टक
लागि आसा रही, विषय-विष खात नहि तृप्ति मानी
—१-११० ।
आसामुखी—वि. [सं. आशा+मुख] (दूसरे का)
मुँह जोहनेवाला, (किसी की) सहायता चाहने
वाला ।
आसावरी—संज्ञा स्त्री. [सं. आशावरी अथवा अशावरी,
हिं. असावरी] एक प्रधान रागिनी जो भैरव राग की
स्त्री मानी गयी है । इसके गाने का समय प्रातःकाल
सात से नौ बजे तक है । उ.—मालवाई राग गौरी
अरु आसावरी राग । कान्हरो हिंडोल कौतुक तान
बहु विधि लाग—२२७१ ।

आसी—वि. [सं. आशिन्, हिं. आशी] खानेवाला,
भक्षक । उ.—मथि मथि सिधु-सुधा सुर पोषे संभु
भए विष आसी—३३०६ ।
आसीन—वि. [सं.] बैठा हुआ, विराजमान ।
आसोस—संज्ञा पुं. [सं. आशिष] आशीर्वाद । उ.—
पुनि कह्यौ, देहु आसीस मम प्रजा कौं, सबैं हरि-भक्ति
निज चित्त धारै—४-११ ।
संज्ञा पुं. [सं. आ+शीर्ष] तक्रिया ।
आसु—सर्व. [सं. अस्य] इसका ।
क्रि. वि. [सं. आशु] शीघ्र, तुरंत ।
आसुर—संज्ञा पुं. [सं. असुर] राक्षस ।
आसुरी—वि. [सं.] असुर संबंधी, असुरों का ।
संज्ञा स्त्री.—राक्षसी ।
आसौं—क्रि. वि. [स. अस्मिन्, प्रा. अस्ति=इस+सं.
साल=वर्ष] इस वर्ष ।
आस्चर्य—संज्ञा पुं. [सं. आश्चर्य] अचरज की बात,
असंगत बात । उ.—कहौ धनुष कहौ हम बालक
कहि आस्चर्य सुनाए—२५६६ ।
आस्तिक—वि. [सं.] (१) वेद, ईश्वर आदि पर जिसका
विश्वास हो । (२) ईश्वर के अस्तित्व पर जिसे
विश्वास हो ।
आस्था—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्रद्धा । (२) सभा, बैठक ।
(३) आलंबन ।
आस्पद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थान । (२) कार्य । (३)
पद, प्रतिष्ठा । (४) वंश, कुल ।
आस्वाद—संज्ञा पुं. [सं.] रस, स्वाद ।
आस्वादन—संज्ञा पुं. [सं.] चखना, रस या स्वाद लेना ।
आस्रम—संज्ञा पुं. [सं. आश्रम] आश्रम, तपोवन ।
उ.—रिषि समीक कै आस्रम आयौ । रिषि
हरि-पद सौ ध्यान लगायौ—१-२६० ।
आस्रित—वि. [सं. आश्रित] (१) सहारे पर टिका या
ठहरा हुआ । (२) भरोसे पर रहनेवाला, अधीन ।
आह—क्रि. अ. [आसना का वर्त. रूप] है, रहा है । उ.—
(क) तिन कह्यौ,—मेरो पति सिव आह—४-७ ।
(ख) नृपति कह्यौ, मारग सम आह—५-४ ।

ताके देखन की मोहि चाह । कह्यौ, पुरुष वह ठाढ़ौ
आह—६-२ ।

अव्य. [सं. अहह] पीडा, शोक, खेद सूचक
अव्यय ।

संज्ञा स्त्री.—कराहना, उसाँस, ठंडी साँस । उ.—
मारै मार करत भट दादुर पहिरे बहु बरन सनाह ।
अरै कवच उघरे देखियत मनो बिरहिनि घाली आह
—२८२६ ।

संज्ञा पुं०—[सं. साहस=स + आहस्] (१)
साहस । (२) बल ।

आहट—संज्ञा स्त्री. [हि. आ = आना + हट (प्रत्य.)]
(१) चलने का शब्द, पाँव की चाप, खडका । (२)
आवाज जिससे किसी स्थान पर किसी के रहने का
अनुमान हो । उ.—आहट सुने जुवती घर आई
देख्यौ नन्द कुमार । सूर स्याम मंदिर अधियारै,
निरखति बारंबार—१०-२७७ ।

आहत—वि. [सं.] (१) घायल । (२) कंपित, थरता
हुआ ।

आहर—संज्ञा पुं० [सं. अह.] समय, दिन ।

आहौ—संज्ञा पुं. [सं. आह्वान] (१) हॉक, दुहाई ।
(२) पुकार, बुलावा ।

आहा—अव्य. [सं. अहह] आश्चर्य और हर्षसूचक
अव्यय ।

आहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भोजन, खाना । उ.—
जेतक सस्त्र सो किए प्रहार । सो करि लिए असुर
आहार—६-५ । (२) खाने की वस्तु ।

आहार-विहार—संज्ञा पुं. [सं.] रहन-सहन, शारीरिक
व्यवहार ।

आहिं—क्रि. अ. बहु ['आसना' का वर्तमानकालिक
रूप] हैं । उ.—गीध, व्याध, गनिकाऽरुअजामिल,
ये को आहि विचारे । ये सब पतित न पूजत मो सम,
जिते पतित तुम तारे—१-१७६ ।

आहि—क्रि. अ. एक. ['आसना' का वर्तमानकालिक
रूप] है । उ.—(क) उमा आहियह सो मुँडमाल ।
जब जब जनम तुम्हारौ भयौ तब तब मुण्डमाल मै
लयौ—१-२२६ । (ख) तृनावर्त प्रभु आहि हमारो

इनहीं मारयौ ताहि—२५७४ ।

आहूत—वि. [सं.] बुलाया हुआ, निमंत्रित ।

आहुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मंत्र पढ़कर द्रव्य के
लिए द्रव्य अग्नि में डालना, होम, हवन । उ.—सिव-
आहुति-बेरा जब आई । बिप्रनि दच्छहि पूछ्यौ जाई
—४-५ । (२) होम-द्रव्य की वह मात्रा जो एक बार
कुंड में डाली जाय । उ. -- आहुति जज्ञकुंड मै डारी ।
चह्यौ, पुरुष उपजै बल भारी—४-५ । (३) हवन
में डालने की सामग्री ।

आहुती—संज्ञा स्त्री- [सं आहुति] (१) होम, हवन ।
(२) हवन की सामग्री ।

आहै—क्रि. अ. बहु० ['आसना' का वर्त. बहु. रूप]
हैं, हुए है । उ.—महरि स्याम कौ बरजति काहैं न ।
जैसे हाल किए हरि हमकौ, भए कहूँ जग आहैं
न—७७२ ।

आहै—क्रि. अ. ['आसना' का वर्तमान कालिक रूप]
है । उ.—प्रबल सत्रु आहै यह मार । यातै संतौ,
चलौ संभार—१-२२६ ।

आह्लाद—संज्ञा पुं. [सं.] आनंद, हर्ष ।

आह्लादित—वि. [सं.] प्रसन्न, हर्षित, आनंदित ।

आह्वान—संज्ञा पुं. [सं.] बुलाना, आमंत्रित करना ।

इ

इ—देवनागरी वर्णमाला का तीसरा स्वर । तालु इसका
स्थान है ।

इंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिलना-डुलना । (२) संकेत ।
(३) चिन्ह । (४) हाथी का दाँत ।

इंगन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिलना-डोलना । (२) संकेत
करना ।

इंगला—संज्ञा स्त्री. [सं इङ्गा] बाईं ओर की एक नाड़ी जो
बाएँ नथने से श्वास निकालती है । उ.—इंगला
(इङ्गा) पिगला सुखमना नारी । सून्य सहज में बसहि
मुरारी—३४४२ (८) ।

इंगित—संज्ञा पुं. [सं] संकेत, चेष्टा, इशारा ।

वि.—हिलता हुआ, चकित ।

इंगुदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पेड़, हिंगोद का पेड़ ।

इंगुर—संज्ञा पुं. [सं. हिगुल, प्रा.-इंगुल, हि, ईगुर] इंगुर ।

इंगुरौटी—संज्ञा स्त्री. [हि. ईंगुर+औटा (प्रत्य.)] सिंदूर रखने की डिबिया ।

इंचना—क्रि. अ. [हि. खिचना] आकर्षित होना ।

इँडहर—संज्ञा पुं. [सं. इष्ट+हर (प्रत्य.)] उर्द और चने की दाल की पीठी का बना हुआ सालन । उ.—अमृत इँडहर है रससागर । बेसन सालन अबिकी नागर ।

इंदा—संज्ञा स्त्री. [सं. इंद्रा अथवा इंदिरा] राधा की एक सखी का नाम । उ.—इंदा विदा राधिका स्यामा कामा नारि—पृ. २५२ (२) ।

इंदारुन—संज्ञा पुं. [सं. इन्द्रवारुणी] इंद्रायन, ।

इंदिरा—संज्ञा स्त्री, [सं.] (१) लक्ष्मी । (२) शोभा, कांति ।

इंदीवर—संज्ञा पुं. [सं.] नीला कमल ।

इंदीवर-सुत—संज्ञा पुं. [सं. इंदीवर=कमल + सुत = पुत्र] कमल का चूर्ण या सिंदूर । उ.—इंदीवर-सुत कर कपोल में है सिगार रस राधे—सा. ६ ।

इंदु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चन्द्रमा । (२) कपूर । (३) एक की संख्या ।

इंदुकर—संज्ञा पुं. [सं.] चन्द्रमा की किरण ।

इंदुकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चन्द्रमा की कला । (२) चन्द्रमा की किरण ।

इंदुमती—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूर्णिमा ।

इंद्र—वि. [सं.] (१) ऐश्वर्यवान् । (२) श्रेष्ठ, बड़ा । संज्ञा पुं. (१) एक वैदिक देवता जो पानी बरसाता है । यह देवराज कहा गया है । ऐरावत इसका बाहन; वज्र, अस्त्र, शची, स्त्री; जयंत, पुत्र; अमरावती, नगरी; नन्दन, वन; उच्चैःश्रवा, घोड़ा, और मातलि, सारथी है । इसकी सुधर्मा नामक सभा में देव, गंधर्व और अप्सराएँ रहती हैं । वृत्र, वलि और विरोचन इसके प्रधान शत्रु हैं । यह ज्येष्ठा नक्षत्र और पूर्व दिशा का स्वामी है । (२) स्वामी । (३) चौदह की संख्या ।

इंद्रजाल—संज्ञा पुं. [सं.] जादूगरी, मायाकर्म ।

इंद्रजित—वि [सं.] (१) इन्द्रियों को जीतनेवाला । उ.—देखिकै उमा कौ रुद्र लज्जित भए कह्यौ मैं कौन यह

काम कीनौ । इन्द्रजित हौं कहावत हुतौ, आपु कौं समुझि मन मॉहि है (ह्यौ खीनौ—८-१० ।

संज्ञा पुं. [सं.] रावण का पुत्र मेघनाद जिसने देवराज को जीता था । उ.—लंकापति इन्द्रजित कौ बुलायौ—६-१३५ ।

इंद्रजीत—वि. [सं.] इन्द्र को जीतनेवाला ।

संज्ञा पुं.—रावण का पुत्र, मेघनाद जिसने इन्द्र को जीता था ।

इन्द्रद्युम्न—संज्ञा पु [सं.] एक राजा जो अगस्त्य ऋषि के शाप से गज हो गया था और ग्राह से युद्ध होने पर जिसका उद्धार नारायण ने किया ।

इन्द्रधनुष—संज्ञा पु. [सं.] वर्षाकाल में आकाश में दिखायी देनेवाला सतरंगी अर्द्ध वृत्त । यह सूर्य की विपरीत दिशा में जल से पार उसकी किरणों की प्रतिच्छाया से बनता है ।

इंद्रनील—संज्ञा पु [सं.] नीलमणि, नीलम । उ.—इन्द्रनील-मनि तैं तन सुन्दर, कहा कहै बल चेरौ—१०-२१६

इंद्रपुर—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्ग । उ.—नृप कह्यौ, इन्द्रपुर की न इच्छा हमैं—४-११ ।

इंद्रपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] अमरावती ।

इंद्रप्रस्थ—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन नगर जो आधुनिक दिल्ली के निकट था और जिसे पांडवों ने खांडव वन जलाकर बसाया था ।

इन्द्रवाहन—संज्ञा पुं. [इन्द्र + वाहन = सवारी (इन्द्र की सवारी = ऐरावत)] हाथी । उ.—चाहत गंध बैरी बीर । आपनो हित चहत अनहित होत छोड़त तीर । नृत्त भेद विचार वा बिनु इन्द्रवाहन पास—सा. २८.

इन्द्रलोक—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्ग ।

इंद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] इन्द्र की स्त्री, शची ।

इन्द्राणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) इन्द्र-पत्नी, शची । (२) दुर्गा देवी ।

इंद्रानी—संज्ञा स्त्री. [सं. इन्द्राणी] इन्द्र की पत्नी, शची ।

इन्द्रायन—संज्ञा पुं. [सं. इन्द्राणी] एक फल जो देखने में बड़ा सुन्दर पर स्वाद में कड़ुआ होता है ।

इन्द्रायुध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वज्र । (२) इन्द्रधनुष ।

इंद्रासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र का सिंहासन । (२) राजसिंहासन ।

इन्द्रिय—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वह शक्ति जिससे बाह्य वस्तुओं के गुणों और रूपों का ज्ञान प्राप्त होता है । (२) शरीर के अवयव जिनके द्वारा बाह्य वस्तुओं के रूप-गुण का अनुभव होता है । इनके दो वर्ग हैं—ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय । ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं जो केवल गुणों का अनुभव कराती हैं—चक्षु (रूप-ज्ञान), श्रोत्र (शब्द-ज्ञान), नासिका (गंध-ज्ञान), रसना (स्वाद-ज्ञान), और त्वचा (स्पर्श द्वारा ज्ञान) । कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच हैं जिनके द्वारा विविध कर्म किये जाते हैं—वाणी हाथ, पैर गुदा और उपस्थ । इन दसों इन्द्रियों के अतिरिक्त एक उभयात्मक अंतरेन्द्रिय है 'मन' जिसके चार विभाग हैं—मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त । उ.—अग्नी रुचि जित ही जित ऐंचति इंद्रिय कर्म-गटी । हौ तितही उठि चलत कपट लाग, बंधे नैन-पटी—१६८ ।

इन्द्रयजित्—वि. [सं.] जिसने इंद्रियों को वश में कर लिया हो, जो विषय में लीन न हो ।

संज्ञा पुं.—रावण का पुत्र मेघनाद जिसने इंद्र को पराजित किया था ।

इन्द्रियार्थ—संज्ञा पुं. [सं. इन्द्रिय+अर्थ] रूप, रस, गंध, शब्द आदि विषय जिनका अनुभव या ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होता है ।

इन्द्री—संज्ञा स्त्री. [सं. इन्द्रिय] (१) पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय जिनसे क्रमशः विषय-ज्ञान और कर्म होते हैं । उ.—(क) मीन इंद्री तनहि काटत मोट अघ सिर भार । (ख) त्रिगुन प्रकृति तै महत्तत्व, महत्तत्व तै अहंकार मन-इन्द्री-सब्दादि पँच, तातै क्रियौ बिस्तार—२-३५ । (२) स्त्री-पुरुष सूचक अवयव, लिंग । उ.—पंचम मास हाड बल पावै । छठें मास इन्द्री प्रगटावै—३-१३ ।

इकंग—वि. [सं. एकांग] एक ओर का, एकांगी ।

इकंत—वि. [सं. एकांत] निर्जन, अकेला, सूनसान ।

इक—वि. [सं. एक] एक ।—(क) (कुंति) धरति न इक छिन धीर—१-२६ । (ख) सखी री स्याम सबै इक सार—२६८७ ।

इकआँक—क्रि. वि. [सं. इक=एक + आँक=निश्चय] निश्चय, अवश्य ।

इकइस—वि. [सं. एकविंशत्, प्रा. एकवीस, हि. इक्कीस] इक्कीस ।

इकजोर—क्रि. वि. [सं. एक+हि. जोर=जोड़ना] इकट्ठा, एक साथ । उ.—देखि सखि चारि चंद्र इकजोर । निरखति बैठि नितंबिनि पिय सँग सारसुता की ओर ।

इकटक—संज्ञा स्त्री [हि. एकटक] टकटकी लगाकर देखने की क्रिया, स्तब्ध, दृष्टि । उ.—(क) बलिहारी छवि पर भई, ऐसी बिधि जोहन । लटकति बेसरि जननि की, इकटक चख लावै । फरकत बदन उठाइ कै, मनहीं मन भावै—१०-७२ । (ख) इकटक रूप निहारि, रहीं मेटति चित-आरति—४३७ ।

इकट्ठा—वि. [सं. एक + स्थ = एकस्थ, प्रा. इकट्ठो] एकत्र ।

इकठार्ड—वि. [सं. एक + हि. ठार्ड=स्थान] एक स्थान पर इकट्ठा, एकत्र । उ.—तब सब गाइ भई इकठार्ड—६१४ ।

इकठार्ड—वि. [सं. एक + हि. ठाँव=स्थान] (१) एक स्थान पर । (२) एकांत ।

इकठैन—वि. [सं. एक + स्थान] एक स्थान पर, एक ठौर, इकट्ठा । उ.—सुनति हीं सब हाँकि ल्याए, गाइ करि इकठैन—४२७ ।

इकठौरी—वि. [सं. एक + हिं ठौर] एक ठौर या स्थान पर, इकट्ठा । उ.—अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब, आनि करौ इकठौरी—४४५ ।

इकठौर—वि. [हि. इक + ठौर] एक स्थान पर एकत्र, एक साथ, एक पास । उ.—(क) जब पोंडे इत-उत कहुँ गए । बालक सब इकठौरे भए—७-२ । (ख) जैवत कान्ह नंद इकठौरे—१०-२२४ ।

इकतन—क्रि. वि. [हि. एक+तन (ओर)] एक ओर ।

उ.—इकतन ग्वाल एकतन नारी । खेल मच्यौ ब्रज के बिच भारी—२४०८ ।

इकतर—वि. [सं. एकत्र] इकट्ठा ।

इकताई—संज्ञा स्त्री. [फ्रा. यकता] (१) एक होने का भाव, एकत्व । (२) अकेले रहने की चाह या प्रकृति ।

इकताना—वि. [सं. एक+हि. तानना=लिचाव] एकसा, स्थिर, अनन्य ।

इकतार—वि. [सं. एक+हि. तार] बराबर, समान ।

इकतारा—संज्ञा पुं. [हि. एक+तार] एक प्रकार का तानपूरा या तेंबूरा ।

इकतीस—संज्ञा पुं. [सं. एकत्रिंशत्, पा. एकतीस] तीस और एक की संख्या ।

इकत्र—क्रि. वि. [सं. एकत्र] इकट्ठा ।

इकरस—वि. [सं. एक+रस] समान, बराबर ।

इकला—वि. [हि. अकेला] एकही, अकेला ।

इकलाई—संज्ञा स्त्री. [स. एक+हिं. लाई या लोई=पर्त] (१) एक पाट की महीन सारी या चादर । (२) अकेलापन ।

इकसर—वि. [स. एक+हिं. सर (प्रत्य.)] अकेला, एकाकी ।

इकसार—वि. [सं. एक+हि. सार=समान] एक समान, एक सा, समान । उ.—नीच-ऊँच हरि कै इकसार—७-८ ।

इकसारी—वि. [सं. एक+हिं. सार] एक सी । उ.—अति निसंक, निरलज, अभागिनि, घर घर फिरत न हारी । मैँ तौ बृद्ध भयौँ वह तरुनी, सदा बयस इकसारी । याकैँ बस मैँ बहु दुख पायौ, सोभा सबै बिगारी—१-१७३ ।

इकसूत—वि. [सं. एकश्रुत=लगातार] एक साथ, एकत्र ।

इकहाई—क्रि. वि. [सं. एक+हि. हाई (प्रत्य.)] (१) एक साथ । (२) एक दम, अचानक ।

इकांत—वि. [सं. एकांत] निर्जन, सूनसान, एकांत ।

इकीस—वि. [सं. एकविंशत्, प्रा. एकवीस, हि. इक्कीस] इक्कीस ।

इकैठ—वि. [सं. एकस्थ, पा. एकट्ठ] इकट्ठा ।

इकौसो—वि. [सं. एक+ आवास] एकांत, निराला ।

इक्का—वि. [सं. एक] (१) एकाकी, अकेला । (२) अनुपम, बेजोड़ ।

संज्ञा पु.—वह योद्धा जो लड़ाई में अकेला लड़े ।

इल्लु—संज्ञा पुं. [सं.] ईख ।

इच्छ्वाकु—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्यवंश का एक प्रतापी राजा जो वैवस्वत मनु का पुत्र कहा गया है । राम इसी के वंशज थे ।

इच्छना—क्रि. स. [सं. इच्छा] चाह करना ।

इच्छ्वाकु—संज्ञा पुं. [स. इच्छ्वाकु] सूर्यवंश का एक प्रधान शासक जो वैवस्वत मनु का पुत्र माना गया है । उ.—दस सुत मनु के उपजे और भयौ इच्छ्वाकु सबनि सिरमौर—६-२ ।

इच्छा—संज्ञा स्त्री [सं.] कामना, लालसा, अभिलाषा, मनोरथ, चाह, आकांक्षा ।

इच्छित—वि. [सं.] चाहा हुआ, वांछित ।

इच्छु—संज्ञा पुं. [सं. इल्लु] ईख ।

वि. [सं.] चाहनेवाला ।

इच्छुक—वि. [सं.] अभिलाषी, चाह रखनेवाला ।

इठलाति—क्रि. अ. [हि. ऐठ+लाना=इठलाना] मटकती या नखरे दिखाती है । उ.—कहाँ मेरे कुँवर पोंच ही बरष के, रोइ अजहूँ सु पै पान माँगैँ । तू कहौँ ढीठ, जोवन-प्रमत्त सुदरी, फिरति इठलाति गोपाल आगैँ—१०-३०७ ।

इठलाना—क्रि. अ. [हि. ऐठ+लाना] (१) गर्व या ठसक दिखाना, इतराना । (२) चटकना-मटकना, नखरे करना । (२) दूसरे को छकाने के लिए जानकर अनजान बनना ।

इठलोहट—संज्ञा स्त्री. [हि. इठलाना] इठलाने की क्रिया या भाव, ठसक, ऐठ ।

इठाई—संज्ञा स्त्री. [सं. इष्ट, पा. इट्ठ+आई (प्रत्य.)] (१) रुचि, चाह । (२) मित्रता, प्रेम ।

इड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भूमि । (२) एक प्रधान नाड़ी जो पीठ की रीढ़ से बाएँ नथने तक है । चन्द्रमा

इसका प्रधान देवता माना गया है । उ.—इडा
पिगला सुषमन नारी । सहज सुता में बस मुरारी—
३४४२ (द) ।

इत—क्रि. वि. [सं. दतः] इधर, इस ओर । उ.—इत
की भई न उतकी सजनी भ्रमत भ्रमत मैं भई अनाथ—
पृ. ३२६ ।

मुहा.—इत उत—इधर उधर । उ.—(क) पग न
इत उत धरन पावत, उरभि मोह-सिवार—१-९९ ।
(ख) जब पोंडे इतउत कहूँ गए । बालक सब इकठौरे
भए—७-२ ।

इतनक—क्रि. वि. [हि. इतना] इतना छोटा-सा, बिल-
कुल जरा सा, नाममात्र का । उ.—(क) कबहि
करन गयो माखन चोरी । जानै कहा कटाच्छ तिहारे,
कमलनैन मेरौ इतनक सो री—१०-३०५ । (ख)
(कान्ह कौ) ग्वालिनि दोष लगावति चोर । इतनक
दधि माखन कै कारन कबहि गयो तेरी ओर—१०-
३१० । (ग) देखौ माई कान्ह हिलाकेयानि रोवै ।
इतनक मुख माखन लपटान्यो, डगनि आंसुवनि
धोवै—१०-३०७ ।

इतना—वि. पुं. [सं. इयत] इस मात्रा का ।

मुहा.—इतने में—इसी बीच में ।

इतनिक—वि. [हि. इतना] (१) इतनी, इस मात्रा
की, इतनी जरा सी, थोड़ी । उ.—इतनिक दूरि
जाहु चलि कासी जहाँ विकत है प्यारी—३३१६ ।

इतनी—वि. स्त्री. [हि. इतना] इस मात्रा की, इस
कदर, यह, ऐसी । उ.—इतनी सुनत कुंति उठि धाई,
बरपत लोचन-नीर—१-२९ ।

इतनो, इतनौ—वि. [हि. इतना] इस मात्रा का, इस
कदर । उ.—बौरे मन समुझि-समुझि कछु चेत ।
इतनौ जन्म अकागथ खोयौ, स्याम चिकुर भए मेत
१-३२२ ।

इतर—वि. [सं.] (१) दूसरा, और । (२) नीच,
साधारण ।

इतराई, इतराई—क्रि. अ. [हि. इतराना] ऐंठ/जाना,
घमंड या ठसक दिखाकर । उ.—दिन दिन इनकी
करौ बड़ाई अहिर गए इतराई—२५७८ ।

इतरात—क्रि. अ. [हि. उतराना, इतराना] (१) इतराते
हो, घमंड करते हो, फूले नहीं समाते हो । उ.—(क)
जम कै फंद परथो नहि जब लागि, चरननि किन
लपटात । कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत
इतरात—१-३१३ । (ख) तातै कहत सँभारहि रे
नर, काहँ कौ इतरात—२-२२ । (२) रूप-यौवन
का घमंड दिखाते हो, ऐंठते हो, ठसक दिखाते हो,
इठलाते हो । उ.—तुम कत गाय चरावन जात ?
अब काहूँ के जाउ कही जनि, आवति हैं युवती
इतरात । सूर स्याम मेरे नैनन आगे रहो काहे कहूँ
जात हौ तात—५०९ ।

इतराति, इतराती—क्रि. अ. [हि. इतराना] रूप-यौवन
का गर्व या ठसक दिखाती है, इठलाती या ऐंठती है ।
उ —(क) देही लाइ तिल केसरि कौ, जोवन-मद
इतराति । सूरज दोष देति गोबिंद कौ, गुरु लोगनि
न लजाति—१०-२६४ । (ख) देखि हरि मथति
ग्वालि दधि ठाढ़ी । जोवन मदमाती इतराती, बेनि
दुरति कटिलौ, छवि बाढ़ी—१०-३०० । (ग) धन
माती इतराती डोलै, सकुच नही करै सोर—१०-
३२० । (घ) जननि बुलाइ बाहँ गहि लीन्हौ, देखहु
री मदमाती । इनहीं कौ अपराध लगावति, वहा
फिरति मदमाती—७७५ ।

इतराना—क्रि. अ. [सं. उत्तरण, हि. उतराना] (१)
सफलता पर गर्व या ठसक दिखाना, मदांध होना ।
(२) रूप, गुण, यौवन आदि पर घमंड करना,
इठलाना ।

इतरानी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. इतराना] घमंड करने
लगी, मदांध हो गयी । उ.—सूर इतर ऊसर के
बरसे थोरेहि जल इतरानी—२०४४ ।

इतराहट—सज्ञा स्त्री. [हि. इतराना] मद, गर्व, घमंड ।
इतरेतर—क्रि. वि. [सं. इतर+इतर] परस्पर, आपस में ।
इतरौहाँ—वि. [हि. इतराना+औहाँ (प्रत्य.)] जिससे
ठसक या इतराना प्रकट हो ।

इतस्ततः—क्रि. वि. [सं.] इधर-उधर, यहाँ-वहाँ ।

इति—अव्य. [सं.] समाप्ति या अंत सूचक अव्यय ।

सज्ञा स्त्री. [सं.] समाप्ति, अंत, पूर्णता ।

इतिवृत्त—संज्ञा पुं. [स] पुरानी कथा, कहानी ।

इतिहास—संज्ञा पुं. [स.] (१) गत प्रसिद्ध घटनाओं और तत्संबंधी व्यक्तियों का काल-क्रमानुसार वर्णन ।

उ.—सर्व सास्त्र को सार इतिहास सर्व जो । सर्व पुरान को सार युत सुतनि को—१८६१ । (२) पुस्तक जिसमें प्रसिद्ध घटना और पुरुषों का वर्णन हो ।

इती—वि. [सं. इयत=इतना] ऐसी, इतनी, इस मात्रा की । उ.—(क) आजु जौ हरिहि न सख गहाऊँ ।

। स्यंदन खंडि, महारथि खंडौ, कपिध्वज सहित गिराऊँ । पाडव-दल सन्मुख है धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ । इती न करौ, सपथ तौ हरिकी, छत्रिय-गतिहि न पाऊँ—१-२७० । (ख) कैसे करि आवत स्याम इती । मनक्रम बचन ओर नहि मेरे पदरज त्यागि हितौ—११-३ । (ग) इती दूर सम कियो राज द्विज भये दुखारे—१० उ.—८ ।

इते—क्रि. वि. [हि. इत] इतने, यहाँ, इन या इतने स्थानों में । उ.—(क) (गाइ) ब्योम, धर, नद, सैल, कानन इते चरि न अघाइ—१-५६ । (ख) इते मान इहि जोग सँदेसनि सुनि अकुलानी दूखी—३०२६ ।

इतेक—वि. [हि. इत+एक] इतना एक ।

इतै—क्रि. वि. [सं. इतः, हि. इत] इधर, इस ओर, यहाँ । उ.—(क) हौ बलिहारी नंद नंदन की नैकु इतै हँसि हेरौ—१०-२१६ । (ख) आवहु आवहु इतै, कान्ह जू पाई है सब धेनु—५०२ ।

इतो—वि. [सं. इयत=इतना] इतना, इस मात्रा का ।

इतोई—वि. [सं. इयत=इतना, हि. इतो + ई (प्रत्य.)] इतना ही, यही । उ.—है हरि नाम को आधार । और इहि कलिकाल नाहीं, रह्यो विधि-व्यौहार ।

... । सकल स्तुति-दधि मथत पायौ, इतोई घृत-सार—२-४ ।

इतौ—वि. [सं. इयत=इतना] इतना, इस मात्रा का ।

उ.—(क) सूर एक पल गहर न कीन्ह्यौ, किहि जुग इतौ सह्यौ—१-४६ । (ख) तब अंगद यह बचन कह्यौ । को तरि सिधु सिया-सुधि ल्यावै, किहि बल इतौ लह्यौ—६-७४ (ग) रंक रावन, कहा उतंक

तेरौ इतौ, दोउ कर जोरि बिनसी उचारौ—६-१२६ ।

(घ) तनक दधि कारन जसोदा इतौ कहा रिसाई—३५० ।

इत्यादि—अव्य. [मं.] इसी प्रकार, अन्य, और ।

इत्यादिक—वि. [सं.] इसी प्रकार के अन्य या और ।

इत्यौ—वि. [हि. इतना] इतना, इस मात्रा का । उ.—अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ए इत्यो नहि भूखी—३०२६ ।

इधन—संज्ञा पुं. [सं. इंधन, हि. ईधन] जलाने की लकड़ी या कंड़ा, जलावन । उ.—वरवर मूढ़ा उठि खेलत बालकसु ठि आनित इधन दौरि दौरि सचार्यौ । ऐसे इहु नृप नर सकल सकेलि घर के साककरन हृद रस बकुल जार्यौ—१० उ.—५२ ।

इधर—क्रि. वि. [सं. इतर] इस ओर, यहाँ ।

इधम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काठ, लकड़ी । (२) यज्ञ की समिधा ।

इन—सर्व. [हि.] 'इस' का बहु । उ.—इन पतितनि कौ देखि-देखि कै पाछे सोच न कीन्हौ—१-१७५ ।

इनतै—सर्व. [हि. इन+तै=से] इनसे । उ.—भीषम, द्रोण, करन, सब निरखत, इनतै कछु न सरी—१-२५४ ।

इनहूँ—सर्व. सवि. [हि. इन+हूँ (प्रत्य.)] इन्होंने भी । उ.—अजुन भीम महाबल जोधा, इनहूँ मौन धरी—१-२५४ ।

इनि—सर्व. [हि. 'इस' का बहु,] इन, इन्होंने । उ.—इनि तब राज बहुत दुख पाए । इनकै गृह रहि तुम सुख मानत । अति निलज, कछु लाज न आनत—१-२८४ ।

इने-गिने—वि. [अनु. हि. इन-गिनना] (१) कुछ, थोड़े से । (२) चुने हुए, गिने-गिनाए ।

इनै—सर्व. [हि. इन] इनको । उ.—बडो गिरिराज गोवर्धन इने रहौ तुम माने—६३३ ।

इन्ह—सर्व. [हि. इन] इन ।

इभ—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी । उ.—राधे तेरे रूप की अधि-काइ ... । इभ तूटत अरु अरुन पंक भए विधिना आन बनाइ—२२२४ ।

इभकुंभ—संज्ञा स्त्री [सं.] हाथी का मस्तक ।

इभ्य—वि. [सं.] जिसके पास हाथी हो, धनी ।

संज्ञा पुं.—राजा ।

इमरती—संज्ञा स्त्री. [सं. अमृत] एक मिठाई ।

इमली—संज्ञा स्त्री. [अम्ल+हि.ई (प्रत्य.)] एक बड़ा पेड़ जिसमें लंबी लंबी खट्टे गूदेदार फलियाँ लगती हैं ।

इमि—क्रि. वि. [सं. एवम्] इस तरह, इस प्रकार । उ.—
(क) ज्यों जल मसक जीव-घट-अंतर, मम माया इमि जानि—३८१ । (ख) सूर भजन-महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे—१०-५८ ।

इयत्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सीमा, हद ।

इरषा—संज्ञा स्त्री. [सं. ईर्ष्या] ईर्ष्या, डाह, जलन । उ.—
इंद्र देखि इरषा मन लायौ । करकै क्रोध न जल बरसायौ—५-२ ।

इरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भूमि, पृथ्वी । (२) वाणी । (३) मदिरा ।

इषना—संज्ञा स्त्री. [सं. एषणा] प्रबल इच्छा, कामना, वासना ।

इला—संज्ञा स्त्री. [सं.] वैवस्वत मनु की कन्या जो बुध को ब्याही थी और जिससे पुरुरवा उत्पन्न हुआ था ।
(२) पृथ्वी । (३) वाणी, सरस्वती ।

इलाचीपाक—संज्ञा स्त्री. [सं. एला + ची (फा. प्रत्य. 'च') + स. पाक] एक प्रकार की मिठाई जो इलायची के दानों को चीनी में पाक कर बनायी जाती है ।

इलावर्त, इलावृत—संज्ञा पुं. [सं. इलावृत्त] जंबू द्वीप के एक खंड का नाम ।

इव—अव्य. [सं.] समान, तरह, तुल्य ।

इषण—संज्ञा स्त्री. [सं. एषण] प्रबल इच्छा, कामना, वासना ।

इषु—संज्ञा पुं. [सं.] बाण, तीर ।

इषुधी—संज्ञा पुं. [सं.] तूणीर, तरकश ।

इषुमान—वि. [सं.] बाण चलाने वाला ।

इष्ट—वि. [सं.] (१) इच्छित, चाहा हुआ । (२) अभिप्रेत । (३) पूजित ।

संज्ञा पुं. [सं.] वह देवता जिसकी पूजा से कामना की सिद्धि होती है, इष्टदेव, कुलदेव । उ.—ये बसिष्ठ

कुल-इष्ट हमारे, पातागन कहि सखनि सिखावत—

६-१६३ ।

इष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मित्रता ।

इष्टदेव—संज्ञा पुं. [सं.] आराध्य देव, कुलदेवता ।

इष्टसुर—संज्ञा पुं. [सं.] आराध्यदेव, कुलदेव, इष्टदेव ।

उ.—इष्टसुरनि बोलत नर तिहि सुनि, दानव-सुर बड़ सूर—६-२६ ।

इष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] इच्छा, अभिलाषा, यज्ञ विशेष ।

इष्य—संज्ञा पुं. [सं.] वसंत ऋतु ।

इस—सर्व. [सं. एषः] 'यह' का विभक्ति के पूर्व आदिष्ट रूप ।

इसे—सर्व. [सं. एष] 'यह' का कर्मकारक और संप्रदानरूप ।

इस्त्री—संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री] स्त्री, नारी । उ.—इस्त्री पुरुष नहीं कुछ नाम—१००५

इहँ—सर्व [सं. इह] यह । उ.—देव-दानव-महाराज-रावन सभा, कहन कौं मंत्र इहँ कपि पठाओ—६-१२८ ।

इहँई—क्रि. वि. [हि. इह+ई (प्रत्य.)] यहाँ ही, इसी स्थान पर । उ.—(क) इहँई रहौ तौ बंदौ कन्हई । आपु गई जसुमतिहि सुनावन दै गई स्यामहि नंद दुहाई—८५७ । (ख) की इहँई पिय को न बुलावै की तौई चलि जाहीं—२१४५ ।

इह—क्रि. वि. [सं.] इस जगह, इस लोक में, यहाँ ।

संज्ञा पुं.—यह संसार, यह लोक ।

वि.—यह, इस प्रकार की । उ.—तासो भिरहु तुमहि मो लायक इह हेरनि मुसकानि—२४२० ।

इहई—वि. [हि. इह=यह] यही, ऐसा ही । उ.—(क) इहई बात मधुपुरी जहँ तहँ दासी कहत डरत जिय भारी—२६४० । (ख) रसना इहई नेम लियौ है और नहीं भाखौ मुख बैन—२७६८ ।

इहलौकिक—वि. [सं.] (१) सांसारिक, इस लोक से सम्बन्ध रखनेवाला । (२) इस लोक में सुख देने वाला ।

इहवाँ—क्रि. वि. [हि. इह] इस जगह, यहाँ ।

इहाँ—क्रि. वि. [हि. इह] यहाँ, इस जगह । उ.—नाहक मै लाजनि मरियत है, इहाँ आइ सब नासी—१-१६२ ।

(२) इधर, इस ओर । उ.—तहँ भिल्लनि सौ भई

लराई । लूटे सब बिन स्याम-सहाई । अर्जुन बहुत
दुखित तब भए । इहाँ अपसगुन होतनित नए—
१-२८६ । (३) इस लोक या संसार में । उ.—ते
दिन बिसरि गए इहाँ आए । अति उन्मत्त मोह-मद
छाक्यौ, फिरत केस बगराए—१-३२० ।
इहाँई, इहाँउ—क्रि. वि. [हि. यहाँ+उ प्रत्य.] यहाँ भी ।
इस लोक में भी । उ.—प्रगट पाप-संताप सूर अब,
कायर हठै गहौ । और इहाँउ विवेक-अग्नि के
बिरह-बिपाक दहौं—३-२ ।
इहिं—वि. [हि. इह=यह] इस, इसी, यही, इस प्रकार ।
उ.—(क) इहि लाजनि मरिऐ सदा, सब कोउ कहत
तुम्हारी (हो)—१-४४ । (ख) सुंदर कर आनन समीप
अति राजत इहि आकार । जलरुह मनौ बैर बिधु सौं
तजि, मिलत लए उपहार—१०-२८३ ।
सर्व.—इसे, इसको, इसने । उ.—(क) सूर स्याम
इहि बरजि कै मेटौ अब कुल-गारी (हो)—
१-४४ । (ख) इहि विधि इहि डहके सबै,
जल-यल-नभ-जिय जेते (हो)—१-४४ ।
इहि—वि. [हि. इह=इस] इस, यही । उ.—इहि आँगन
गोपाललाल को कबहुँक कनियाँ लैहौ—२५५० ।
सर्व.—इस, इससे । उ.—बिरद छुडाइ लेहु बलि
अपनौ, अब इहि तैं हद पारौ—१-१६२ ।
इही—वि. [हि. इह=यह] इसी । उ.—यह जिय जानि,
इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार—१-६८ ।
इहै—सर्व. [हि. इह] यही, यहही । उ.—(क) तीनौ पन
ओर निबहि, इतै स्वाँग कौ काछे—१-१३६ । (ख)
यही गोप, यह ग्वाल इहै सुख, यह लीला कहूँ तजत
न साथ । (ग) मानो माई सबन इहै है भावत—२८३५
ई

ई—देवनागरी वर्णमाला का चौथा स्वर । यह 'इ' का
दीर्घरूप है । तालु इसका उच्चारण स्थान है । यह
प्रत्यय की भाँति शब्दों में जुडकर विभिन्न शब्द-रूप
बनाता है ।

ईगुर—संज्ञा पुं. [सं. हिगुल, प्रा. इंगुल] चमकिले लाल रंग
का एक खनिज पदार्थ जिसकी बिंदी सौभाग्यवती
हिंदू स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं ।

ईचना—क्रि. स. [सं. अंजन=जाना, ले जाना, खीचना]
खीचना, ऐँचना ।

ईडरी—संज्ञा स्त्री, [सं. कुंडली] वह कुंडलाकार गड़ी जो
सर पर घडा या बोझ उठाते समय रखी जाती है ।

ईधन—संज्ञा पुं. [सं. इंधन] जलाने की लकड़ी या कंडा ।

ई—सर्व. [सं. ई=निकट का संकेत] यह ।

अव्य. [सं. हिं.] प्रयोग या शब्द पर जोर देने का
अव्यय, ही ।

ईक्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दर्शन । (२) नेत्र । (३)
जोच, विचार ।

ईख—संज्ञा स्त्री. [सं. इक्षु, प्रा. इक्खु] ऊख, गन्ना ।

ईछन—संज्ञा पुं. [सं. ईक्षण=आँख] आँख ।

ईछना—क्रि. स. [सं. इच्छा] इच्छा करना, चाहना ।

ईछा—संज्ञा स्त्री. [सं. इच्छा] चाह, रुचि ।

ईछी—संज्ञा स्त्री. [सं. इच्छा] इच्छा, चाह, रुचि ।

ईठ—संज्ञा पुं. [सं. इष्ट, प्रा. इट्] मित्र, सखा, सखी ।

ईठना—क्रि. अ. [सं. इष्ट] इच्छा करना ।

ईठि—संज्ञा स्त्री. [सं. इष्टि, प्रा. इट्टि] (१) मित्रता,
प्रीति । (२) चेष्टा, यत्न ।

ईठीदाडू—संज्ञा पुं. [हि. ईठी+दंड] चौगान खेलने का
डंडा ।

ईड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं. ईडा=स्तुति] स्तुति, प्रशंसा ।

ईड़ित—वि. [सं.] प्रशंसित ।

ईढ़—वि. [सं. इष्ट, प्रा. इट्] हठ, जिद, टेक ।

ईतर—वि. [हिं. इतराना] इतरानेवाला, ढीठ । उ.—गई
नद घर को जसुमति जहँ भीतर । देखि महर को
कहि उठीं सुत कीन्हो ईतर ।

क्रि. अ.—इतराते हैं । उ.—नान्हे लोग तनक
धन ईतर—१०४२ ।

वि. [सं. इतर] निम्नश्रेणी का, साधारण, नीच ।

ईति—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) खेती को हानि पहुँचानेवाले
छह प्रकार के उपद्रव—अति वृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी
पडना, चूहे लगना, पक्षियों की बढ़ती, शत्रु का
आक्रमण । उ.—अब राधे नाहिमैं ब्रजनीति ।।
पोच पिसुन लस दसन सभासद प्रभु अनंग मंत्री बिनु
भीति । सखि बिनु मिलै तो ना बनि ऐहै कठिन

कुराज राज की ईति—२२२३ । (२) पीडा, दुख । उ.
तुम हो संत सदा उपकारी जानत हो सब रीति ।
सूरदास ब्रजनाथ बचै हो ज्यो नहि आवै ईति—
३४२० ।

ईदृश—क्रि. वि. [सं.] इस प्रकार, ऐसे ।

वि.—इस प्रकार का, ऐसा ।

ईप्सा—संज्ञा स्त्री. [सं.] इच्छा, अभिलाषा ।

ईप्सित—वि. [सं.] इच्छित, अभिलाषित ।

ईप्सु—वि. [सं.] चाहनेवाला ।

ईरखा—संज्ञा पुं. [सं. ईर्ष्या] डाह, द्वेष ।

ईरिण—संज्ञा पुं. [सं.] बलुआ मैदान, ऊसर ।

ईर्षणा—संज्ञा स्त्री [सं. ईर्ष्या] ईर्ष्या, डाह ।

ईर्षा—संज्ञा स्त्री. [सं. ईर्ष्या] डाह, द्वेष ।

ईर्षालु—वि. [सं.] दूसरे से डाह रखनेवाला ।

ईर्ष्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] डाह, द्वेष ।

ईश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वामी । (२) राजा । (३)

ईश्वर । (४) महादेव । (५) ग्यारह की संख्या ।

ईशपुर—संज्ञा पुं. [सं.] शिवजी का नगर । उ.—जो
गाहक साधन के ऊधो ते सब बसत ईशपुर काशी—

३३१५ ।

ईशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ऐश्वर्य । (२) ऐश्वर्य-
संपन्न नारी ।

ईशान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वामी, अधिपति ।
(२) शिव । (३) ग्यारह की संख्या । (४) पूरब-
उत्तर का कोना ।

ईशिता, ईशित्व—संज्ञा स्त्री. [सं.] आठ सिद्धियों में से
एक जिससे साधक सब पर शासन कर सकता है ।

ईश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वामी । (२) भगवान ।

ईश्वरीय—वि. [सं.] (१) ईश्वर-संबंधी । (२) ईश्वर का ।

ईषत्—वि. [सं.] थोड़ा, कुछ, अल्प ।

ईषद्, ईषद्—वि. [सं.] थोड़ा, कुछ, कम, अल्प ।

उ.—(क) ईषद् हास दंत-दुति बिगसति, मानिक

मोती धरे जनु पोइ—१०-२१० । (ख) असन अधर

कपोल नासा सुभग ईषद् हास—१३५६ ।

ईषना—संज्ञा स्त्री. [सं. एषण] प्रबल, इच्छा ।

ईस—संज्ञा पुं. [सं. ईश] (१) शिव । (२) राजा । (३)

भगवान । (४) स्वामी, अधिष्ठाता । उ.—कर्मभवन
के ईस सनीचर स्याम बरन तन हैहै—१०-८६ ।

ईसन—संज्ञा पुं. [सं. ईशान] पूरब और उत्तर के बीच
का कोना ।

ईसर—संज्ञा पुं. [सं. ऐश्वर्य] धन-संपत्ति ।

ईसान—संज्ञा पुं. [सं. ईशान] (१) स्वामी । (२) शिव ।

(३) पूरब उत्तर का कोना ।

ईस्वर—संज्ञा पुं. [सं. ईश्वर] परमेश्वर, भगवान ।

ईम्बरता—संज्ञा स्त्री [हिं. ईश्वरता] ईशता, स्वामित्व,
प्रभुत्व । उ.—कै कहूँ खान-पान रमनादिक, कै कहूँ
बाद अनैसै । कै कहूँ रंक, कहूँ ईश्वरता, नट-बाजी
गर जैसै—१-२६३ ।

ईहा संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चेष्टा । (२) इच्छा ।

ईहित—वि. [सं.] इच्छित, अभीष्ट ।

ईह्यो—क्रि. वि. [हिं. यहाँ] यहाँ, इस स्थान पर ।
उ.—अब वै बातै ईह्यो रही । मोहन मुख मुसकाइ
चलत कछु काहू नही कही—२५४२ ।

उ

उ—देवनागरी वर्णमाला का पाँचवाँ स्वर । ओष्ठ
इसका उच्चारण-स्थान है ।

उंगली—संज्ञा स्त्री. [सं. अंगुलि] अंगुली ।

उँचाइ—क्रि. स. [हिं. उँचोना] उठाकर, ऊँचा करके ।

उ.—सुनौ किन कनकपुरी के राइ । हौ बुधि-बल-
छल करि पचि हारी, लख्यौ न सीस उँचाइ—
६-७८ ।

उँचाई—संज्ञा स्त्री. [सं. उच्च] (१) ऊँचापन । (२)
बड़प्पन, महत्व ।

क्रि. स.—[हिं. उचाना] उठाकर, ऊँचा करके ।

उ.—बलि कह्यौ बिलंब अब नेकु नहि कीजिए
मंदराचज अचल चलौ धाई । दोऊ एक मंत्र
करि जाइ पहुँचे तहाँ कह्यौ अब लीजिए यहि
उँचाई ।

उँचान—संज्ञा पुं. [हिं. ऊँचा] ऊँचाई ।

उँचाना—क्रि. स. [हिं. ऊँचा] ऊँचा करना, उठाना ।

उँचाव—संज्ञा पुं. [सं. उच्च] ऊँचाई, ऊँचापन ।

उँचास—संज्ञा पुं. [हि. ऊँचा] ऊँचा होने का भाव ऊँचाई ।
 उँजरिया—संज्ञा स्त्री. [हि. अँजोरी, अँजोरिया] (१) प्रकाश । (२) चाँदनी ।
 उँजियार—संज्ञा पुं. [हि. उजियाल] उजाला, प्रकाश ।
 उँजेरा, उँजेला—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] प्रकाश, उजाला
 उँज्यारी—संज्ञा स्त्री. [हि. उजियाला] (१) प्रकाश ।
 (२) चाँदनी ।
 उँदुर—संज्ञा पुं. [स.] चूहा, मूसा ।
 उँह—अव्य. [अनु.] (१) घृणा अथवा अस्वीकृति सूचक शब्द । (२) वेदना-सूचक अव्यय ।
 उ—संज्ञा पुं. [स.] (१) ब्रह्मा (२) नद ।
 अव्य.—भी ।
 उअना—क्रि. अ. [हि. उदयना] उदय होना, उठना ।
 उअना—क्रि. स. [हि. 'उअना' का प्रे०] उगाना, उदय करना ।
 क्रि. स. [स-उद्गुरण, पा. उग्गुरन = हथियार तानना] मारने के लिए शस्त्र उठाना ।
 उई—क्रि. अ. [हि. उदयन, उअना] उदय हुई, जन्मी, उगी । उ.—जानौ नहीं कहते आवति वह मूरति मन मॉह उई—१४३३ ।
 उअण—वि. [स. उत्+ ऋण] जिसका ऋण से उद्धार हो गया हो, ऋण-मुक्त । उ.—कैसेहु करि उअण कीजै बधुन ते मोहि—२६२४ ।
 उकचन—संज्ञा पुं. [स. मुचकुन्द] मुचकुन्द का फूल ।
 उकचना—क्रि. अ. [स. उत्कर्ष, पा. उक्कस=उखाड़ना] (१) उखड़ना, अलग होना । (२) भागना, स्थान त्यागना ।
 उकटना—क्रि. स. [स. उत्कथन, पा. उक्कथन,] बार-बार कहना, उघटना ।
 उकटा—वि. [हि. उकटना] उपकार जतानेवाला ।
 उकठ—क्रि. अ. [हि. उकठना] सूखकर । उ.—मधु-वन तुम क्यों रहत हरी । ... । कौन काज ठाढ़ी रही वन मे काहे न उकठ परी—२७४१ ।
 उकठना—क्रि. अ. [सं. अव+काष्ठ=लकड़ी] सूखना, फूँट जाना ।

उकठा—वि. [हि. उकठना] शुष्क, सूखा ।
 उकठि—क्रि. अ. [हि. उकठना] सूख कर, शुष्क होकर ।
 उ.—अंकुरित तरु-पात, उकठि रहे जे गात, बन बेलि प्रफुलित कलिनि कहर के—१०-३० ।
 उकठे—क्रि. अ. [हि. उकठना] सूख गये, शुष्क हो गये ।
 उकताना—क्रि. अ. [सं. आकुल, पु. हि. अकुताना] (१) ऊबना । (२) आकुल होना, उतावली करना, जल्दी मचाना ।
 उकति—संज्ञा स्त्री [स. उक्ति] कथन, वचन ।
 उकलना—क्रि. अ. [स. उत्कनल=खुलना] अलग होना ।
 उकसन उकसनि—संज्ञा स्त्री. [हि. उकसना] उभाड़, अंकुरित होने की क्रिया ।
 उकसना—क्रि. अ. [स. उत्कर्षण या उत्सुक] (१) ऊपर को उठना । (२) अंकुरित होना । (३) खोदना ।
 उकसाना—क्रि. स. [हि. 'उकसना' का प्रे.] (१) उत्तेजित करना । (२) उठा देना, हटाना ।
 उकसाय—क्रि. स. [हि. उकसाना] (१) उत्तेजित करके । (२) हटाकर, उठाकर । (३) खोदकर ।
 उकसारत—क्रि. स. [हि. उकसाना] ऊपर उठाकर ।
 उ—कहा भयौ जो घर कै लरिका, चोरी माखन खायौ । इतनी कहि उकसारत बाहँ, रोष सहित बल धायौ—३७४ ।
 उकसि—क्रि. अ. [हि. उकसना] (१) उभरकर, ऊपर उठकर । (२) खुदकर
 उकसौहॉ—वि. [हि. उकसना+औहॉ (प्रत्य.)] उभड़ता हुआ ।
 उकासत—क्रि. स. [हि. उकसाना] (१) उभाड़ते हैं, ऊपर को खींचते हैं । (२) खोदते हैं । उ—गैयों बिडरि चली जित तितको सखा जहाँ तहँ धेरै । बृषभ सृंग सो धरनिउकासत बल मोहन तन हेरै ।
 उकासना—क्रि. स. [हि. उकसाना] (१) उभाड़ना । (२) खोदना ।
 उकुति—संज्ञा स्त्री. [स. उक्ति] कथन, वचन ।
 उकुसना—क्रि. स. [हि. उकसना] उजाड़ना, नष्ट करना ।

उकुसि—क्रि. स. [हि. उकुसना] उजाड़ कर, नष्ट करके।
उकेलना—क्रि. स. [हि. उकलना] उजाड़ना, नोचना।
उक्त—वि [सं.] कथित, कहा हुआ, ऊपर का।

संज्ञा स्त्री—(१) कथन, बात। (२) अनोखा, विशेषार्थपूर्ण कथन। उ—सूरदास तज ब्याज उक्त सब मोसो कौन चेतावै—सा. ८४।

उक्तगूढ़—संज्ञा स्त्री. [सं. उक्ति + गूढ़ = गूढोक्ति] (१) एक अलंकार जिसमें विशेषार्थक गूढ़ बात बात करने वाले के अतिरिक्त किसी तीसरे व्यक्ति के प्रति कही जाय। (२) गूढ़ वचन, विशेषार्थक कथन। उ—उक्तगूढ़ ते भाव उदे सब सूरज स्याम सुनावै—सा. उक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कथन, वचन। (२) चमत्कारपूर्ण वाक्य। उ—सूरज प्रभु मिलाप हित स्यानी अनमिल उक्ति गनावै—सा. १५।

उक्तियुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] सम्मति और उपाय।

उखटना—क्रि. अ. [सं. उत्कपेण] (१) लड़खड़ाना। कुतरना।

उखड़ना—क्रि. अ. [हि.] (१) अलग होना। (२) टूट जाना।

उखरना—क्रि. अ. [हि. उखड़ना] उखड़ना, अलग होना।

उखरे—क्रि. अ. [हि. उखड़ना] अलग हुए, छूट गये। उ.—माड़े माड़ि दुनेरो चुपरे। वह घृत पाइ आपुहि उखरे—२३२१।

उखाड़ना—क्रि. स. [हि. 'उखड़ना' का प्रे.] (१) अलग करना। (२) भड़काना, बिचकाना। (३) ध्वस्त करना।

उखारति—क्रि. स. [हि. उखाड़ना ('उखड़ना' का स. रूप)] उखाड़ती है, तोड़ती है। उ.—माधौ जू, यह मेरी गाइ। ...,। फिरति बेद-वन-ऊख उखारति, सब दिन अरु सब राति—१-५१।

उखारना—क्रि. स. [हि. उखाड़ना] उखाड़ना।

उखारि—क्रि. स. [हि. उखाड़ना] उखाड़ या खोदकर। उ.—कहौ तौ लंछ उखारि डारि देउं जहाँ पिता सपति कौ—६-८४।

उखेरना—क्रि. स. [हि. उखाड़ना] अलग करना, छुड़ाना।

उखेरे—क्रि. स. [हि. उखाड़ना] उखेड़ना, अलग करना, छुड़ाना। उ.—मन तो गए नैन हैं मेरे।। क्रम क्रम गए कह्यौ नहि काहू स्याम सग अरु मेरे।। सूर लटक लागे अंग छवि पर निठुर न जात उखेरे—पृ. ३२०।

उखेरो—क्रि. स. [हि. उखाड़ना] उखाड़ लो, अलग करो, पृथक करो। उ.—कियो उपाइ गिरिवर धरिबे को महि ते पकरि उखेरो—६५६।

उखेलना—क्रि. स. [सं. उल्लेखन] लिखना, चित्र खींचना।

उखेला—क्रि. स. [हि. उखेलना] चित्रित किया, लिखा।

उगतना—क्रि. अ. [सं. उद्घाटन] (१) बार-बार कहना (२) ताना मारना।

उगत—क्रि. अ. [सं. उद्गमन, पा उग्गवन, हि. उगना] निकलता है, उदय होता है। उ—उगत अरुन बिगत सर्वरी, ससाक किरन-हीन दीपक सु मलीन, छीन-दुति समूह तारे—१०-२०५।

उगन—क्रि. अ. [सं. उद्गमन, हि. उगना] उगना, उदय या प्रकट होना। उ—कहौ तौ सूरज उगन देहुं नहि, दिसि दिसि बाढ़ै ताम—६-१४८।

उगना—क्रि. अ. [सं. उद्गमन, पा, उग्गवन] (१) उदय होना, निकलना। (२) जमना, अंकुरित होना। (३) उपजना, उत्पन्न होना।

उगरना—क्रि. अ. [सं. अग्र] सामने निकलना।

उगलत—क्रि. स. [हि. उगलना] मुँह से बाहर निकलता या गिरता है। उ.—खवत जलकुच परत धारा नही उपमा पार। मनो उगलत राहु अमृत कनक गिरि पर धार—१८४९।

उगलना—क्रि. स. [सं. उद्गिलन] (१) मुँह की वस्तु को थूकना। (२) दूसरे का लिया हुआ माल वापस करना। (३) गुप्त भेद खोलना।

उगवना—क्रि. स. [हि. 'उगना' का स. रूप] (१) उगाना, उदय करना। उत्पन्न करना।

उगवै—क्रि. स. [हि. उगवना] (१) उदय करती है। (२) उत्पन्न करती है।

उगवें—क्रि. अ. [हिं. उगना] उपजे, उत्पन्न हो ।

उगसाना—क्रि. स. [हिं. उकसाना] (१) उभाड़ना, उत्तेजित करना । (२) उठाना ।

उगसारना—क्रि. स. [हिं. उकसाना] कहना, प्रकट करना ।

उगसारा—क्रि. स. [हिं. उकसाना] कहा, प्रकट किया ।

उगाना—क्रि. स. [हिं. 'उगना' का. स. रूप] (१) अंकुरित करना, उत्पन्न करना । (२) उदय करना । (३) मारने को शस्त्र तानना ।

उगार, उगारु—संज्ञा पुं. [सं. उद्गार, पा. उग्गाल, हि. उगाल] रस, आनंद । उ.—(क) स्यामल गौर कपोल सुचारु । रोकि परस्पर लेत उगारु—१८२७ । (ख) गौर स्याम कपोल सुललित अधर अमृत सार । परस्पर दोउ पियरु प्यारी रीकि लेत उगार—पृ० ३५१ (७५) ।

उगाहत—क्रि. स. [हिं. उगाहना] वसूल करते हैं । उ.—हाट बाट सब हमहि उगाहत अपनो दान जगात—१०८७ ।

उगाहना—क्रि. स. [सं. उद्ग्रहण, प्रा. उग्गहन] वसूल करना ।

उगाही—संज्ञा स्त्री [हिं. उगाहना] (१) वसूल करने का कार्य या भाव । (२) वसूल हुआ धन ।

उगाहु—क्रि. स. [हिं. उगाहना] वसूल करो, ले लो । उ.—सद माखन तुम्हरेहि मुख लायक लीजै दान उगाहु—११७४ ।

उगिलै—क्रि. स. [हिं. उगलना] उगल दे, थूके । उ.—मारति हौं तोहि बेगि कन्हैया, बेगि न उगिलै माटी—१०-२५५ ।

उगिलौ—क्रि. स. [सं. उद्गिलन, पा. उग्गिलन, हि. उगलना] थूक दो, उगल दो । उ.—मोहन काहैं न उगिलौ माटी—१०-२५४ ।

उगेउ—क्रि. अ. [हिं. उगना] उगा, उदय हुआ ।

उगैया—क्रि. [हिं. उगाना] उगानेवाले, उत्पन्न करने वाले, प्रकटानेवाले । उ.—जिहि सरून मोहे ब्रह्मा-दिक, रवि-ससि कोटि उगैया । सूरदास तिन प्रभु चरननि की, बलि-बलि मैं बलि जैया—१०-१३१ ।

उग्यो—क्रि. अ. भूत. [सं. उद्गमन, पा. उग्गवन, हिं. उगना] निकला, उदय हुआ, प्रकटा । उ.—सूर-दास रसरासि रस बरसि कै चली, जानौ हर-तिलक कुहू उग्यौ री—६९१ ।

उग्र—वि [सं.] प्रचंड, प्रबल, घोर, तेज ।

उग्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रचंडता, प्रबलता, तेजी ।

उग्रधन्वा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र । (२) शिव ।

उग्रशेखरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] शिव के मस्तक की गंगा ।

उग्रमेन—संज्ञा पुं. [सं.] मथुरा के राजा जो कंस के पिता थे । कंस ने इन्हें बन्दीगृह में डाल रखा था । श्रीकृष्ण ने कंस को मार कर इनका उद्धार किया और पुनः इन्हें सिंहासन पर बैठाया ।

उग्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्गा, महाकाली । (२) कर्कशा स्त्री ।

उर्ग—संज्ञा पुं [सं. उरग] सर्प । उ.—बेनी लसते कहौ छवि ऐसी महलनि चित्रे उर्ग—२५६२ ।

उघट—क्रि. अ. [सं. उत्कथन, पा. उक्कथन, अथवा सं० उद्घाटन, पा. उग्घाटन, हि. उघटना] ताल देकर, सम पर तान तोड़कर । उ.—कोउ गावत, कोउ मुरलि बजावत, कोउ बिषान, कोउ बेनु । कोउ निरतत कोउ उघटि तार दै, जुरी ब्रज-बालक सेनु—४४८ ।

उघटत—क्रि. अ. [सं. उघटना] ताल देकर, सम पर तान तोड़कर । उ.—(क) कोउ गावत, कोउ नृत्य करत कोउ उघटत, कोउ करताल बजावत—४८० । (ख) कालि नाग के फन पर निरतत, संकषन कौ बीर । लाग मान थेइ-थेइ करि उघटत, ताल मृदंग गँभीर—५७५ । (ग) उघटत स्याम नृत्यत नारि—पृ० ३४६ (४५) ।

उघटति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. उघटना] (१) ताल देती है, सम पर तान तोड़ती है । उ.—बहुँ गावति, कबहुँ नृत्यत, कबहुँ उघटति रंग—पृ० ३४६ (४५) । (२) किसी को बुर-भला कहते कहते बाप-दादे तक पहुँचना । उ.—उघटति हौ तुम मात-पिता लौं, नहि जानौ तुम हमको—१०८६ ।

उघटना—क्रि. अ. [सं. उत्कथन, पा. उक्कथन अथवा सं० उद्घाटन, पा. उग्घाटन] (१) ताल देना, सम पर तान

तोड़ना । (२) बीती बातको उभाड़ना । (३) उपकार जताना । (४) किसी को गाली देते-देते बाप-दादे तक पहुँचना ।

उघटा—वि. [हि. उघटना] उपकार जतानेवाला ।

उघट्यौ—क्रि. अ. [सं. उद्घाटन, पा. उग्घाटन, हि. उघटना] ताल दी, सम पर तान तोड़ी । उ—मन मेरै नट के नागर ज्यौ तिनहीं नाच नचायौ । उघट्यौ सकल सँगीत-रीति भव अंगनि अंग बनायौ । काम-क्रोध-मद-लोभ मोह की तान-तरंगनि गायौ—१-२०५ ।

उघड़ना—क्रि. अ. [सं. उद्घाटन, प्रा. उग्घाटन] (१) खुलना, आवरण रहित होना । (२) प्रकट होना, प्रकाशित होना । (३) नग्न होना । (४) भेद खुलना, भंडा फूटना ।

उघर—क्रि. अ. [हि. उघरना] प्रकट होना, ज्ञात होना ।

उ.—उघर आयौ परदेसी को नेह—१० उ.—६० ।

उघत—क्रि. अ. [हि. उघटना] (१) खुलता है, आवरण या परदा हटता है । उ.—(क) राखौ पति गिरिवर गिरिधारो । अब तौ नाथ रह्यौ कछु नाहिन उघरत माथ अनाथ पुकारी—१-२४८ । (ख) जैसे सपनो सोइ देखियत तैसौ यह संसार । जात बिलय है छिनक मात्र मै उघरत नैन-किवार । (२) असली रूप में प्रकटती है, असलियत खुलती है, भंडा फूटता है । उ.—सेमर-फूल सुरंग अति निरखत, मुदित होत खग-भूप । परसत चोच तूल उघरत मुख, परत दुःख कै कूप—१-१०२ । (३) ऊपर उठता है, उभरता है । उ.—हेरत हरष नन्दकुमार । बिनु दिये बिपरीत कवजा पग छुपाईन भार । रच उघरत देष नीरुन मान उरवर भेद—सा. ३६ ।

उघरना—क्रि. अ. [सं. उद्घाटन, पा. उग्घाटन, हि. उघटना] (१) खुलना, आवरणरहित होना । (२) नग्न होना । (३) प्रकट या प्रकाशित होना । (४) भेद खुलना, भंडा फूटना ।

उघर्यौ—क्रि. अ. [सं. उद्घाटन, पा. उद्घाटन, हि. उघरना] खुल गया खिसक गया । उ.—(क) छोरे निगड़, सोआए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघर्यौ—१०-८ । (ख) डोलत तनु सिर अंचर उघर्यौ, बेनी पीठ डुलति इहि भाइ—१०-२६८ ।

उघरारा—संज्ञा पुं. [उघरना] खुला हुआ स्थान ।

वि.—(१) खुला हुआ । (२) खुला रहनेवाला ।

उघरार—संज्ञा पुं. सवि. [हि. उघरारा] खुले स्थान में ।

उघरि—क्रि. अ. [हि. उघरना] खुलता है, आवरण हटता है । उ.—स्यामा स्याम सो होरी खेलत आज नई ।...सूरदास जसुमति के आगे उघरि गई कलई । (२) खुल गये, बन्द न रहे । उ.—सहज कपाट उघरि गए ताला कुँजी टूटि—२६२५ । (३) नंगा होकर ।

मुहा.—उघर नच्यौ चाहत हौ—लोकलाज की परवाह न करके मनमानी करना चाहता हूँ । उ.—हौ तौ पतित सात पीढ़िन कौ पतितै है निस्तरिहौ । अब हौ उघरि नच्यौ चाहत हौ तुम्हें विरद विन करिहौ—१-१३४ ।

(४) प्रकट होना । (५) भेद खुलना, भण्डा फूटना । उ.—(क) थोरे ही में उघरि परैगे अतिहि चले इतराइ—पृ० ३२२ । (ख) हम जातहि वह उघरि परैगी दूध दूध पानी सो पानी—१२६२ ।

उघरी—क्रि. अ. [हि. उघरना] प्रकट हो गयी । उ.—ह्यौ ऊधो काहेको आए कौन सी अटक परी । सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु सब पाती उघरी—३३४६ ।

उघरे—क्रि. अ. [सं. उद्घाटन, पा. उग्घाटन, हि. उघरना] खुले, आवरणरहित हुए । उ.—बदन उघारि दिखायौ अपनौ, नाटक की परिपाटी । बड़ी बार भई लोचन उघरे, भरम-जवनिका फाटी—१०-२५४ ।

उघाड़ना—क्रि. स. [हि. 'उघड़ना' का सक.] (१) खोलना, आवरण हटाना । (२) प्रकट करना । (३) भेद खोलना, भण्डा फोड़ना ।

उघार—क्रि. स. [हि. उघारना] खोलकर, खोल दे—(क) पलक नेक उघार देखत आय सुन्दर गात—सा. ६६ । (ख) मनिन बार बसन उघार । संभु-कोप दुआर आयौ आद को तनु मार—सा. ८६ ।

उघारत—क्रि. स. [हि. उघारना] खोलते हैं, ढकना हटाते हैं । उ.—सूनें भवन कहुँ कोउ नाहीं मनु याही को राज । भाँड़े धरत, उघारत, मूँदत दधि माखन केँ काज—१०-२७७ ।

उधारन—क्रि. स. [सं. उद्घाटन, प्रा. उग्घाडन, हि. उधारन] खोलना, आवरण हटाना । उ.—लाल उठौ मुख धोइए, लागी बदन उधारन—४१९ ।

उधारना—क्रि. स. [सं. उद्घाटन, प्रा. उग्घाडन, हि. उघाडना] (१) खोलना, आवरण रहित करना । (२) प्रकट करना, प्रकाशित करना ।

उधारि—क्रि. स. [हि. उधारना] (१) खोलकर, आवरण रहित करके, नग्न करके । उ—(क) जीरन पट कुपीन तन धारि । चल्थौ सुरसरी, सीस उधारि—१ ३४१ । (ख) बिदुर सस्त्र सब तबहि उतारि । चल्थौ तीरथनि मुंड उधारि १-२८४ । (२) खोलकर, प्रकट करके, बताकर । उ—नीके जाति उधारि आपनी जुवतिन भले हँसायौ—१०६८ ।

क्रि. वि.—(१) साफ-साफ, स्पष्ट रूप से । उ.—अनलायक हम हैं की तुम हौ कहौ न बात उधारि—२४२० । (२) प्रकट करके, प्रकाशित रूप से । उ.—चलीं गावति कृष्ण के गुन हृदय ध्यान विचारि । सबके मन जो मिलै हरि कोउ न कहत उधारि—१०८० ।

उधारी—क्रि. स. [सं. उद्घाटन, प्रा. उघाडन, हि. उघाडना] (१) खोल कर, आवरणहीन की, नंगी की । उ.—(क) याकै बस मैं बहु दुख पायौ, सोभा सबै बिगारी । करिये कहा, लाज मरियौ जब अपनी जौध उधारी—१०-१७३ । (ख) बिदुर सस्त्र सब तही उतारी । चल्थौ तीरथनि मुंड उधारी—१-१४४ । (२) खोल कर, पलक न भूपकाकर । उ.—सिव की लागी हरि-पद तारी । तातै नहि उन आँखि उधारी—४-५ ।

वि. [हि. उघाडना] नग्न, वस्त्रहीन । उ—अब तौ नाथ न मेरौ कोई, बिनु श्रीनाथ-मुकुंदमुरारी । सूरदास अवसर के चूकै, फिरि पछितैहौ देखि उधारी १-२४८ ।

उधारे—क्रि. स. [सं. उद्घाटन, प्रा. उग्घाडन, हि. उधारना] (१) (आवरण आदि हटाकर) खोले । उ.—दुरलभ भयौ दरस दसरथ कौ, सो अपराध हमारे । सूरदास स्वामी करुनामय, नैन न जात उधारे—६-५२ । (२) नग्न होकर । (३) लोक-लाज छोड़कर ।

उधारौ—क्रि. सं. [सं. उद्घाटन, प्रा. उग्घाडन, हि. उघाडना] खोलता (है), आवरणहीन या नंगा (करता है) । उ.—दुपद-सुता कौ मिथ्यौ महादुख, जबही सो हरि हेरि पुकारौ । हौ अनाथ, नाहिन कोउ मेरौ, दुस्तासन तन करत उधारौ—१-१७२ ।

उधार्यौ—क्रि. स. [हि. उधारना] खोला, आवरण-रहित किया । उ.—प्रात समय उठि सोवत सुत को बदन उधार्यौ नंद—१०-२०३ ।

उघेलना—क्रि. स. [हि. उधारना] खोलना ।

उचकना—क्रि. अ. [सं. उच्च = ऊँचा + करण = करना] उछलना, कूदना ।

उचका—क्रि. वि. [हि. अचाका] अचानक, सहसा ।

उचकाइ—क्रि. स. [हि. उचकाना] उठाकर, ऊपर करके । उ.—केतिक लंक, उपारि बाम कर, लै आवै उचकाइ—९-७४ ।

उचकाई—क्रि. स. [हि. उचकाना] उठाकर, ऊपर करना । उ.—(क) सत बचन गिरिदेव कहत है कान्ह लेइ मोहि कर उचकाई । (ख) गोवर्धन लीन्हो उचकाई—१०५६ ।

उचकाना—क्रि. स. [हि. 'उचकना' का सक.] उठाना, ऊपर करना ।

उचकाय—क्रि. स. [हि. उचकाना] उचकाकर, ऊपर उठाकर, ऊँचा करके । उ.—मिलि दस पाँच अली बलि कृष्णहिं गहि लावत उचकाय । भरि अरगजा अवीर कनक घट देति सीस ते नाय—२४६६ ।

उचकि—क्रि. अ. [हि. उचकना] पैर के पंजों के बल ऊपर उठकर तथा सिर ऊँचा करके । उ.—अति ऊँचो बिस्तार अतिहि बहु लीन्हो उचकि करज भुज बाम—६९७ ।

उचकी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उचकना] उछली, कूदी ।

उचका—संज्ञा पुं. [हि. उचकना] (१) उठाईगीरा । उ.—बटमारी, ठग, चोर, उचका, गौठकटा, लठ-बोसी—१-१८६ । (२) ठग ।

उचक्यौ—क्रि. अ. [सं. उच्च = ऊँचा + करण = करना, हि. उचकना] ऊपर उठा, उठकर ऊपर आया, उतराया । उ.—हम संग खेलत स्याम जाइ जल मोंभ

धँसायौ । बूझि गयौ, उचक्यौ नहीं ता बातहि भई
अबेर—५८६ ।

उचटत—क्रि. अ. [सं. उच्चाटन, हि. उचटना] अलग
होती है, छूटती है, छिटकती है । उ.—(क) लटक
जात जरि-जरि द्रुम-बेली, पटकत बॉस, कौंस, कुस
ताल । उचटत भरि अंगार गगन लौं, सूर निरखि
ब्रजजन-बेहाल—५६४ । (ख) पटकत बॉस, कौंस
कुस चटकत, लटकत ताल तमाल । उचटत
अति अंगार, फुदत फर, भपटत लपट कराल
—६१५ ।

उचटना—क्रि. अ. [सं. उच्चाटन] (१) उखड़ना,
अलग होना, छूटना । (२) जमी वस्तु का पृथ्वी से
अलग होना । (३) भड़कना, बिचकना । (४) विरक्त
होना, हट जाना ।

उचटाइ—क्रि. स. [हि. उचटाना] खिन्न करके, उदासीन
करके, विरक्त करना । उ.—अब न पियहि उचटाइ
हौं मोकौ सरमात । आस करत मेरी जिती आवत
सकुचात—२१७४ ।

उचटाए—क्रि. स. [हि. उचटाना] खिन्न किया, विरक्त
कर दिये । उ.—नैननि हरि कौ निदुर कराए ।
चुगली करी जाइ उन आगे हमतैं वे उचटाए
—पृ. ३३० ।

उचटाना—क्रि. स. [सं. उच्चाटन] (१) अलग करना,
नोचना । (२) खिन्न करना, विरक्त करना । (३)
भड़काना ।

उचटायौ—क्रि. स. [हि. उचटाना] (१) अलग किया,
पृथक किया । (२) खिन्न या विरक्त किया । (३)
भड़काया ।

उचटावत—क्रि. स. [हि. उचटाना] (१) भड़काते हो,
बिचकाते हो । उ.—वा देखत हमको तुम मिलिहौ
काहे को ताको अनखावत । जैहै कहूँ निकसि हिरदै
ते जानि-बूझि तेहि क्यौ उचटावत १८७० । (२)
खिन्न करते हो, उदासीन करते हो, विरक्त करते हो ।
उ.—जत बिनु मोन रहत कहूँ न्यारे यह सो रीति
चलावत । जब ब्रज की बातें यह कहियत तबहि
तबहि उचटावत—२६१२ ।

उचटि—क्रि. अ. [सं. उच्चाटन, हि. उचटना] उचट
कर, छिटक कर, छूटकर । उ.—अति अगिनिभार, भंभार
धुंधार करि, उचटि अंगार भंभार छायाँ—५९६ ।

उचटे—क्रि. अ. [सं. उच्चाटन, हि. उचटना] खुल
गये । उ.—जागहु जागहु नंद कुमार । रवि बहु
चढ़यौ, रैनि सब बिघटी, उचटे सकल किवार
—४०८ ।

उचटैं—क्रि. अ. [हि. उचटना] उखड़ती है, भूमि से
अलग होती है ।

उचड़ना—क्रि. अ. [सं. उच्चाटन, प्रा. उच्चाड़न] (१)
जुड़ी चीजों का अलग होना । (२) भागना, जाना ।

उचत—क्रि. अ. [हि. उचना] उचकता है, ऊँचा
उठता है ।

उचना—क्रि. अ. [सं. उच्च] (१) ऊँचा या ऊपर उठना,
उचकना । (२) उठना ।

क्रि. स.—उचकाना, ऊपर उठाना ।

उचनि—सज्ञा स्त्री. [सं. उच्च] उभाड़, उठान । उ.—
(क) परी दृष्टि कुच उचनि पिया की वह सुख कह्यौ
न जाइ । (ख) विबुध तर कठ श्री माल मोतीन
छवि कुच उचनि हेमगिरि अतिहि लाजै ।

उचरना—क्रि. स. [सं. उच्चारण] बोलना, मुँह से शब्द
निकालना ।

क्रि. अ.—मुँह से शब्द निकलना ।

उचरी—क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उचरना] उच्चारण
की, मुँह से कही । उ.—निज पुर आइ, राइ भीषम
साँ, कही जो बातें हरि उचरी—१-२६८ ।

उचर्यौ—क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उचरना] उच्चरित
किया, कहा । उ.—लियौ तँबोल माथ धरि हनुमत,
कियौ चतुरगुन गात । चढ़ि गिरिसिखर सब्द इक
उचर्यौ, गगन उठ्यौ आघात—९-७४ ।

उचाइ—क्रि. स. [सं. उच्च+करण, हि. उचाना] (१)
ऊँचा करके, उठाकर, ऊपर करके । उ.—(क) सुनौ
किन कनकपुरी के राइ । हौ बुधि-बल-छल करि हारी,
लख्यौ न सीस उचाइ—६-७५ । (ख) बौह उचाइ
कालिह की नाइ धौरी धेनु बुलावहु—१०-१७६ ।
(२) उठाकर, उठाना । उ.—दरकि कंचुक, तरकि

माला, रही धरणी जाइ । सूर प्रभु करि निरखि
करना, तुरत लई उचाइ ।

उचाई—क्रि. स. [सं उच्च+वरण] उठा लेना, उखाड़
लेना । उ.—बलि कह्यौ, बिलेश अब नैकु नहि
कीजिए, मंदराचल अचल चले धाई । दोउ इक
मंत्र है जाइ पहुँचे तहाँ, कह्यौ, अब लीजिये इहि
उचाई—८-८ ।

उचाए—क्रि. स. [हि. उचाना] उठाया, उठाकर खड़ा
किया, गिरे से उठाया । उ.—तब परे मुरछाई धरनी
काम करे अकाजु । सखिन तब भुज गहि उचाए
वहा बावरे होत—२२६० ।

उचाट—वि. [सं उच्चाट] उदास, विरक्त, अनमना । उ —
चित्तै मद मुसुकाय कै री जिय करि लेय उचाट
—२४१३ ।

संज्ञा पुं.—मन का न लगना, विरक्ति, उदासीनता ।
उचाटन—संज्ञा पुं. [स. उच्चाटन] (१) जुड़ी वस्तु को
अलग करना । (२) चित्त को किसी ओर से हटाना ।
(३) अनमनापन, विरक्ति, उदासीनता ।

उचाटना—क्रि. स. [सं. उच्चाटन] चित्त को किसी
ओर से हटाना ।

उचाटी—संज्ञा पुं. [सं. उच्चाट] अनमनापन, विरक्ति,
उदासीनता ।

उचाटू—वि. [हि. उचाट] जिसका मन उदास हो,
अनमना ।

उचाड़ना—क्रि. स. [हि. उचड़ना] उखाड़ना, अलग
करना ।

उचाड़ी—वि. [सं उच्चाट, हि. उचाटी] उचाट, उदा-
सीन, अनमनी, विरक्त । उ.—सखी संग की निरखति
यह छवि भई व्याकुल मन्मथ की डाढी । सूरदास
प्रभु के रस-बस सब, भवन-काज तै भई उचाढी
—७२६ ।

उचाना—क्रि. स. [सं. उच्च+वरण] (१) ऊँचा करना,
ऊपर उठाना । (२) गिरे से उठाना ।

उचायौ—वि. [सं. उच्च+वरण, हि. उचाना] ऊँचा,
उठा हुआ । उ.—इद्र-हाथ ऊपर रहि गयौ । तिन
कह्यौ, दर्ई कहा यह भयौ । कह्यौ सुरनि तुम रिषिहि
सतायौ । तातै कर रहि गयौ उचायौ—९-३ ।

उचार—संज्ञा पुं. [स. उच्चार] बोलना, कथन ।

क्रि. स.—[हि. उच्चारना] उच्चारण करके,
कहकर । उ.—दो हकार उचार थाको रहे काढ़त
प्राण—सा. ५७ ।

उचारत—क्रि. स. [स. उच्चारण, हि. उच्चारना] उच्चारण
करते हैं, कहते हैं । उ.—तात-तात कहि बैन
उचारत, है गए भूप अचेत—६-३६ ।

उचारा—क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उच्चारना] उच्चारण
किया, कहा, बोला । उ.—(क) नृपति कछू नहि
बचन उचारा—६-४ । (ख) छीरसमुद्र-मध्य तै यौ
हरि दीरघ बचन उचारा—१०-४ ।

उचारन—क्रि. स. [स. उच्चारण, हि. उच्चारना] उच्चारण
करना । उ. विप्र लगे धुनि बेद, जुवतिनि मंगल
गाए—६-२४ ।

उचारना—क्रि. स. [स. उच्चारण] उच्चारण करना,
बोलना ।

क्रि. स. [स. उच्चारन] उखाड़ना, नोचना ।

उचारि—क्रि. स. [स. उच्चारण, हि. उच्चारना] उच्चारण
करके, मुँह से शब्द निकाल कर, बोलकर । उ.—
तब अर्जुन नैननि जल डारि । राजा सौ कह्यौ बचन
उचारि—१-२८६ ।

उचारी—क्रि. स. [स. उच्चारण, हि. उच्चारना] उच्चारण
की, कही, मुँह से निकाली । उ.—(क) अधिक कष्ट
मोहि परथौ लोक मै, जब यह बात उचारी । सूरदास-
प्रभु हँसत कहा है, मेटौ विपति हमारी—१-१७३ ।
(ख) पकरि लियो छन मोंभ असुरबल डार्यौ नखन
बिदारी । रुधिर पान करि माल आँत-धरि जय जय
शब्द उचारी । (ग) सूर प्रभु निरखि दण्डवत सब-
हिनि कियौ, सुर रिषिन सबनि अस्तुति उचारी
—४-६ ।

क्रि. स. [सं. उच्चाटन, हि. उच्चारना] उखाड़ी,
नोच ली । उ.—रिषी क्रोध करि जटा उचारी । सो
कृत्या भई ज्वाला भारी ।

उचारे—क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उच्चारना] उच्चारण
किये, कहे । उ.—सूर प्रभु अगम-महिमा न कछु
कहि परत, सिद्ध गंधर्व जै जै उचारे—६-१६३ ।

उचार—क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण करें, कहें। उ.—होसी मैं कोउ नाम उचारै। हरि जू ताकौ सत्य बिचारै। । जो जो मुख हरिनाम उचारै—६-४।

उचारौ—क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण करूँ, कहूँ। उ.—रंक रावन, बहाऽतंक तेरौ इतौ, दोउ कर जोरि बिनती उचारौ—९-१२६।

उचारथौ—क्रि. स. भूत. [सं. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण किया, कहा। उ.—जैमे कर्म, लहौ फल तैसे, तिनका तोरि उचारथौ—१-३३६।

उचालना—क्रि. स. [हि. उचाड़ना, उचारना] उखाड़ना, नोचना।

उचि—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उचना] उचक कर, ऊँची उठकर।

उचित—वि. [सं. औचित्य] योग्य, ठीक।

उचै—क्रि. स. [हि. उचना] ऊँचा करके, उठाकर।

उचौहा—वि. पुं. [हि. ऊँचा+औहो (प्रत्य.)] ऊँचा उठा हुआ, उभड़ा हुआ।

उचौहै—वि. [हि. ऊँचा+औहो (प्रत्य.)] ऊँचे, उभरे हुए।

उच्च—वि. [सं.] (१) ऊँचा। (२) श्रेष्ठ, महान, उत्तम।

उच्चरण—संज्ञा पुं. [सं.] बोलना, शब्द निकलना।

उच्चतम—वि. [सं.] (१) सबसे ऊँचा। (२) सबसे श्रेष्ठ।

उच्चता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ऊँचाई। (२) श्रेष्ठता, बड़ाई। (३) उत्तमता, अच्छाई।

उच्चरतौ—क्रि. स. [हि. उच्चरना] उच्चारण करता, बोलता, कहता। उ.—साधु-सील सद्रूप पर्य कौ, अपजस बहु उच्चरतौ—१-२०३।

उच्चरना—क्रि. स. [सं. उच्चारण] बोलना, कहना।

उच्चरी—क्रि. स. [हि. उच्चरना] उच्चारण की, कही। उ.—जज्ञ पुरुष बानी उच्चरी—४-५।

उच्चरै—क्रि. स. [हि. उच्चरना] उच्चारण करे, कहे, बोले। उ.—ज्यौ-त्यौ कोउ हरि-नाम उच्चरै। निस्वय करि सो तरै पै तरै—६-४।

उच्चरौ—क्रि. स. [हि. उच्चरना] उच्चारण करूँ, कहूँ। उ.—अब मैं यहै बिनै उच्चरौ। जो कछु आशा होइ सो करौ—४-१२।

उच्चरौ—क्रि. स. [हि. उच्चरना] उच्चारण करो, कहो, बोलो। उ.—रामहि राम सदा उच्चरौ—७-२।

उच्चरथौ—क्रि. स. भूत. [हि. उच्चरना] उच्चारण किया, बोला। उ.—पुनि सो सुखि कै चरननि परथौ। तासौ बचन मधुर उच्चरथौ—४-९।

उच्चाट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नोचना। (२) विरक्ति, अनमनापन।

उच्चाटन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अलग करना। (२) नोचना। (३) चित्त को हटाना। (४) विरक्ति, अनमनापन।

उच्चार—क्रि. स. [हि. उचारना] बोलना, कहना, उच्चारण करके, मुँह से बोलकर। उ.—अंत औसर अरध-नाम-उच्चार करि सुखत गज ग्राह तै तुम छुड़ावौ—१-११६।

उच्चारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बोलने की क्रिया। (२) बोलने का ढंग।

उच्चारना—क्रि. स. [सं. उच्चारण] उच्चारण करना, बोलना।

उच्चारित—वि. [सं.] बोला या कहा हुआ।

उच्चारी—क्रि. स. स्त्री. [हि. उच्चारना] उच्चारण की, मुँह से बोली, कही। उ.—तब कुंती बिनती उच्चारी—१-२८१।

उच्चारे—क्रि. स. [हि. उच्चारना] उच्चारण किये, बोले, वर्णित किये, बखाने। उ.—दोउ जन्म ज्यौ हरि उच्चारे। सो तौ मै तुमसौ उच्चारे—१०-२।

उच्चारै—क्रि. स. [हि. उच्चारना] उच्चारण करे, बोले, कहें। उ.—हरि-हरि नाम सदा उच्चारै—७-२।

उच्चारथौ—क्रि. स. भूत. [हि. उच्चारना] उच्चारण किया, बोला, कहा। उ.—बिप्रनि जज्ञ बहुरि बिस्तारथौ। वेद भली बिधि सौ उच्चारथौ—४-५।

उच्चैःश्रवा—संज्ञा पुं. [सं.] एक सुन्दर घोड़ा जो समुद्र के चौदह रत्नों में था। इसके कान खड़े और मुँह सात थे। इन्द्र इसका अधिकारी है। उ.—निकसे सबै कुँवर असवारी उच्चैःश्रवा के पोरे—१०उ.—३०६।

उच्छन्न—वि. [सं.] दबा हुआ, लुप्त।

उच्छरना, उच्छलना—क्रि. अ. [हि. उछरना, उछलना] उछलना, कूदना ।

उच्छलित—क्रि. अ. [हि. उच्छलना] छलकता हुआ, उमड़ता हुआ । उ.—कुसल अंग, पुलकित बचन, गद्गद् मनहि मन सुख पाइ । प्रेमघट उच्छलित है नैन अंस बहाइ—२४८६ ।

उच्छव—संज्ञा पुं. [सं. उत्सव, प्रा. उच्छव] उत्साह ।
उच्छवसित—वि. [सं.] (१) साँस से युक्त । (२) खिला हुआ ।

उच्छवासित—वि. [सं.] (१) साँस से पूर्ण । (२) जीवित । (३) फूला हुआ, विकसित ।

उच्छवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऊपर खींची हुई साँस । (२) साँस ।

उच्छाव—संज्ञा पुं. [सं. उत्साह, प्रा. उच्छाह] (१) उत्साह, उमंग । (२) धूमधाम ।

उच्छास—संज्ञा पुं. [सं. उच्छवास] साँस ।

उच्छाह—संज्ञा पुं. [सं. उत्साह] उमंग ।

उच्छिन्न—वि. [सं.] (१) कटा हुआ । (२) तोड़ा या उखाड़ा हुआ । (३) नष्ट, निर्मूल ।

उच्छिष्ट—वि. [सं.] (१) जूठा । (२) दूसरे का उपयोग किया हुआ ।

संज्ञा पुं.—(१) जूठी चीज । (२) मधु, शहद ।

उच्छ्रखल—वि. [सं.] (१) जो क्रम से न हो । (२) मनमाना काम करनेवाला, निरंकुश । (३) किसी की परवाह न करनेवाला, उहड़ ।

उच्छेद, उच्छेदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खंडन । (२) नाश ।

उछंग—संज्ञा पुं. [सं. उत्संग, प्रा. उच्छंग] (१) गोद, क्रीडा, कोरा । उ.—(क) लै उछंग उपसंग हुतासन, 'निहकलंक रघुराई ।' लई विमान चढाई जानकी, कोटि मदन छबि छाई—६-१६२ । (ख) बंधन छोरि नंद बालक को लै उछंग करि लीन्हो । (ग) बालक लियौ उछंग दुष्टमति हरषित अस्तन पान कराई—१०-५० । (२) हृदय ।

मुहा.—उछंग लई—छाती से लगा लिया, आलिंगन किया । उ.—सूर स्याम ज्यों उछंग लई

मोहि, त्यों मैं हूँ हंसि भेटौगी ।

उछंगना—संज्ञा पुं. [हि. उछंग] गोद । उ.—धूसर धूरि दुहूँ तन मंडित, मातु जसोदा लेति उछंगना—१०-११३ ।

उछंगि—संज्ञा पुं. [हि. उछंग] (१) गोद । (२) हृदय ।
मुहा.—उछंगि लेई—छाती से लगाया । उ.—स्याम सकुच प्यारी उर जानी । उछंगि लेई बाम भुज भरिकै बार-बार कहि बानी—१६०१ ।

उछकना क्रि. अ. [हि. उचकना, उभकना=चौकना] चौकना, चेत में आना ।

उछकै—क्रि. अ. [हि. उछकना] चौके, चेत में आये ।

उछरना—क्रि. अ. [हि. उछलना] उछलना, कूदना ।

उछरत—क्रि. अ. [सं. उच्छलन, हि. उछलना] उछलता है, ऊपर उठता और गिरता है । उ.—उछरत सिन्धु, धराधर काँपत, कमठ पीठ अकुलाइ—१०-६४ ।

उछरि—क्रि. अ. [सं. उच्छलन, हि. उछना] उछलकर । उ.—खोनित छिछ उछरि आकासहि, गज-बाजिनि सिर लागि—६-१५७ ।

उछरै—क्रि. अ. [हि. उछलना] उभड़ते हैं, चिह्न पड़ते हैं, उछलते हैं ।

उछलना—क्रि. अ. [सं. उच्छलन] (१) नीचे-ऊपर उठना । (२) कूदना । (३) प्रसन्न होना । (४) उभड़ना । (५) तरना, उतराना ।

उछलि—क्रि. अ. [सं. उछलना] उछलकर, वेग से ऊपर उठ और गिरकर । उ.—आनन्द-मगन धेनु सवैं थनु पय-फेनु, उमंग्यौ जमुन-जल उछलि लहर के—१०-३० ।

उछलित—क्रि. अ. [हि. उछलना] उछलता है, छलकता हुआ । उ.—स्याम रस घट पूरि उछलित बहुरि धरयौ सँभारि—१२१७ ।

उछलै—क्रि. अ. [हि. उछलना] (१) उछले, कूदे । (२) उतराये, तैरे ।

उछल्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि. उछलना] ऊपर-नीचे हुआ, उठा-गिरा । उ.—उमंगि आनंद-सिंधु उछल्यौ स्याम के अभिलाष—पृ. ३४३ (२२)

उछाँगे—संज्ञा पुं. [हि. छल्लाँग] छल्लाँग, उछाल । उ.—
लै बसुदेव धँसे दह सूधे, सकल देव अनुरागे । जानु,
जंघ, कटि, ग्रीव, नसिका, तब लियौ स्याम
उछाँगे । चरन पसारि परसी कालिदी, तरवा नीर
तियागे—१०-४ ।

उछाँटना—क्रि. स. [सं. उच्चाटन, हिं. उचाटना] उदा-
सीन या विरक्त करना ।

क्रि. स. [हि. छोटना] छोटना, चुनना ।

उछार—संज्ञा पुं. [हि. उछाल] (१) उछालने की क्रिया ।
(२) ऊँचाई जहाँ तक उछाला या उछाला जाय । (३)
छोटा, उछलती हुई बूँद ।

उछारना—क्रि. स. [हि. उछालना [उछालना, ऊपर
फेंकना ।

उछाल—संज्ञा स्त्री. [स. उच्छाल] (१) उछालने की क्रिया ।
(२) कुदाना, छल्लाँग । (३) ऊँचाई जहाँ तक उछाला
जाय ।

उछालना—क्रि. स. [सं. उच्छालन] (१) ऊपर फेंकना । (२)
प्रकट या प्रकाशित करना ।

उछाला—संज्ञा पुं. [हि. उछाल] जोश, उबाल ।

उछाह—संज्ञा पुं. [स. उत्साह, प्रा. उच्छाह] (१) उमंग,
हर्ष । (२) उत्सव, धूमधाम । (३) उत्कंठा, लालसा ।

उछाही—वि. [हि. उछाह] उत्साहित, आनंदित ।

उछाहु—संज्ञा पुं. [हि. उछाह] (१) उत्साह, उमंग, हर्ष ।
उ.—उरनि उरनि वै परत आनि कै जोधा परम उछाहु
—२८२६ ।

उछाहू—संज्ञा पुं. [हि. उछाह] (१) हर्ष, प्रसन्नता ।
(२) उत्सव, धूमधाम । (३) इच्छा ।

उछिन्न—वि. [सं. उच्छिन्न] (१) कटा हुआ । (२)
नष्ट ।

उछिष्टि—वि. [सं. उच्छिष्ट] (१) जूठा । (२) उपयोग
में लाया हुआ, प्रयुक्त ।

उछीनना—क्रि. स. [सं. उच्छिन्न] उखाड़ना, नष्ट
करना ।

उछेद—संज्ञा पुं. [सं. उच्छेद] नाश, विरोध । उ.—जय
अरु विजय करि कह कीन्हौ, ब्रह्म सराप दिवायौ ।
असुर-जोनि ता ऊपर दीन्हौ । धर्म-उछेद करायौ
—१-१०४ ।

उछेद—संज्ञा पुं. [सं. पुं. उच्छेद] (१) उखाड़ने की क्रिया ।
(२) नाश ।

उजट—संज्ञा पुं. [सं. उटज] पर्याकुटी, झोपड़ी ।

उजड्ड—वि. [सं. उद्=बहुत + जड=मूर्ख अथवा सं.
उदंड] (१) जंगली, गँवार, वज्र मूर्ख । (२) जो
मनमानी करे, निरंकुश ।

उजड़ना—क्रि. अ. [हि. जडना=जमना] (१) नष्ट
होना । (२) तितर-बितर होना । (३) निर्जन
होजाना, बसा न रहना ।

उजड़ा—वि. [हि. उजड़ना] (१) तितर-बितर, गिरा-
गिराया । (२) नष्ट ।

उजर—[हि. उजड] उजाड़, ध्वस्त । उ—आय क्रूरलै चले
स्याम को हित नाही कोउ हरि कै । .. । सूरदास प्रभु
सुख के दाता गोकुल चले उजर कै—२५२९ ।

उजरउ—क्रि. अ. [हि. उजड़ना] उजड़ जाय, नष्ट हो
जाय ।

उजरा—वि. [हि. उजला] (१) सफेद । (२) निर्मल,
स्वच्छ ।

जराइ—क्रि. स. [हिं. उजराना] स्वच्छ करके, साफ
करके ।

उजराई—संज्ञा स्त्री. [सं. उज्ज्वल हि. उज्जर,] (१)
सफेदी । (२) स्वच्छता, कांति ।

उजराना—क्रि. स. [सं. उज्ज्वल] स्वच्छ करना, उज्ज्वल
करना ।

उजराय—क्रि. स. [सं. उज्ज्वल] स्वच्छ करके, निर्मल कराकर ।

उजरे—क्रि. अ. [हि. उजड़ना] नष्ट हुए, उजड़ गये ।

उजला—वि. [सं. उज्ज्वल, प्रा. उज्ज्वल] (१) सफेद,
श्वेत । (२) निर्मल, स्वच्छ ।

उजवास—संज्ञा पुं. [सं. उद्यास=प्रयत्न] चेष्टा,
तैयारी ।

उजागर—वि. [सं. उद्=ऊपर, अच्छी तरह+जागर=
जागना, जतना, प्रकाशित होना] (१) कीर्तियुक्त,
प्रकाशित, दीप्तिमान, जगमगाता हुआ । उ.—(क)
क्रिया-कर्म करतहु निमि-वासर भक्ति कौंथ उजागर
—१-६१ । (२) वंशको गौरवान्वित करनेवाला ।
(क) सूर धन्य जदुवंस उजागर धन्य ध्वनि घुमरि
रह्यो—२६१६ । (ख) इनके कुल ऐसी चलि आई

सदा उजागर बंस—३०४९ । (३) प्रसिद्ध, विख्यात ।

उ.—(क) जाबवान जो बली उजागर सिंह मारि मनि लीन्ही । (ख) दिन द्वै घाट रोहि जमुना को जुवतिन में तुम भए उजागर—११२३ । (उ) चतुर, कुशल, दक्ष । उ.—(क) भूमत नैन जम्हात बारही रति-संग्राम उजागर हो—२१४० । (ख) कहियौ मधुप सँदेस सुचित दै मधुवन स्याम उजागर—२९८० ।

उजागरि—वि. स्त्री. [हि. उजागरी] प्रसिद्ध, विख्यात ।

उजाड़—संज्ञा पुं. [हि० उजड़ना] (१) उजड़ा हुआ स्थान । (२) निर्जन स्थान । (३) जंगल ।

वि.—(१) नष्ट, ध्वस्त, गिरा हुआ । (२) जन-रहित, जो आबाद न हो ।

उजाड़ना—क्रि. स. [हिं. उजाड़ना] (१) बिखराना, तितर-बितर करना । (२) नष्ट करना, खोद पेंकना । (३) बिगाड़ना, हानि पहुँचाना ।

उजान—क्रि. वि. [सं. उद्=ऊपर+यान] धारा से उलटी अर्थात् चढ़ाव की ओर ।

उजार—संज्ञा पुं. [हि. उजाड़] (१) उजाड़ स्थान । (२) निर्जन स्थान ।

वि.—उजड़ा हुआ ।

उजारा—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] उजाला, प्रकाश ।

वि.—प्रकाशमान, कांतियुक्त ।

उजारि—क्रि. स. [हिं. उजाड़ना] (१) उखाड़कर, खोद-खाद कर । उ.—भली कही यह बात कन्ह ई, अतिहि सघन अरन्य उजाहि—४७२ । (२) ध्वस्त या ध्वंस करके । उ.—जो मोरौ नहि फूल पठावहु तौ ब्रज देहु उजारि—५२६ ।

उजारी—क्रि. स. [हिं. उजाड़ना] नष्ट की, खोद डाली, उखाड़ दी ।

उजारौ—संज्ञा पुं. [हिं. उजाला] उजाला, प्रकाश ।

वि.—प्रकाशमान, कांतियुक्त । उ.—हरि के गर्भ-बास जननी कौ बदन उजारौ लाग्यौ । मानहु सरद-चंद्रमा प्रगट्यौ, सोच-तिमिर तन भाग्यौ—१०-४ ।

क्रि. स. भूत. [हिं. उजाड़ना] नष्ट किया, बिगाड़ा ।

उ.—सूरदास-प्रभु सबहिनि प्यारौ । ताहि डसन ! जारौ हिय उजारौ—७६२ ।

उजारयौ—क्रि. स. भूत [हि. उजाड़ना] (१) उजाड़ डाला, ध्वस्त कर दिया । उ.—तुलहि गमन वियौ सागर तैं, गीचहि बाग उजारयौ—९-१०३ । (२) प्रकट हुआ, प्रकाशित किया । उ.—(क) दाऊजू, कहि स्याम पुकारयौ । नीलावर कर ऐचि लियौ हरि, मनु बादर तैं चंद उजारयौ—४०७ । (ख) तब हँसि चितए स्याम सेज तैं बदन उधारयौ । मानहुँ पयनिधि मथत, फेन फटि चंद उजारयौ—४३१ ।

वि. [हि. उजाला] प्रकाशमान, कांतियुक्त । उ.—हरि के गर्भ बास जननी कौ बदन उजारयौ (उजारौ) लाग्यौ । मानहुँ सरद-चंद्रमा प्रगट्यौ, सोच-तिमिरि तन भाग्यौ—१०-४ ।

उजालना—क्रि. स. [सं. उज्ज्वलन] (१) प्रकाशित करना । (२) चमकाना, स्वच्छ करना ।

उजाला—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल] (१) प्रकाश, चाँदना । (२) श्रेष्ठ व्यक्ति ।

वि.—प्रकाशमान ।

उजालो—संज्ञा स्त्री. [हि. उजाला] चाँदनी, चंद्रिका ।

उजास—संज्ञा पुं. [हिं. उजाला+स (प्रत्य.)] प्रकाश, उजाला, चमक ।

उजियर—वि. [सं. उज्ज्वल] उजला, सफेद ।

उजियरिया—संज्ञा स्त्री [सं. उज्ज्वल. हि. उजियारी] चाँदनी, चंद्रिका । उ.—लै पौड़ी आँगन हीँ सुत कौ छिटकि रही आछी उजियरिया—१०-२४६ ।

उजियार—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल] उजाला, प्रकाश ।

वि.—(१) दीप्तिमान, प्रकाशयुक्त । (२) चतुर, बुद्धिमान ।

उजियारना—क्रि. स. [हि. उजियारा] (१) प्रकाशित करना । (२) जलाना ।

उजियारा—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल] (१) प्रकाश, चाँदना । (२) वंश को गौरवान्वित करनेवाला पुरुष ।

वि. (१) प्रकाशमय । (२) कांतियुक्त, दीप्तिमान ।

उजियारी—संज्ञा स्त्री. [हि. पुं. उजियारा] (१) चंद्रिका, चाँदनी । उ.—कहरि-नख उर पर करै, सुठि

सोभाकारी । मनौ स्याम घन मध्य मैं नव ससि उजियारे—१०-१३४ । (२) प्रकाश, उजाला, रोशनी । उ.—बदन देखि बिधु-बुधि सात मन, नैन कंज कुंडल उजियारी—१०-१९६ । (३) वंश को उज्ज्वल करने वाली, सती-साध्वी स्त्री । उ.—बलिहारी वा बाँस बंस की बंसी-सी सुकुमागी । ... । बलिहारी वा कुंज-जातनी उपधी जगत उजियारी—३४१२ ।

वि.—प्रकाशयुक्त, उजाला । उ.—(क) कबहुँक रतनमहल चित्रसारी सरदनिसा उजियारी । बैठे जन सुता संग बिलसत मधुर केलि मनुहारी । (ख) भूपन सार 'सूर' सम सीकर सोभा उड़त अमल उजियारी—सा. ५१ ।

उजियार—संज्ञा. पुं. [हि. उजियाला] उज्ज्वल या गौरवान्वित करने वाला पुरुष । उ.—माखन-भोटी ताती-ताती लेहु वन्हैया बारे । मन मैं रुचि उपजावै, भावै, त्रिभुवन के उजियारे—४१६ ।

उजियारौ—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] प्रकाश, उजाला । उ.—अपुनपौ आपुन हे मैं पायौ । सबदहि सबद भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ—४-१३ ।

उजियाला—संज्ञा. पुं. [हि. उजाला] प्रकाश, उजाला । उजीता—वि. [सं. उद्योत, प्रा. उज्जेत] प्रकाशमान । संज्ञा पुं.—प्रकाश, चाँदना ।

उजीर—संज्ञा पुं. [अ. वजीर] मंत्री, अमात्य, दीवान । उ.—गार उजीर कह्यौ सोइ मान्यौ, धर्म-मुधन लुट्यौ—१-६४ ।

उजेर—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] उजाला, प्रकाश । उजेरत—क्रि. अ. [हि. उजियारा] उजेला फैला रही है, प्रकाशित है, चमक रही है । उ.—पुनि कहि उठी जसोदा मैया, उठहु कान्ह रवि-फिरनि उजेरत—४०५ ।

उजेरना—क्रि. स. [हि. उजाला, उजियारा] प्रकाशित करना, प्रकाश फैलाना ।

उजेरा, उजेरो—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] उजाला, प्रकाश । वि.—प्रकाशयुक्त ।

उजेला—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल] प्रकाश, चाँदना । वि.—प्रकाशमान ।

उज्जल—वि. [सं. उज्ज्वल] (१) दीप्तमान, प्रकाशमान । (२) शुभ्र, विशद, स्वच्छ, निर्मल । (३) श्वेत, सफेद । उ.—हँस उज्जल, पंख निर्मल, अंग माल-मालि नहाहि—१-३३८ ।

क्रि. वि. [सं. उद्=ऊपर+जल=पानी] चढ़ाव की ओर, उजान ।

उज्जर—[सं. उज्ज्वल] (१) प्रकाशयुक्त । (२) स्वच्छ, निर्मल ।

उज्जागरी—वि. स्त्री. [हि. उजागरी] उज्ज्वल या गौरवान्वित करने वाली । उ.—मध्य ब्रजनागरी रूपरस आगरी घोष उज्जागरी स्याम प्यारी—१२६० ।

उज्झड़—वि. [सं. उद्=बहुत+जड=मूर्ख] झुकी, मूर्ख । उज्यारा—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] प्रकाश, चाँदना ।

उज्यारी—संज्ञा स्त्री. [हि. उजियारा] प्रकाश, कंति, दीप्ति, प्रभा । उ.—गरजत मेघ, महा डर लागत, बीच बढी जमुना जल-कारी । तातै यहै सोच जिय मोरै, क्यों दुरिहै ससि-बदन-उज्यारी—१०-११ ।

उज्यारे—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल, हि. उजियारा] उजाला, प्रकाश । उ.—प्रात भयौ उठि देखिऐ, रवि फिरनि उज्यारे—४३६ ।

उज्यारौ—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल, हि. उजाला] प्रकाश, चाँदना, रोशनी । उ.—रेखत आनि सँचौ उरअतर, दै पलरनि को तारौ री । मोहि भ्रम भयौ सखी, उर अपनै, चहुँ दिसि भयौ उज्यारौ री—१०-१३१ ।

उज्यास—संज्ञा पुं. [हि. उजास] प्रकाश, उजाला ।

उज्ज्वल—वि. [सं. उज्ज्वल] श्वेत, सफेद । उ.—खारिक, दाख चिरौजी, फिसमिस, उज्ज्वल गरी बदाम—१०-२१२ ।

उज्ज्वल—वि. [सं.] (१) प्रकाशमान । (२) स्वच्छ, निर्मल । (३) श्वेत, सफेद ।

उज्ज्वलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कान्ति, चमक । (२) स्वच्छता । (३) सफेदी ।

उज्ज्वलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश । (२) स्वच्छ करने की क्रिया ।

उज्ज्वलित—वि. [सं.] (१) प्रकाशित किया हुआ । (२) स्वच्छ किया हुआ ।

उभक्त—क्रि. अ. [हि. उचकना, उभक्तना] (१) उचकते-कूदते हुए, जाते-जाते। उ.—वरज्यौ नहि मानत उभक्त फिरत हौ कान्ह घर घर—१६४३।

उभक्ति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उचकना] देखने के लिए ऊँची होती है, उचककर। उ.—द्रुम-बेली पूँछति सब उभक्ति देखति ताल तमाल—१८२७।

उभक्तना—क्रि. अ. [हि. उचकना] (१) डकलना, कूदना,। (२) उभडना, उमडना। (३) भाँकने के लिए सिर बाहर निकालना। (४) चौकना, सजग होना।

उभक्ति—क्रि. अ. [हि. उचकना, उभक्तना] (१) उचक कर, कूद कर। उ.—(६) जैसे केहरि उभक्ति कूप-जल, देखत अपनी प्रति—१-३००। (ख) आलंबित जु पृष्ठ बल सुन्दर, परसपरहि चितवत हरि-राम। भाँकि-उभक्ति हिंसत दोऊ सुन, प्रेम-मगन भइ इकटक जाम—१०-१५७। (ग) जैसे केहरि उभक्ति कूप-जल देखे आप मरत। (२) ऊपर उठकर, उमड़ कर। (३) देखने के लिए सिर उठाकर, भाँकने के लिए सिर बाहर निकालकर। उ.—(क) जहँ तहँ उभक्ति भरोखा भाँकति जनक-नगर की नार। चितवनि कृपाराम अवलोकत, दीन्हौ सुख जो अपार। (ख) सूने भवन अकेली मैहा नीकै उभक्ति निहा यौ। मोते चूरु परी मै जानी, तातैं मोहि बिसारयौ। (ग) फिरि फिरि उभक्ति भाँकत बाल—सा. ३४।

उभक्तना—क्रि. स. [सं. उज्झरण] (द्रव पदार्थ को) ऊपर से गिराना या बहाना।

क्रि. अ.—उभडना, बड़ना।

उभक्तुन—संज्ञा. पुं. [हि. उचकन] उचकने की क्रिया या भाव।

उभक्तै—क्रि. अ. [हि. उचकना, उभक्तना] उछले-कूदे।

उभरना—क्रि. स. [सं. उत्+सरण] ऊपर करना, ऊपर उठाना, ऊपर खिसकाना।

उभक्तना—क्रि. स. [हि. भाँकना] उचककर देखना।

उटंग—वि. [सं. उत्तंग] छोटा कपड़ा जो पहनने पर ऊँचा-ऊँचा लगे।

उटकत—क्रि. स. [हि. उटकना] अनुमान करता है, अटकल लगाता है।

उटकना—क्रि. स. [सं. अट्=घूमना, बाग-गार+कलन=गिनना या उत्कलन] अनुमान करना।

उटज—संज्ञा. पुं. [सं.] पर्णकुटी, झोपड़ी।

उटंगना—क्रि. अ. [सं. उत्+अग] (१) ऊँची या ऊपर उठी हुई वस्तु का सहारा लेना, टेक लगाना। (२) पड जाना, लेट रहना।

उठइ—क्रि. अ. [हि. उठना] उठती है, ऊपर की ओर जाती है।

उठत—क्रि. अ. [सं. उत्थान, पा. उट्ठान, हि. उठना] (१) उठते (ही), उठता (है)। उ.—वैठत-उठत सेज-मोवत मै कस-डरनि ऋकुलात—१०-१२। (२) बनता है, प्रकट होता है। उ.—बारि मै ज्यों उठत बुदबुद लागि बाइ थिलाइ—१-३१६। (३) उत्पन्न होता है, (सुप्त भाव जैसे दुख) जागता है। उ.—भानुसुत-हित-सत्रु-पित लागत उठत दुख फेर—सा. ३३।

यौ.—उठत (गाइ)—[संज्ञो. हि.]—(गा) उठती है, (गाने) लगती है। उ.—एक परस्पर देत बधाई, एक उठत हँसि गाइ—१८-२०।

(२) जागते है। उ.—नंद कौ लाल उठत जब सोई। निरखि मुखारविंद की सोभा, कहि, काकैं मन धीरज होइ—१०-२१०।

उठति—क्रि. अ. [सं. उत्थान, पा. उट्ठान, हि. उठना] ऊँची होती है, ऊँचाई तक जाती है। उ.—या संसार-समुद्र, मोह-जल, तृष्णा-तरंग उठति अति भारी—१-२१२।

उठन—क्रि. अ. [सं. उत्थान, पा. उट्ठान, हि. उठाना] (१) उठना, खड़ा होना। (२) सोकर जागना। उ.—आनि मथानी दह्यौ विलोवौ जौ लागि लालन उठन न पावै। जागत ही उठिरारि करत है, नहि मानै जौ इंद्र मनावै—१०-२३१।

उठना—क्रि. अ. [सं. उत्थान, पा. उट्ठान] (१) खड़ा होना, ऊँचा होगा। (२) ऊँचाई तक पहुँचना। (३) ऊपर की ओर बढ़ना। (४) उछलना, कूदना। (५) जागना। (६) उदय होना। (७) उत्पन्न होना। (८) सहसा आरंभ हो जाना। (९) तैयार हो जाना। (१०) अंक या चिन्ह उभड़ना।

उठहि—क्रि. अ. [हि. उठना] (१) उठना, उछलना-कूदना। (२) उत्पन्न होता है।

उठाइ—क्रि. स. [हि. उठाना] उठाकर। उ.—तब हरि धरि बाराह-वपु, ल्याए पृथी उठाइ—३-११।

मुहा.—खड्ग उठाइ—मारने को तलवार उठाई, मारने को प्रस्तुत हुए। उ.—ताहि परीक्षित खड्ग उठाइ—१-२६०।

उठाई—क्रि. स. [हि. उठाना] उठाकर, हटाकर, अलग करके।

यौ.—सकै उठाई—उठा या हटा सके। उ.—कोपि अंगद कछौ, धरौ धर चरन मैं ताहि जो सकै कोऊ उठाई।—६-१३५।

(२) किसी गिरी हुई वस्तुको ऊपर उठाना। उ.—लकुट लिए कर टेकत जाई। कहत परस्पर लेहु उठाई—१०५८। (३) शिरोधार्य की, मानी। उ.—करै उपाय सो भिरथा जाई। नृप की आज्ञा लियो उठाई।

उठाए—क्रि. स. [हि. उठाना ('उठना' का स. रूप)] खड़ा किया। उ.—अमृत-गिरा बहु बरपि सूर-प्रभु, भुज गहि पार्थ उठाए—१-२६।

उठान—संज्ञा स्त्री. [सं. उत्थान, पा. उट्ठान] (१) उठने की क्रिया। (२) बाढ़। (३) आरंभ।

उठाना—क्रि. स. [हि. 'उठना' का सक्र.] (१) गिरी हुई वस्तु को खड़ा करना। (२) ऊपर ले जाना। (३) कुछ काल तक अपने ऊपर धारण करना। (४) उत्पन्न करना। (५) सहसा आरंभ करना। (६) हटाना, अलग करना। (७) जगाना। (८) प्रस्तुत या तैयार करना। (९) खर्च करना। (१०) स्वीकार करना, मानना।

उठाने—क्रि. अ. [हि. उठना] उठा। उ.—को जानै

केहि कारन ग्यारी सो लप तुरत उठानै। चपज्ञा और बराह रस आखर आद देख भपटाने—सा. ७२।

उठायौ—क्रि. स. [हि. उठाना] (बोझ आदि) ले जाने के लिए उठाया, धारण किया। उ.—(क) दौना गिरि हनुमान उठायौ। संजीवनि को भेद न पायौ, तब सब सैल उठायौ—९-१५०। (ख) मंदराचल उपारत भयौ स्रम बहुत बहुरि लै चलन को जग उठायौ—८-८।

उठाव—संज्ञा पुं. [हि. उठाना] उठान।

उठावत—क्रि. स. [हि. उठाना] (१) उठाते या खड़ा करते हैं। उ.—गहे अंगुरिया ललन की नंद चलन सिखावत। अरबराह गिरि पात हैं, कर टेकि उठावत—१०-१२२। (२) नीचे से ऊपर ले जाता है। उ.—आलस सौ कर कौर उठावत, नैननि नंद भ्रमकि रही भारी—१०-२२८।

उठावति—क्रि. स. स्त्री. [हि. उठाना] (१) उठाती है, हाथ में लेती है। उ.—जल-वासन कर लै जु उठावति, याही मैं तू तन धरि आवै—१०-१६१। (२) सहसा आरंभ करती है, अचानक उभाडती या छेड़ती है। उ.—अब समुझी मैं बात सबन की भूठे ही यह बात उठावति—१२५०।

उठावहु—क्रि. स. [हि. उठाना] ऊँचा करो, उठाओ। उ.—ऐसै नहि रीझौ मैं तुम सौ तटहीं बाहँ उठावहु—७६१।

उठावै—क्रि. स. [हि. उठाना] (१) उठा कर बैठाती है, खड़ा करती है। (२) जगाती है। उ.—ह्यौ नागिनि सौ कहत कान्ह, अहि क्यौ न जगावै। बालक-बालक करति कहा, पति क्यौ न उठावै—५८९।

उठि—क्रि. अ. [हि. उठना] उठकर, खड़े होकर।

मुहा.—उठि धावै—दौड़ पड़ता है। उ.—लच्छागृह तैं काठि कै पाडव गृह ल्यावै। जैसै मैया बच्छ के सुभिरत उठि धावै—१-४।

उठिए—क्रि. अ. [हि. उठना] जागिए, बिस्तर त्यागिए। उ.—उठिए स्याम, कलेऊ कीजै—१०-२११।

उठिबे—क्रि. अ. [हि. उठना] ऊपर जाना, उड़ सकना।

उ. धनुष देखि खंजन भिनि डरपत उडि न सकत
उठिबे अकु तावत—२३४६ ।
उठिहै—क्रि. अ. [हि. उठना] उठेगा, उठकर बैठेगा ।
उ.—सूर पतित तयहीं उठिहै, प्रभु, जब हंसि दैहौ
बीरा—१-१३४ ।
उठीं—क्रि. अ. बहु [हि. उठना] उठीं, खड़ी हुईं ।
यौ—उठीं ग.इ.—[संयो. क्रि.] गाने लगीं, गाना शुरू
किया । उ.—उठी सखी सब मंगल गाइ—१०-१४ ।
उठी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उठाना] खड़ी हुई । उ.—उठी
रोहिनी परम अनंदित हार-रतन लै आई—
१०-१२ ।
उठे—क्रि. अ. [हि. उठना] (१) उठकर तैयार हुए ।
उ.—एतत यह उठे जोधा रिसाई—६-१३५ । (२)
घिरे, घिर आये । उ.—उरज अनूप उठे चारो दिस
सिवसुत बाहन षाढ़—सा. ३७ ।
उठै—क्रि. अ. [हि. उठना] ऊँचा होता है, ऊँचाई तक
जाता है । उ.—सूर सरद-ससि-बदन दिखाएँ, उठै
लहर जलनिधि की—१-२१३ ।
उठैया—संज्ञा पुं. [हि. उठना] उठानेवाला ।
यौ.—लिए उठैया—उठा लिया । उ.—बाम भुजा
गिरि लिए उठैया—१०५६ ।
उठौ—क्रि. अ. [हि. उठना] जागो, बिस्तर छोड़ो । उ.—
उठौ नंदलाल भयौ भिनुसार जग वत नंद की रानी—
१०-२०८ ।
उठ्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि. उठना] उठा, खड़ा हुआ ।
यौ.—बरि उठ्यौ—जल उठा । उ.—हरि नाम हरि-
नाकुम बिसारयौ, उठ्यौ बरि बरि बरि । प्रहलाद-हित
जिहि असुर मारयौ, ताहे डरि डरि डरि—१-३०६ ।
उड़—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नक्षत्र, तारा । (२) पक्षी ।
(३) मल्लाह ।
उड़प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा । (२) नाव ।
संज्ञा पुं. [हि. उड़ना] एक तरह का नाच ।
उड़पति, उड़राज—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा ।
उड़गन—संज्ञा पुं. बहु [सं. उड़+गण (प्रत्य.)] तारों
का समूह ।
उड़त—क्रि. अ. [हि. उड़ना] (१) उड़ता हुआ ।

उ.—उड़त उड़त सुक पहुँच्यौ तहाँ—१-२२६ (ख)
फहराता है । उ.—फल्लु अंग तैं उड़त पीतपट,
उन्नत बाहु बिसाल—२७३ । (३) हवा में गर्द
आदि उड़ती है । उ.—(क) नितप्रति अलि जिमि
गुज मनोहर उड़त जु प्रेम-पराग—२-१२ । (ख)
हरिजू की आरतो बनी । उड़त फूल उड़गन
नभ अन्तर, अंजन घटा घनी—२-२८ ।
उड़ति—वि. स्त्री. [हि. उड़ना] उड़ती हुई । उ.—बाल-
अवस्था मै तुम धाइ । उड़ति भँमारी पकरी जाइ
—३-५ ।
उड़न—संज्ञा स्त्री. [हि. उड़ना] उड़ने की क्रिया, उड़ान ।
उ.—जनु रवि गा संकुचित कमल जुग, निशि अलि
उड़न न पावै—१०-६५ ।
उड़ना—क्रि. अ. [सं. उड़पन] (१) पक्षियों का आकाश में
इधर-उधर जाना । (२) हवा में निराधार फिरना (३)
हवा में ऊपर उठना । (४) हवा में फैल जाना । (५)
हवा में तितर-बितर हो जाना । (६) फहराना । (७)
सवेग चलना । (८) कटकर दूर जा गिरना । (९)
मिट जाना । (१०) बातों में भुलावा देना ।
उड़पति—संज्ञा पुं. [सं. उड़पति] चंद्रमा । उ.—गगन्यौ
भानु मंद भयौ उड़पति फूले तरुन तमाल—१०-२०६ ।
उड़सना—क्रि. अ. [देश.] नष्ट होना, खंडित होना ।
उड़ाँक—वि. [हि. उड़ना] (१) उड़नेवाला । (२) जो उड़
सकता हो ।
उड़ाइ—क्रि. अ. [हि. उड़ना] (१) हवा में निराधार उड़ती
है । उ.—(क) सरवर नीर भरै, भरि उमडै, सूखे
खेह उड़ाइ—१-२६५ । (ख) हरि हरि कहत पाप पुनि
जाइ । पवन लागि ज्यो रूह उड़ाइ—१२-३ । (२)
जाता रहना, दूर होना, नष्ट होना । उ.—ऊधो हरि
बिनु ब्रजगिपु बहुरि जिये . . . उर ऊँचे उसाँस तृना-
वर्त तिहि सुख सकल उड़ाइ दिए—३०७३ ।
उड़ाइए—क्रि. स. [हि. उड़ान] हवा में इधर-उधर
फैलाइए ।
उड़ाइक—संज्ञा पुं. [सं. उड़ायक] नजंग (अदि) उड़ानेवाला ।
उड़ाई—क्रि. स. [हि. उड़ाना] (१) उड़ने को प्रवृत्त की ।
उ.—तुरत गए नन्द-सदन कन्हाई । अंरुम दै राधा

घर पठई, बादर जहँ तहँ दिए उडाई—६६२ । (२)
उडाकर, (आकाश में हवा द्वारा) उठाकर । उ.—तृना-
वर्त लै गयौ उडाई । आपुहि गिरयौ सिला पर
आई—३९१ ।

उड़ाए—क्रि. स. [हि. उड़ाना] उडा दिये, उडने को
प्रवृत्त किये । उ.—बरह-मुकुट कै निकट लसति लट,
मधुप मनौ रुचि पाए । बिलसत सुधा जलज आनन पर
उड़त न जात उड़ाए—४१७ ।

उड़ाऊँ—क्रि. स. [हि. उड़ाना] उडने के लिए प्रवृत्त कहूँ ।
उ.—संभुकी सपथ, सुनि कुकपि कायर कृपण, स्वास
आकास बनचर उड़ाऊँ—६-१२६ ।

उड़ाऊ—प्रि. [हि. उड़ना] (१) उडने वाला । (२) बहुत
खर्चीला ।

उड़ात—क्रि. अ. [हि. उड़ना] उड़ जाता है, सवेग
भागता है, भाग चलता है । उ.—विषया जात हर-
ष्यौ गात । ऐसे अंध, जानि निधि लूटत, परतिय
संग लपटात । बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत, करि
करि जतन उड़ात—२-२४ ।

उड़ान—संज्ञा स्त्री. [हि. उड़ना] (१) उडने की क्रिया ।
(२) छलाँग फँदान । (३) एक दौड़ में पार
की जानेवाली दूरी (४) कलाई, पहुँचा ।

उड़ाना—क्रि. स. [हि. 'उड़ना' का सक.] (१) उडने में
प्रवृत्त करना । (२) हवा में इधर उधर फैलाना । (३)
झटके से काटकर अलग करना । (४) दौड़ाना ।

उड़ानी—क्रि. अ. [हि. उड़ना] हवा में निराधार उड़ते
फिरना । उ.—बोलत हँसत चपल बंदीजन मनहु धवला
सोइ धूर उड़ानी—२३८३ ।

उड़ाने—क्रि. अ. [हि. उड़ना] उडे, आकाश में इधर
उधर विहरण करने लगे । उ.—ये मधुकर रुचिपंकज
लोभी ताहीते न उड़ाने—१३३४ ।

उड़ान्यौ—क्रि. अ. [सं. उडुयन, हिं. उड़ना] उडा, उड़
गया । उ.—माथे पर है काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहु
तक पाई—५४१ ।

उड़ाहीं—क्रि. स. [हिं. उड़ना] उडाते हैं, हवा में इधर
उधर फैलाते हैं ।

उड़ायक—वि. [हि. उड़ान+क (प्रत्य.)] उड़ानेवाला ।

उड़ायौ—क्रि. स. भूत. [हि. उड़ाना] उडने को प्रवृत्त
किया, उड़ाया । उ.—धावहु नन्द गोहारि लगौ किन,
तेरौ सुत अँववाह उड़ायौ—१०-७७ ।

उड़ावत—क्रि. स. [हि. उड़ाना] उछलते हैं, ठुकराकर
उडाते हैं । उ.—बाजत बेनु विषान, सबै अपने रंग
गावत । मुरली धुनि, गो-रंभ, चलत पग धूरि उड़ावत
—४३७ ।

उड़ावन—क्रि. स. [हि. उड़ाना] उडने को प्रवृत्त करना ।
उ.—जहँ तहँ काग उड़ावन लागीं हरि आवत उड़ि
जात नहीं—२६४६ ।

उड़ावै—क्रि. स. [हि. उड़ाना] हवा में उड़ाता है, उछा-
लता है । उ. ससि सन्मुख जो धूरि उड़ावै उलटि
ताहि कै मुख परै—१-२३४ ।

उड़ास—संज्ञा स्त्री. [हि. उड़ना+स] उड़ने की चाह ।
संज्ञा स्त्री. [सं. उद्रास] रहने का स्थान, महल ।

उड़ासना—क्रि. स. [सं. उद्रासन] (१) बिछौना उठाना ।
(२) उजाड़ना, नष्ट करना । (३) बैठने या सोने में
विघ्न डालना ।

उड़ि—क्रि. अ. हि. उड़ना] उड़कर ।

मुहा.—उड़ि खात—उड़ उड़कर काटता है, धर
खाता है । उ.—जरति अगिनि मे ज्यों घृत नायो तनु
जरि है है दाख । ता ऊपर लिखि जोग पठावत
खाहु नीच तजि राख । सूरदास ऊधो की बतियाँ
उड़ि-उड़ि बैठी खात । (२) अभ्रिय लगता है, सुहाता
नहीं । (३) तेज चलकर ।

मुहा.—उड़ि चले—सवेग भागे, सरपट दौड़े ।
उ.—असुर केतनहि को लग्यौ कल्पन तुरंग गज
उड़ि चले लागी बयारी—१०उ.—३१ ।

उड़िबे—क्रि. अ. [हि. उड़ना] उडने को, उडने के लिए ।
उ.—डरनि डोल डोलत है इहि विधि निरखि
भ्रुवनि सुनि बात । मानौ सूर सकात सरासन, उड़िबे
कौ अकुलात—३६६ ।

उड़िबो, उड़िबौ—क्रि. अ. [हि. उड़ना] जाते रहना,
गायब हो जाना । उ.—बार-बार श्रीपति कहैं, धीवर

नहि मानै । मन प्रतीति नहि आवई, उड़िबो ही जानै—१४२ ।

संज्ञा स्त्र —उड़ने की किया । उ.—चलि सखि, तिहि सरोवर जाहि । .. । देखि नीर जु छिलछिलौ जग समुझि कछु मन माहि । सूर क्यौ नहि चलै उड़ि तहँ, बहुरि उड़िबौ नाहि—१-३३८ ।

उड़ियै—क्रि. अ. [हि. उड़ना] उड़कर, उड़ी-उड़ी, उड़ती हुई । उ.—उड़ियै उडा फिरति नैनन सँग फर फूटै ज्यौ आक रुई—१४३३ ।

उड़ी—संज्ञा स्त्री. [हि. उड़ना] कलाबाजी ।

उडु—संज्ञा स्त्री. [स.] पानी ।

उड़ेलना—क्रि. स. [सं. उद्धारण = निकालना अथवा उदीरण = फेंकना] (१) एक पात्र का तरल पदार्थ दूसरे में डालना । (२) तरल पदार्थ को फेंकना ।

उड़ैनी—संज्ञा स्त्री. [हि. उड़ना] जुगनु ।

उड़ैहै—क्रि. अ. [हि. उड़ना] (१) हवा में उड़ती फिरेगी । (२) हवा में निराधार फिरेगी । उ.—या देही कौ गरब न बरियै, स्यार-काग गिध खैहैं । तीननि में तन कुमि, कै बिष्टा, कै ह्वे खाक उड़ैहैं—१-८६ ।

उड़ौहो—वि. [हि. उड़ना + औहो (प्रत्य.)] उड़नेवाला ।

उड़यो—क्रि. अ. भूत. [हि. उड़ना] उड़ा, उड़ गया । उ.—पौटे स्याम अकेले अँगन, लेत उड़्यौ आकास चढायौ—१०-७७ ।

उड़कना—क्रि. अ. [हि. उठकन] (१) ठोकर खाना । (२) रुकना, ठहरना । (३) सहारा लाना ।

उड़काना—क्रि. स. [हि. उड़ना] सहारे टेकना, भिड़ाना ।

उड़निया—संज्ञा स्त्री. [हि. ओढ़नी] () ओढ़ने की वस्तु, ओढ़नी, उपरेनी, फरिया । (२) पीतांबर । उ.—पीत उड़नियों कहाँ बिसारी । यह तौ लाल ढिगनि की औरै, है काहू की सारी—६६३ ।

उड़रना—क्रि. अ. [सं. उड़ा = विवाहिता] विवाहिता स्त्री का अन्य पुरुष के साथ निकल जाना ।

उड़ाऊँ—क्रि. स. [हि. ओढ़ाना, उढाना] कपड़ा ढकूँ, आच्छादित करूँ । उ.—ये मारे सिर पटिया पारे कंथा काहि उड़ाऊँ—३४६६ ।

उड़ाए—क्रि. स. [हि. ओढ़ाना] ढक दिया, कपड़े से ढक दिये गये । उ.—उपमा एक अभूत भई तब- जब जननी पट पीत उड़ाए—१०-१०४ ।

उढ़ाना—क्रि. स. [हि. ओढ़ाना] कपड़ा ढकना ।

उढ़ावनी—संज्ञा स्त्री. [हि. उढ़ाना] चढ़ा, ओढ़नी ।

उतंक—संज्ञा पुं. [स. उत्तंक] एक ऋषि ।

वि. [सं. उत्तुंग] ऊँचा ।

उतंग—वि. [स. उत्तंग] (१) ऊँचा । उ.—(क) अतिहि उतंग बयारि न लागत, क्यौं टूटे तरु भारी—३८८ । (ख) लेहौ दान अग अंगन को । गोरे भाल लाल सेदुर छवि मुक्ता बर सिर सुभग मंग को । नक बेसरी खुटिला तरिवन को गरह मेल कुच युग उतंग को —१०४२ । (२) उच्च, श्रेष्ठ ।

उतंगनि—वि. बहु [हि. उतंग + नि (प्रत्य.)] ऊँचे । उ.—अति मद गलित ताल फल ते गुरु इनि जुग उरज उतंगनि को—१०३२ ।

उतंत—वि [स. उन्नत या उत्तत = ऊँचा] सयाना, बड़ी उन्न का ।

उत—क्रि. वि. [सं. उत्तर] (१) वहाँ, उधर, उस ओर । उ.—सुनत द्वारवती मारु उतसों भयो सूर जन मंगलाचार गाए—१० उ. २१ । (२) दूसरी तरफ, मुँह फेर कर । उ.—पचि हारे मैं मनायो न मानौ आपुन चरन छुए हरि हाथ । तब रिसि धरि सोई उत मुख करि भुकि भाँक्यौ उपरेना माथ —२७३६ ।

उतकंठ—वि. [स. उत्कंठित] उत्सुक, उत्कंठायुक्त, चावयुक्त । उ.—सवन सुनन उत्कंठ रहत हैं, जब बोलत तुतरात री—१०-१३६ ।

उतकंठा—संज्ञा स्त्री. [स. उत्कंठा] चाह, लालसा, इच्छा ।

उतका—क्रि. वि. [हि. (१) उत + का (२) उत्का] (१) उधर, उस ओर । (२) (श्लेषसे दूसरा अर्थ-उत्का =) उत्कंठिता नायिका के पास । उ.—हौ कहत ना जाउ उतका नंदनंदन बेग । 'सूर' कर आछेप राधी आजु के दिन नेग—सा ३४ ।

उतन—क्रि. वि. [सं. उ + तनु] उस ओर ।

उतना—वि. [हिं. उस+तन (प्रत्य.—सं. 'तावान' से)]
उस मात्रा का ।

उतपति—संज्ञा स्त्री. [सं. उत्पत्ति] सृष्टि । उ.—(क) तुम
हीं करत त्रिगुन बिस्तार । उतपति, धिति, पुनि करत
सँहार—७२ । (ख) उतपति प्रलय करत हैं येई,
शेष सहस-मुख सुजस बखाने—३८० ।

उतपन्न—वि [सं. उत्पन्न] जन्मा हुआ ।

उतपल—संज्ञा पुं. [सं. उत्पल] कमल । उ.—(क) लालन
कर उतपल के कारन सौंभ सँभै चित लावै—सा. ७६ ।
(ख) जोर उतपल आदि उर ते निकस आयो कान
—सा. ७७ ।

उतपाटि—संज्ञा पुं. [हिं. उत्पाटना] उखाड़ कर । उ.—
द्रुम गहि उतपाटि लिए, दै दै किलकारी । दानव
बिन प्रान भए, देखि चरित भारी—६-९५ ।

उतपात—संज्ञा पुं. [सं. उत्पात] (१) कष्टदायक आक-
स्मिक घटना । (२) अशांति, हलचल । (३) ऊधम,
उपद्रव । उ.—(क) लोक-लाज सब छुटि गई, उठि
धाए संग लागे (हो) । सुनि याके उतपात वौ, सुक
सन कादिक भागे (हो)—४४ (ख) जदुकुल में दोउ संत
सबै कहैं तिनके ए उतपात—३३५१ । (ग) तुम
बिन इहाँ कुँवर वर मेरे होते जिते उतपात
—२७०३ ।

उतपानना—क्रि. स. [सं. उत्पन्न] उपजाया, पैदा किया ।

उतपाने—क्रि. स. [सं. उत्पन्न, हिं. उतपानना] उत्पन्न या
पैदा किये, उपजाये । उ.—तासौ मिलि नृप बहु सुख
माने । अष्ट पुत्र तासौ उतपाने—६-२ ।

उतमंग—संज्ञा पुं. [सं. उत्तमंग] सिर, मस्तक ।

उतर—संज्ञा पुं. [सं. उत्तर] उत्तर, जवाब । उ.—(क)
बूझि ग्वालि निज गृह मै आयौ, नैकु न संका मानि ।
सूर रयाम यह उतर बनायौ, चीटी काढत पानि
—१०-२८० । (ख) ठाढ़ो थायो उतर नहि आवै
लोचन जल न समात—२६५७ ।

उतरत—क्रि. अ. [हिं. उतरना] उतरता है, पार जाता
है । उ.—सूरदास-ब्रत यहै, कृष्ण भजि, भव-जल-
निधि उतरत—१-५५ ।

उतरतौ—क्रि. स. [हिं. उतरना] अवनति करता हुआ,

घटता हुआ । उ.—मे तैं कछू न उवरी हरि जू, आयौ
चढत-उतरतौ । अजहूँ सूर पतित-पर तरतौ, जौ
औरहु निस्तरतौ—१-२०३ ।

उतरना—क्रि. अ. [सं. अवतरण, प्रा. उत्तरण] (१) ऊपर
से नीचे आना । (२) अवनति पर होना । (३) स्वर
या कांति मलिन होना । (४) मनो विकार की उग्रता
शांत होना । (५) अंकित होना ।

क्रि. स. [सं. उत्तरण] नदी, पुल आदि को पार
करना ।

उतराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. उतरना] (१) नदी पार उतारने
का महसूल । उ.—(१) दई न जात खेवट उतराई,
चाहत चढयौ जहाज—१-१०२ । (ख) लै भैया केवट
उतराई । महाराज रघुगति इत ठाढ़े तै कत नाव
दुराई—१०-४० । (२) ऊपर से नीचे आने की
क्रिया ।

उतरात—क्रि. अ. [हिं. उतराना] (१) पानी की सतह पर
तैरता है । उ.—हेरि मथानी धरी माट तै, माखन
हो उतारत । आपुन गई वमोरी मोंगन, हरि पाई
ह्यौ घात—१०-२७० । (२) उबलता है, उफान खाता
है । उ.—करत फन-घात, बिप जात उतरात अति,
नीर जरि जात, नहि गात परसै—५५२ ।

उतराना—क्रि. अ. [सं. उत्तरण] (१) पानी पर तैरना ।
(२) उबलना, उफाना । (३) प्रकट होना ।

उतरानी—क्रि. अ. [हिं. उतराना] पानी की सतह पर
तैरने लगी, उतराने लगी । उ.—या ब्रज कौ बसिबौ
हमं छोड्यौ, सो अपनै जिय जानी । सूरदास ऊसर
की बरपा, थोरे जत उतरानी—१०-३३७ ।

उतरायल—वि. [हिं. उतराना] (१) बहका बहका या
इधर-उधर मारा मारा फिरनेवाला । (२) उतारा
हुआ पुराना ।

उतरायौ—क्रि. अ. [हिं. उतराना] नदी आदि के पार
हुआ, तर गया, तारा गया । उ.—ऐसौ को जु न सरन
गहे तैं कहन सूर उतरायौ—१-१५ ।

उतरारी—वि. [सं. उत्तर+हिं. वारी] उत्तरकी (विशेषतः
'हवा') ।

उतराव—संज्ञा पुं. [हिं. उतरना] उतार, ढाल ।

उतरावै—क्रि. अ. [सं. उत्तरण, हि. उतराना] साथ साथ घुमावे-फिरावे, चलावे । उ.—ताको लिए नन्द की रानी, नाना खेल खिलावै । तब जसुमति कर टेकि स्याम कौ, क्रम क्रम करि उतरावै—१०-१२६ ।

उतराहा—क्रि. वि. [स. उत्तर+हा (प्रत्य.)] उत्तर की ओर ।

उतरि—क्रि. स. [स. उत्तरण, हि. उतरना] (नदी आदि के) पार जाओ, पार कर लो । उ.—(क) भव-उदधि जम-लोक दरसै, निपट ही अधियार । सूर हरि कौ भजन करि करि उतरि पल्ले-पार—१-८८ (ख) सकल विषय-विकार तजि, तू उतरि सायर-सेत—१-३११ ।

क्रि. अ. [स. अवतरण, प्रा. उतरण, हि. उतरना] (१) उग्र प्रभाव या उद्देग दूर हुआ । उ.—उतरि गई तब गर्व खुमार—१०६६ । (२) ऊपर से नीचे आकर । (क) रथतै उतरि अरुणि आतुर है चले चरन अति धाए—१-२७३ । (ख) नाभि-सरोज प्रकट पदमासन उतरि नाल पछितावै—१०-६५ । (३) घट जाना, कम हो जाना । उ.—(क) सानि सनेहौ छाँड़ि दयौ । हा जदुनाथ । जरा तन ग्रास्यौ, प्रतिभौ उतरि गयौ—१-२९८ । (ख) आवत देखे स्याम हरष कीन्हौ ब्रजबासी । सोकसिधु गयौ उतरि, सिधु आनंद प्रकासी—५-८६ ।

उतरिन—वि. [सं. उच्छ्रण] ऋण से मुक्त ।

उतरिहै—क्रि. स. [हि. उतारना] उतारेगा, पार पहुँचावेगा । उ.—को कौरव-दल-सिधु मथन करि या दुख पार उतरिहै—१-२९ ।

उतरे—क्रि. स. [सं. उत्तरण, हि. उतरना] (१) (नदी, नाले आदि के) पार गये । उ.—कहौ कपि, कैसै उतरे पार—६-८९ । (२) डेरा या पड़ाव डाला, टिके, ठहरे । उ.—कटक-सोर अति घोर दसौ दिसि, दीसाति बनचर भीर । सूर समुक्ति, रघुवंस-तिलक दोउ उतरे सागर-तीर—६-११५ ।

उतरथौ—क्रि. स. [सं. उत्तरण, हि. उतरना] उतरा, (नदी आदि के) पार गया । उ.—भवसामर मै पैरि नलीन्हौ । ... । अति गंभीर, तीर नहि नियरै, किहि बिधि

उतरथौ जात । नहि अधार नाम अवलोकत, जित तित गोता खात—१-१७५ ।

क्रि. अ. [स. अवतरण, प्रा. उत्तरण, हि. उतरना] उग्र प्रभाव दूर हुआ । उ.—अजहूँ सावधान किन होहि । माया विषम भुजंगिनि कौ विष, उतरथौ नाहिन तोहि—२-३२ ।

उतलाना—क्रि. अ. [हि. आतुर] जल्दी मचाना ।

उतवंग—संज्ञा पुं. [सं. उत्तमंग] मस्तक, सिर ।

उतसहकंठा—संज्ञा स्त्री [सं. उत्कंठा] तीव्र इच्छा, प्रबल अभिलाषा । उ.—सरद सुहाई आई राति । दुहुँ दिस फूल रही बन जाति । ... । एक दुहावत तैं उठि चली । एक सिरावत मग महुँ मिली । उतसह कंठा हरि सौ बढी—१८०१ ।

उतसाहु—संज्ञा पुं. [सं. उत्साह] (१) उमंग, उछाह । (२) साहस, हिम्मत ।

उताइल—वि. [हि. उतावला, उतायल] जल्दी, शीघ्र । उ.—दधिसुत-अरि-भष-सुत सुभाव चल तहाँ उताइल आई—सा. ८७ ।

उताइली—संज्ञा स्त्री. [हि. उतावली, उतायली] जल्दी, शीघ्रता । उ.—करत कहा पिय अति उताइली मैं कहूँ जात परानी—१६०१ ।

उतान—वि. [सं. उत्तान] चित, सीधा ।

उतानपाद - संज्ञा पुं. [सं. उत्तानपाद] एक राजा जो स्वायंभुव मनु के पुत्र और ध्रुव के पिता थे ।

उतायल—वि. [सं. उत् + त्वरा] जल्दी, तेज ।

उतायली—संज्ञा स्त्री. [सं. उत् + त्वरा, हि. उतावली] जल्दी, शीघ्रता ।

उतार—संज्ञा पुं. [हि. उतरना] (१) उतारन, निकृष्ट । उ.—प्रभुजू हौ तौ महा अधर्मी । अपत, उतार, अभगौ, कामी बषयी, निपट कुकुर्मी—१-१८६ । (२) उतरने की क्रिया । (३) ढाल । (४) घटाव, कमी । (५) उतारा, न्योछावर ।

क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] खेलेकर, अलग करके । उ.—न्हान लगी सब बसन उतार—१-१७४ ।

उतारत—क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१)

(धारण की हुई वस्तु को) अलग करते हैं, खोलते हैं । उ.—उतारत हैं कंठनि तैं हार । हरि हित मिलन होत है अतर, यह मन कियौ बिचार—६८७।
(२) उतार रहा है, स्वयं अपना रहा है, दूसरे को घटाना चाहता है । उ.—मानिन अजहूँ छाँड़ो मान । तीन बिबि दधिसुत उतारत रामदल जुत सान—सा. २१ । (३) सामने रखती है, दिखाती है । उ.—ग्रह मुनि दुत हित के हित कर ते मुकर उतारत नाथे—सा. ६ ।

उतारति—क्रि. स. [हि. उतारना] (१) उतारती है, शरीर के चारो ओर घुमाती है । उ.—खेलत मै कोउ दीठि लगाई, लै-लै राई लौन उतारति—१०-२०० ।
(२) धारण की हुई वस्तु को खोलती या अलग करती है । उ.—अरु बनमाल उतारति गर तैं सूर स्याम की मातु—५११ ।

उतारन—संज्ञा पुं. [हि. उतारना] (१) उतरन, उतारा हुआ व पड़ा । (२) न्योछावर । (३) निकृष्ट वस्तु ।

क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (किसी उग्र प्रभाव को) दूर करने के लिए, (किसी भार को हल्का करने के उद्देश्य से । उ.—(क) रथ तैं उतरि अवनि आतुर है, चले चरन अति धाए । मनुसंचित भू-भार उतारन, चपल भए अकुलाए—१-२७२ ।
(ख) आजु दसरथ कै आँगन भीर । ये भू-भार उतारन कारन प्रगटे स्याम-सरीर—६-१६ ।

उतारना—क्रि. स. [सं. अवतरण] (१) ऊँचे से नीचे उतरना । (२) चित्र आदि खींचना । (३) काटना, अलग करना । (४) धारण की हुई वस्तु को खोलना । (५) न्योछावर करना । (६) उग्र प्रभाव को दूर करना । (७) जन्म देना । (८) वस्तु या पदार्थ तैयार करना ।

क्रि. स. [सं. उत्तारण] नदी आदि के पार ले जाना ।

उतारा—संज्ञा पुं. [हि. उतरना] (१) ठहरने या डेरा डालने की क्रिया । (२) उतरने का स्थान, पड़ाव ।

संज्ञा पुं. [हि. उतारना] (१) क्लेश या ग्रह-शांति

के लिए कुछ सामग्री व्यक्ति विशेष के चारो ओर घुमा कर चौराहे पर रखना । (२) उतारे की सामग्री ।

उतारि—क्रि. स. [सं. उत्तारण, हि. उतारना] (नदी आदि के) पार करके, पार पहुँचाकर, पार करो । उ.—लीजै पार उतारि सूर कौं महाराज ब्रजराज । नई न करन कहत प्रभु, तुम हौ सदा गरीब-निवाज—१-१०८ ।

क्रि. स. [सं. अवतरण प्रा. उत्तरण, हि. उतारना] (१) धारण की या पहनी हुई वस्तु को खोलकर । उ.—(क) बिदुरसस्त्र तब सबहि उतारि । चलयौ तीरथनि मुंड उधारि—१-२८४ । (ख) इक अभरन लेहि उतारि देत न संक करैं—१०-२४ ।
(ग) ईस जनु रजनीस राख्यौ भाल तैं जु उतारि—१०-१६६ । (२) जुड़ी या लगी हुई वस्तु को काट कर, अलग करके । उ.—अस्वत्थामा निसि तहँ आए । द्रोपदी-सुत तहँ सोवत पाए । उनके सिर लै गयौ उतारि । कल्यौ, पाडवनि आयौ मारि—१-२८६ । (३) उठाया, हुई वस्तु को पृथ्वी पर रखना । उ.—सूर प्रभु कर ते गुबर्धन धरथौ धरनि उतारि—६६४ । (४) उतारा करके, नजर उतार कर । उ.—कबहूँ अँग भूषन बनावति, राइ-लोन उतारि—१०-११८ । (५) ऊपर रखी वस्तु को नीचे रखना । उ.—(क) उफनत दूध न धरथौ उतारि—१८०३ । (ख) एक उफनत ही चलीं उठि धरथौ नाहि उतारि—पृ. ३३६ (८४) ।

उतारिए—क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१) ठहराइए । (२) न्योछावर कीजिए, वारिए ।

उतारी—क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१) (पहने हुए वस्त्र आदि) खोलकर । उ.—(क) बसन धरे जल-तीर उतारी । आपुन जल पैठी सुकुमारी—१०-७६६ । (ख) उरते सखी दूर कर हारहि ककन धरहु उतारी—२७८२ । (२) आरोही को किसी यान से नीचे पृथ्वी पर उतार कर, ठहरा कर, डेरा देकर । उ.—निरखति ऊधो सुख पायौ । सुन्दर सुजल सुबंस देखियत याते स्याम पठायौ । ... । महर लिवाय गये निज मंदिर हरषित लियौ उतारी—२६६३ । (३) सिर पर उठाए हुए भारको

सीचे रखकर । उ.—(क) योग मोट सिर बोझ आनि
तुम कत धौ घोष उतारी—३३१६। (ख) लादि खेप
गुन शान योग की ब्रज मै आनि उतारी—३३४०।

उतारू—वि. [हि. उतरना] तैयार, तत्पर।

उतारै—क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१)
संकट आदि दूर करे। उ.—निर्विष होत नहि कैसेहुँ
बहुत गुनी पचि हारे। सूर स्याम गारुडी बिना को,
जो सिर गाढ उतारै—७४७। (२) उग्र प्रभाव या
उद्वेग को दूर करे। उ.—आनहुँ बेगि गारुरी
गोबिदहि जो यहि बिषहि उतारै—३२५४।

उतारै—क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (पहने
हुए वस्त्रादि) खोलें। उ.—इत-उत चितवति लोग
निहारै। कह्यौ सबनि अब चीर उतारै—७६६।

उतारै—क्रि. स. [सं. उत्तारण, हि. उतारना] (नदी
आदि के) पार पहुँचाना। उ.—भवसमुद्र हरि-पद-
नौका बिनु कोउ न उतारै पार—१-६८।

क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] उतारा
करे, नजर आदि उतारे। उ.—जाकौ नाम कोटि
भ्रम टारै। तापर राई-लोन उतारै—१०-१२६।

उतारौ—क्रि. स. [सं. उत्तारण, हि. उतारना] (नदी,
नाले आदि को पार ले जाऊँ, पार पहुँचा दूँ।
उ.—(क) सोखि समुद्र, उतारौँ कपि-दल,
छिनक बिलंब न लाऊँ—९-१०६। (ख) आज्ञा
होइ, एक छिन भीतर, जल इक दिसि करि डारौँ।
अंतर मारग होइ, सबनि कौं इहि विधि पार
उतारौँ—९-१२१।

क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१)
जुड़ी हुई वस्तु को सफाई के साथ काटूँ, काटकर
अलग करूँ। उ.—तबै सूर संधान सफल हौ, रिपु
कौ सीस उतारौँ—६-१३७। (२) बोझ उतार कर
हल्का करूँ। उ.—असुर कुलहि संहारि, धरनि कौं
भार उतारौँ—४३१।

उतारौ—संज्ञा पुं. [हि. उतरना] उतारा, उतरने योग्य
स्थान, पड़ाव। उ.—(क) जल औड़े मे चहुँ दिसि
पैरथौ, पाँउ कुल्हारौ मारौ। बाँधी मोट पसारि
त्रिविध गुन. नहि कहूँ बीच उतारौ। देख्यौ सूर
बिचारि सीस परी, तब तुम सरन पुकारौ—१-१५२।

(ख) ममता-घटा, मेह की बूँदें, सरिता मै न अपारौ।
बूझत कतहुँ थाह नहि पावत, गुरुजन-ओट अघारौ।
गरजत क्रोध-लोभ कौ नारौ, सूझत कहूँ न उतारौ
—१-२०६।

उतारथौ—क्रि. स. [सं. उतारण, हि. उतारना]
(नदी-नाले आदि के) पार ले गया। उ.—मारद
जू तुम कियौ उपकार। बूझत मोहि उतारथौ पार
—४-१२।

क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१)
उठाया हुआ भार पृथ्वी पर रखा। उ.—हरि कर ते
गिरिराज उतारथौ—१०७०। (२) उग्र प्रभाव को
दूर किया। उ.—भले कान्ह हो बिषहि उतारथौ।
नाम गारुडी प्रगट तिहारो—७६२।

उताल - क्रि. वि. [सं. उद् + त्वर] जल्दी, शीघ्र।
उ.—(क) सो राजा जो अगमन पहुँचें. सूर सु भवन
उताल। जौ जैहैं बलदेव पहिले ही, तौ हँसिहैं सब
ग्वाल—१०-२२३। (ख) कहै न जाइ उताल जहाँ
भूपाल तिहारौ। हौं बूँदावन चंद्र कहा कोउ करै
हमारौ—१११२।

संज्ञा स्त्री — शीघ्रता, जल्दी।

उताली—संज्ञा स्त्री. [हि. उताल] शीघ्रता, उतावली,
फुर्ती।

क्रि. वि.— शीघ्रता से, जल्दी से।

उतावत—क्रि. वि. [सं. उद् + त्वर] शीघ्रता से। उ.—
कोउ गावत, कोउ बेनु बजावत, कोऊ उतावत
धावत। हरि दर्शन लालसा कारनै विविध मुदित सब
आवत—१० उ.—११२।

वि.—उतावला, जल्दी मचानेवाला।

उतावला—वि. [सं. उद् + त्वर] (१) जल्दी मचानेवाला।
(२) घबराया हुआ।

उतावलि—संज्ञा स्त्री. [सं. उद् + त्वर, हि. उतावली]
जल्दी, शीघ्रता, हड़बड़ी। उ.—अंधयारी आई तहँ
भारी। दनुज-सुता तिहि तै न निहारी। बसन सुक-
तनया के लीन्हे। करत उतावलि परे न चीन्हे—
६-१७३।

उतावली—वि. स्त्री. [हि. पुं. उतावला] (१) जल्दी-मचाने
वाली। (१) घबरायी हुई, व्यग्र। उ.—प्रातहि धेनु

दुहावन आई, अहिर तहाँ नहि पाई । तबहि गई मै
ब्रज उतावली, आई ग्वाल बुलाई—७२८ ।

संज्ञा स्त्री.—(१) जल्दबाजी, हड़बड़ी । (२)
व्यग्रता, चंचलता ।

उताहल—क्रि. वि. [सं. उद् + त्वर] शीघ्रता से, बहुत
जल्दी से ।

वि.—उतावला, घबराया हुआ ।

उताहिल—क्रि. वि. [हि. उताहल] जल्दी-जल्दी,
शीघ्रता से ।

उत्तिम—वि. [सं. उत्तम] उत्तम, श्रेष्ठ । उ.—नृतकार
उत्तिम बनाइ बानिक सग चंद न आवै—सा. ६१ ।

उदृण—वि. [सं. उद् + ऋण] (१) ऋण से मुक्त ।
(२) उपकार का बदला चुका देनेवाला ।

उतै—क्रि. वि. [हि. उस + त (प्रत्य) = उत] उधर, उस
ओर, वहाँ । उ.—उतै देखि धावै, अचरज पावै, सूर
सुरलोक-ब्रजलोक एक है रह्यौ—४८४ ।

उतैला—क्रि. वि. [हि. उतावला] (१) हड़बड़ी करने
वाला । (२) घबराया हुआ ।

उत्कंठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रबल इच्छा । (२)
एक संचारी भाव ।

उत्कंठित—वि. [सं.] चाव से भरा हुआ, उत्सुक ।

उत्कंठिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो मिलन
के स्थान पर प्रिय के न आने से चिंतित हो ।

उत्कंप—संज्ञा पुं. [सं.] कंपकंपी ।

उत्कट—वि. [सं.] तीव्र, उग्र, प्रबल ।

उत्कलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चाह, लालसा ।
(२) कली । (३) तरंग ।

उत्कर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बढ़ाई, प्रशंसा । (२)
बढ़ती, अधिकता । (३) समृद्धि, उन्नति ।

उत्कर्षता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्रेष्ठता, उत्तमता ।
(२) अधिकता । (३) समृद्धि ।

उत्क्रम—संज्ञा पुं. [सं.] क्रमभंग, उलट-पलट ।

उत्क्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) क्रम का ध्यान न रखना ।
(२) मृत्यु ।

उत्कीर्ण—वि. [सं.] लिखा या खुदा हुआ ।

उत्कृष्ट—वि. [सं.] उत्तम, श्रेष्ठ ।

उत्कृष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रेष्ठता, उत्तमता ।

उत्कोच—संज्ञा पुं. [सं.] घूस, रिश्वत ।

उत्कोचक—वि. [सं.] घूस लेनेवाला ।

उत्क्रांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूर्णता या उत्तमता की ओर
क्रमशः बढ़ने की प्रवृत्ति ।

उत्खाता—वि. [सं.] उखाड़नेवाला ।

उत्तंस—संज्ञा पुं. [सं. अवतंस] (१) भूषण, गहना ।
(२) टीका । (३) मुकुट, श्रेष्ठ । (४) माला ।

उत्त—संज्ञा पुं. [सं. उत्] (१) आश्चर्य । (२)
संदेह ।

क्रि. वि.—उस ओर, उधर ।

उत्तम—संज्ञा पुं. [सं.] ध्रुव का सौतेला भाई जो राजा
उत्तानपाद की छोटी रानी सुरुचि से उत्पन्न
हुआ था ।

वि. [सं.] सबसे अच्छा, श्रेष्ठ ।

उत्तमगंधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] चमेली

उत्तमतया—क्रि. वि. [सं.] अच्छी तरह से ।

उत्तमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रेष्ठता, भलाई ।

उत्तमताई—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रेष्ठता, भलाई ।

उत्तम—वि. [सं.] (१) तप्त हुआ । (२) दुखी,
पीड़ित । (३) क्रोधित ।

उत्तमश्लोक—वि. [सं.] यशस्वी, कीर्तियुक्त ।

संज्ञा पुं. (१) पुण्य, यश । (२) भगवान्,
विष्णु ।

उत्तमांग—संज्ञा पुं. [सं.] सिर, मस्तक ।

उत्तमा—वि. स्त्री. [सं. पुं. उत्तम] अच्छी, भली ।

उत्तमोत्तम—वि. [सं.] सबसे अच्छा, अच्छे-अच्छे ।

उत्तमौजा—वि. [सं. उत्तमौजस्] उत्तम बल या तेज
वाला ।

उत्तर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दक्षिण के सामने की दिशा ।
(२) प्रश्न के समाधान में कही गयी बात ।
(३) बदला । (४) राजा विराट का पुत्र । (५) एक
काव्यालंकार ।

वि.—(१) पिछला, बाद का । (२) ऊपर का

(३) बढ़कर, श्रेष्ठ ।

क्रि. वि.—पीछे, बाद ।

उत्तरदाता—पुं. [सं. उत्तरदातृ] जिम्मेदार ।

उत्पीड़न—संज्ञा पुं. [सं.] दुख देना, पीड़ा पहुँचाना ।
 उत्प्रेक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उद्भावना । (२) एक
 अर्थालंकार जिसमें उपमान को भिन्न समझते हुए भी
 उपमेय में उसकी प्रतीति की जाय ।
 उत्फुल्ल—वि. [सं.] (१) खिला हुआ, विकच ।
 (२) चित्त, सीधा ।
 उत्संग—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गोद, अंक । (२)
 निर्लस, विरक्त ।
 उत्सर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) त्याग, छोड़ना । (२)
 दान, निष्ठावर ।
 उत्सर्जन—संज्ञा पुं. [सं.] (२) त्याग । (२) दान ।
 उत्साह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उमंग, उछाह, जोश ।
 (२) साहस, हिम्मत ।
 उत्साही—वि. [सं. उत्साहिन्] उमंगवाला ।
 उत्सुक—वि. [सं.] (१) इच्छुक, चाह से युक्त ।
 (२) उद्योग में तत्पर ।
 उत्सुकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तीव्र इच्छा, उत्कंठा ।
 (२) एक संचारी भाव, किसी कार्य के करने में,
 दूसरे की राह न देखकर, स्वयं तत्पर हो जाना ।
 उत्सूर—संज्ञा पुं. [सं.] सायंकाल ।
 उत्सृष्ट—वि. [सं.] त्यागा हुआ ।
 उत्सेध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बढ़ती । (२) ऊँचाई ।
 वि.—(१) ऊँचा (२) श्रेष्ठ ।
 उथपना—क्रि. स. [सं. उत्थापन] उखाड़ना, उजाड़ना ।
 उथपै—क्रि. स. [हि. उथपना] उजड़ जाय, नष्ट हो ।
 उथलना—क्रि. अ. [सं. उत्+स्थल] (१) डगमगाना ।
 (२) नीचे-ऊपर होना । (३) पानी का छिछला
 होना ।
 उथलपुथल—संज्ञा पुं. [हि. उथलना] (१) उलट-
 पुलट । (२) हलचल ।
 वि.—इधर का उधर ।
 उथला—वि. [सं. उत्+स्थल] कम गहरा, छिछला ।
 उदंत, उदंतक—संज्ञा पुं. [सं.] वार्ता, वृत्तांत ।
 उदक—संज्ञा पुं. [सं.] जल, पानी ।
 उदकना—क्रि. अ. [सं. उद्+ऊपर+क = उदक] कूदना,
 उछलना ।

उदकि—क्रि. अ. [हि. उदकना] कूदना, कूद कर ।
 उद्गार—संज्ञा पुं. [सं. उद्गार] (१) उबाल, उफान ।
 (२) घोर शब्द । (३) मन की बात सवेग कहना ।
 उद्गारना—क्रि. स. [सं. उद्गार] (१) बाहर
 निकालना, उगलना । (२) भड़काना, उत्तेजित
 करना, प्रज्वलित करना ।
 उद्गारी—क्रि. स. [हि. उद्गारना] उत्तेजित की,
 प्रज्वलित की ।
 वि.—(१) उगलनेवाला । (२) बाहर निकालने
 वाला ।
 उद्गम—वि. [सं. उदग्र, पा. उदग्ग] (१) ऊँचा,
 उन्नत । (२) उग्र, प्रचंड ।
 उद्ग्र—वि. [सं.] (१) ऊँचा, उन्नत । (२) बढ़ाया
 हुआ । (३) प्रचंड, उग्र ।
 उद्घटत—क्रि. स. [हि. उद्घटना] प्रकट होता है,
 उदय होता है ।
 उद्घटना—क्रि. स. [सं. उद्घटन=संचालन] प्रकट होना,
 उदय होना ।
 उद्घाटन—संज्ञा पुं. [सं. उद्घाटन] प्रकट करना ।
 उद्घाटना—क्रि. स. [सं. उत्घाटन] प्रकट करना,
 खोलना ।
 उद्घाटी—क्रि. स. [हि. उद्घाटना] प्रकट की, खोली ।
 उदथ—संज्ञा पुं. [सं. उद्गीथ=सूर्य] सूर्य ।
 उदधि—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र ।
 उदधितनयापति—संज्ञा पुं. [सं. उदधि (=समुद्र)+
 तनया=पुत्री=शुक्ति=सीप]+पति (शुक्तिपति=मेघ=
 नीरद=जीवनद=जीवनदान) जीवनदान । उ.—बेगि
 मिलौ सूर के स्वामी उदधितनया-पति मिलिहै
 आई—सा. उ. ३० ।
 उदधि मेखला—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी ।
 उदधिसुत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा । (२)
 अमृत । (३) शंख । (४) कमला । उ.—दिनपति
 चले धौ कहा जात ! धराधरनधरनिपुत न लीनो
 कहो उदधि सुत बात—सा. ८ ।

उदधिसुता—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) लक्ष्मी (२) सीप ।

उदपान—संज्ञा पुं. [सं.] कमंडलु ।

उदबस—वि. [सं. उद्वासन=स्थान से हटाना] (१)

उजाड़, सूना । (२) स्थान से निकाला हुआ, एक स्थान पर न रहनेवाला । उ.—अब तो बात घरी पहरन सखि ज्यों उदबस की भीत्यो । सूरस्याम दासी सुख सोवहु भयो उभय मन चीत्यौ—३८८४ ।

उद्वासना—क्रि. स. [सं. उद्वासन, हि. उदबस]

(१) स्थान से उठाना या भगाना । (२) उजाड़ना ।

उदभट—वि. [सं. उद्भट] प्रबल, प्रचंड ।

उदभव—वि. पुं. [सं. उद्भव] (१) उत्पत्ति, सृष्टि ।

(२) वृद्धि, बढ़ती ।

उद्भौत—संज्ञा पुं. [सं. अद्भुत] अद्भुत वस्तु, अचम्भा ।

उद्भौति—संज्ञा स्त्री. [सं. अद्भुत] अद्भुत वस्तु होना या घटना । उ.—अखियनि तैं मुरली अति प्यारी-वह बैरिनि यह सौति । सूर परस्पर कहत गोपिका यह उपजी उद्भौति—पृ. ३२८ ।

उदमद—वि. [सं. उद्+मद] उन्मादपूर्ण, मतवाला ।

उ.—उदमद यौवन आनि ठाढ़ि कै कैसे रोको जाइ—३११३ ।

उदमदना—क्रि. अ. [सं. उद्+मद] उन्मत्त या मतवाला होना ।

उदमदे—वि. [हिं. उदमाद] उन्मत्त, मतवाला ।

उ.—गोपन के उदमाद फिरत उदमदे कन्हारै ।

उदमाद—संज्ञा पुं. [सं. उद्+माद] उन्माद, मतवाला-पन, पागलपन । उ.—सरदकाल रितु जानि दीप-मालिका बनाई । गोपन के उदमाद फिरत उदमदे कन्हारै ।

उदमादी—वि. [हिं. उदमाद] उन्मत्त, मतवाला ।

उ.—मेरो हरि कहैं दसहि बरस को तुम ही यौवन मद उदमादी—१०५७ ।

उदमान—वि. [सं. उन्मत्त] उन्मत्त, मतवाला ।

उ.—अग्नि कबहुँक बरखि बारि बरषा करै प्रद्युम्न

संकल माया निवारी । शास्त्र परधान उदमान मारी गदा प्रद्युम्न मुरछित भए सुधि बिसारी—१० उ.—५६ ।

उदमानना—क्रि. अ. [सं. उन्मादन] उन्मत्त होना ।

उदमानी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. उदमानना] उन्मत्त हुई, मतवाली बनी । उ.—मेरो हरि कहैं दसहि बरस को तुमही जौवन मद उदमानी (उदमादी) —१०५७ ।

उदय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निकलना, प्रकट होना ।

क्रि. प्र.—उदय कीनो—प्रकट किया, प्रकाशित किया । उ.—तिलक भाल पर परम रुचिर गोरोचन को दीनो । मानो तीन लोक की सोभा अधिक उदय सो कीनो ।

मुहा.—उदय अरु अस्त लौं—सारे संसार में, सारी पृथ्वी पर । उ.—हिरनकश्यप बढ़्यौ उदय अरु अस्त लौं, हठी प्रह्लाद चित चरन लायौ । भीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी, खम तैं प्रगट है जन छुड़ायौ—१-५ । (१) वृद्धि, उन्नति, बढ़ती । (२) निकलने का स्थान, उद्गम ।

उदयगढ़—संज्ञा पुं. [सं. उदय+हिं. गढ़] उदयाचल जिसके पीछे से सूर्य निकलता है ।

उदयगिरि—संज्ञा पुं. [सं.] उदयाचल जिसके पीछे से सूर्य निकलता है ।

उदयाचल—सं. पुं [सं. उदय+अचल=पर्वत] पूर्व दिशा का एक पर्वत जिसके पीछे से सूर्य निकलता दिखायी देता है ।

उदयाद्रि—संज्ञा पुं. [सं. उदय+अद्रि=पर्वत] उदयाचल ।

उदर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पेट, जठर ।

मुहा.—उदर जियाऊँ—पेट पालूँ, पेट भरूँ, खाऊँ । उ.—माँगत बार-बार सेष ग्वालन कौं पाऊँ । आप लियौ कछु जानि भक्ष करि उदर जियाऊँ । उदर भरै—पेट पाले । भिक्षा-वृत्ति उदर नित भरै निसि दिन हरि-हरि सुमिरन करे ।

(२) किसी वस्तु के बीच का भाग । (३) भीतरी भाग ।

उदरज्वाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जठराग्नि । (२) भूख ।

उदरना—क्रि. अ. [हि. उदारना] (१) फटना । (२) ढहना, नष्ट होना ।

उदवत—क्रि. अ. [सं. उदयन, हि. उदवना] निकलते या प्रकट होते ही (या होकर) । उ.—मेरौ हरन मरन है तेरौ, स्यौ कुटुम्ब-संतान । जरिहै लंक वनकपुर तेरौ, उदवत रघुकुल-भान—६-७६ ।

उदवना—क्रि. अ. [सं. उदयन] निकलना, प्रकट होना ।

उदवाह—संज्ञा पुं. [सं. उद्वाह] विवाह ।

उदवेग—संज्ञा पुं. [सं. उद्वेग] (१) चित्त की घबड़ाहट । (२) आवेग, जोश ।

उदसन—क्रि. अ. [सं. उदसन=नष्ट करना । अथवा उद्वासन] (१) उजड़ना । (२) अंडबंड होना ।

उदात्त—संज्ञा पुं. [सं. उदात्त] एक अलंकार जिसमें संभावित वैभव, ऐश्वर्य या समृद्धि का बहुत बड़ा-चढ़ाकर वर्णन हो । उ.—यह उदात्त अनूप भूषन दियो सब घर तोर । सूर सब रे लच्छनन जुत सहित सब त्रिन तोर—सा-६४ ।

उदात्त—वि. [सं.] (१) ऊँचे स्वर से उच्चरित । (२) दयालु । (३) दाता, दानी । (४) श्रेष्ठ । (५) समर्थ, योग्य । (६) स्पष्ट, विशद ।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऊँचा स्वर । (२) एक काव्यालंकार ।

उदान—संज्ञा पुं. [सं.] प्राणवायु का एक भेद जिसकी गति हृदय से कंठ और सिर से अमध्य तक है ।

वि.—उडे-उडे, मारे मारे, अस्थिर । उ.—अब मेरी को बोलै साखि ! कैसे हरि के राग सिधारे अब लौ यह तन राखि । प्राण उदान फिरत ब्रज बीथिनि अवलोकनि अभिलाषि—२८४७ ।

उदाम—वि. [सं. उद्दाम] (१) उग्र, उहंड । (२) स्वतंत्र । (३) गंभीर ।

उदायन—संज्ञा पुं. [सं. उद्यान=बाग] बाग, वाटिका, उपवन ।

उदार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दयालु, दानशील ।

यौ.—उदार-उदधि—बहुत दयालु, महानदानी ।

उ.—प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ । अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि जान-सिरोमनि राइ—१-८ ।

(२) महान, श्रेष्ठ । (३) उदार विचारवाला । (४) सरल, सीधा, शिष्ट । (५) अनुकूल ।

उदारचरित—वि. [सं.] उच्च आचार-विचार रखनेवाला ।

उदारचेता—वि. [सं. उदारचेतस्] उदार चित्त वाला ।

उदारता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दानशीलता । (२) उच्च विचार, विशालहृदयता ।

उदारना क्रि. स. [सं. उदारण] (१) फाड़ना । (२) ढहाना, नष्ट करना ।

उदागी—वि. [सं. उदार] उदार, दयालु । उ.—धावत कनक-मृगा के पाछै, राजिव-लोचन परम उदारी—६-१९८ ।

उदाराशय—वि. [सं. उदार+आशय] उच्च विचारवाला, विशाल हृदय, महात्मा ।

उदारौ—क्रि. स. [हि. उदारना] तोड़ फोड़ दूँ, छिन्न-भिन्न कर दूँ, नष्ट कर डालूँ उ.—जो तुम आशा देहु कृपानिधि तो एहि पुर सहारौ । कहहु तो लंक उदारौ (विदारौ)—९-१०७ ।

उदास—वि. [सं.] (१) खिन्न चित्त, दुखी । उ.—(क) हरि अमृत लै गए अकास । असुर देखि यह भए उदास—७-७ । (ख) रामचन्द्र अततार कहत है सुनि नारद मुनि पास । प्रगट भयो निस्चर मारन को सुनि यह भयो उदास (२) जिसका चित हट गया हो, विरक्त । उ.—(क) राजिव रवि को दोष न मानत, ससि सो सहज उदास—३२१६ । (ख) ऐमे रहत उतहि को आतुर मोसो रहत उदास । सूर स्याम के मन क्रम बच भए रीके रूप प्रकास—पृ. ३३४ ।

(३) जो किसी से सम्बन्ध न रखे, तटस्थ, निरपेक्ष । उ.—मै उदास भवसों रहौ इह मम सहज सुभाइ । ऐसोजानै मोहि जो मम माया न रचाइ—१० उ.—४७

संज्ञा पुं.—दुख, खेद ।

उदासना—क्रि. स. [सं. उदासन] (१) उजाड़ना, नष्ट करना । (२) लपेटना ।

उदासा—वि. [सं. उदास] (१) जिसका चित्त हट गया हो, विरक्त । उ.—निःकंचन जिनमें मम बासा । नारि राग मैं रहौ उदासा—१० उ. ३२ । (२) खिन्न चित्त, दुखी । उ.—अरुणोदय उठि प्रात ही अक्रूर बोलाए । । सोवत जाइ जगाइ के चलिए नृप पासा । उहै मंत्र मन जानि के उठि चले उदासा—२४७६ ।

संज्ञा पु.—दुख का प्रसंग, दुख की बात । उ.—मन ही मन अक्रूर सोच भारी... । कुबलिया मल्ल मुष्टिक चाणूर से कियो मैं कर्म यह अति उदासा—२५५१ ।

उदासिल—वि. [सं. उदास+हि. इल (प्रत्य.)] उदास, उदासीन ।

उदासी—संज्ञा पुं. [सं. उदास+हि. ई (प्रत्य.)] विरक्त या त्यागी पुरुष, संन्यासी ।

संज्ञा स्त्री.—विरक्ति, त्याग । उ.—जोग, ज्ञान ध्यान, अवराधन साधन मुक्ति उदासी । नाम प्रकार कहा रुचि मानहि जो गोपाल उपासी—३१०६ । (२) खिन्नता, दुख । उ.—दिनु दसरथ सब चले तुरत ही कोसलपुरके बासी । आए रामचन्द्र मुख देख्यौ सबकी मिटी उदासी ।

वि.—दुखी, विरक्त, त्यागी, उदास । उ.—(क) ब्रज बासी सब भए उदासी को संताप हरै—३०४७ । (ख) किहि अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम भक्ति ते करत उदासी । सूरदास तो कौन बिरहिनी माँगे मुक्ति छोड़ि गुनरासी—३३१५ । (२) रुष्ट, अप्रसन्न । उ.—सूर सुनत सुरपती उदासी । देखहु ए आए जलरासी—१०६१ ।

उदासीन—वि. [सं.] जिसका चित्त किसी वस्तु या व्यक्ति से हट गया हो, विरक्त । (२) जो किसी के झगड़े में न पड़े, निष्पक्ष, तटस्थ । (३) रुखा, उपेक्षा से पूर्ण ।

उदासीनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चित्त का हटना, विरक्ति । (२) उदासी, खिन्नता ।

उदाहरण—संज्ञा पुं. [सं.] दृष्टांत ।

उदित—वि. [सं.] (१) जो उदय हुआ हो, निकला हो ।

उ.—(क) धर अवर, दिशि-विदिशि, बड़े अति सावक फिरन-समान । मानौ महाप्रलय के कारन, उदित उभय षट भान—१-१५८ । (ख) उदित चारु चन्द्रिका अवर उर अंतर अमृत मई—२८५३ । (२) प्रफुल्लित, प्रसन्न । उ.—अति सुख कौसल्या उठि धाई । उदित बदन मन मुदित सदन तैं, आरति साजि सुमित्रा ल्याई—६-१६६ । (३) प्रकट । (४) उज्ज्वल, स्वच्छ ।

उदितयौवना—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह सुग्धा नायिका जिसमें बचपन का भोलापन शेष हो ।

उदियाना—क्रि. अ. [सं. उद्विग्न] घबड़ाना, हैरान होना ।

उदीची—संज्ञा स्त्री. [सं.] उत्तर दिशा ।

उदीच्य—वि. [सं.] (१) उत्तर दिशा अथवा प्रदेश का रहनेवाला । (२) उत्तर दिशा का ।

उदीपन—संज्ञा पुं. [सं. उद्दीपन] (१) उत्तेजित करने की क्रिया, जगाना । (२) उत्तेजित करने की वस्तु ।

उद्वेग—संज्ञा पुं. [सं. उद्वेग] चित्त की व्याकुलता ।

उदै—संज्ञा पुं. [सं. उदय] उदय, निकलना या प्रकट होना । उ.—डुलै सुमेरु, सेष-सिर कंपै, पश्चिम उदै करै बासरपति । सुनि त्रिजडी, तौहूँ नहि छाड़ौ मधुर मूर्ति रघुनाथ-गात-रति—६-८२ ।

उदो—संज्ञा पुं. [सं. उदय] वृद्धि, उन्नति, बढ़ती, उदय । उ.—(क) तुम्हरो कठिन वियोग विषम दिनकर सम उदो करै । हरि-पद विमुख भए सुनु सूरज को इहि ताप हरै—३४५८ । (ख) राकापति नहिं कियो उदो सुनि या सम ये नहि आवति—सा. उ. १३ ।

उद्योत—संज्ञा पुं. [सं. उद्योत] प्रकाश, दिशि । उ.—नव-तन-चन्द्र-रेख मधि राजत, सुर-गुरु-शुक्र-उद्योत परस्पर—१०-६३ ।

वि.—(१) प्रकाशित, दीप्त । (२) उत्तम ।

उद्योतकर—वि. [सं. उद्योतकर] (१) प्रकाश करने वाला । (२) उज्ज्वल करनेवाला ।

उद्योती—वि. [सं. उद्योत] (१) प्रकाशित । (२) उत्तम ।

(१) प्रकाश करनेवाला, विकाशक ।
 संज्ञा पुं.—प्रकाश ।
 उदौ—संज्ञा पुं. [सं. उदय] उदय, प्रकटना, जन्म ।
 उ.—नंद-उदौ मुनि आयौ हो, वृषभानु कौ जगा—
 १०-३७ ।
 उद्—उप. [सं] एक उपसर्ग जो शब्दों के आदि में
 जुड़कर इन अर्थों की विशेषता लाता है । ऊपर, जैसे—
 उद्गमन । अतिक्रमण, जैसे—उत्तीर्ण । उत्कर्ष,—
 जै उद्बोधन । प्रबलता,—जैसे उद्गार । प्रधानता,
 —जैसे उद्देश्य । कमी,—जैसे उद्दासन । प्रकाश,—
 जैसे उच्चारण । दोष,—जैसे उद्मार्ग (उन्मार्ग) ।
 संज्ञा पुं.—(१) मोक्ष, सुगति । (२) ब्रह्मा ।
 (३) सूर्य । (४) जल ।
 उद्गत—वि. [सं] (१) उत्पन्न, जन्मा हुआ । (२)
 प्रकट । (३) फैला हुआ, व्याप्त ।
 उद्गम—संज्ञा पुं. [सं] (१) उदय । (२) उत्पत्ति का
 स्थान । (३) स्थान जहाँ से नदी निकलती है ।
 उद्गार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उबाल, उफान । (२)
 तरल पदार्थ जो सवेग बाहर निकले । (३) घोर
 शब्द । (४) मन की पुरानी बात जो सतेज और
 एकबारगी कही जाय । (५) वमन होने की क्रिया
 और वस्तु । (६) बाढ़, अधिकता ।
 उद्गारी—संज्ञा पुं. [सं. उद्गारिण] प्रकट करनेवाला ।
 उद्गोर्ण—वि. [सं.] (१) निकला हुआ, कहा हुआ ।
 (२) उगला हुआ ।
 उद्घाट—संज्ञा पुं. [सं.] खोलने की क्रिया ।
 उद्घाटन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खोलना । (२) प्रकट
 करना, प्रकाशित करना ।
 उद्घात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धक्का, ठोकर । (२)
 आरम्भ ।
 उद्घातक—वि. [सं] (१) धक्का देनेवाला । (२) आरंभ
 करनेवाला ।
 संज्ञा पुं.—सूत्रधार की नाटकीय प्रस्तावना में
 उसकी बात का मनमाना अर्थ लगाकर नेपथ्य से कुछ
 कहना ।
 उद्घाती—वि. [सं. उद्घातिन्] (१) ठोकर या धक्का

मारने वाला । (२) जो ऊँचा-नीचा या ऊबड़-खाबड़
 हो ।
 उद्दंड—वि. [सं. उद्दंड] अवखड, निडर ।
 उद्दाम—वि. [सं.] (१) बंधन रहित । (२) उग्र, उद्दंड ।
 (३) स्वतंत्र । (४) महान ।
 संज्ञा पुं.—वरण ।
 उद्दित—वि. [सं. उदित] उज्ज्वल, स्वच्छ, प्रकाशपूर्ण,
 कांतिवान । (क) उ.—नव-मनि-मुकुट-प्रभा अति
 उद्दित, चित्त-चकित अनुमान न पावति—१८-७ ।
 (ख) तहँ अरि-पंथ-पिता जुग उद्दित वारिज बिबि
 रंग भजो अकास—सा. उ. २८ ।
 उद्दिष्ट—वि. [सं.] (१) दिखाया या संकेत किया
 हुआ । (२) लक्ष्य, अभिप्रेत ।
 उद्दीपक—वि. [सं.] उत्तेजित करनेवाला, भावों को
 उभाड़नेवाला ।
 उद्दीपन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्तेजित करना, जगाना ।
 (२) उत्तेजित करनेवाला पदार्थ या वातावरण ।
 (३) रस को उत्तेजित करनेवाला विभाव ।
 उद्देश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चाह, इच्छा । (२) कारण,
 हेतु ।
 उद्देश्य—वि. [सं.] इष्ट, लक्ष्य ।
 संज्ञा पुं.—(१) आशय, अभिप्राय, अभिप्रेत
 अर्थ । (२) वाक्य में जिसके विषय में कुछ कहा जाय,
 विशेष्य ।
 उद्दौत—संज्ञा पुं. [सं. उद्योत] प्रकाश ।
 वि.—(१) प्रकाशयुक्त, चमकीला । (२) उत्पन्न,
 उदित ।
 उद्ध—क्रि. वि. [सं. उद्ध, पा. उद्ध] ऊपर ।
 उद्धत—वि. [सं.] (१) उग्र, प्रचंड । (२) प्रकंड,
 महान ।
 उद्धना—क्रि. अ. [सं. उद्धरण] उड़ना, बिखरना,
 ऊपर उठना ।
 उद्धरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऊपर उठना । (२)
 मुक्त होना । (३) दशा अच्छी होना । (४)
 किसी पुस्तक आदि से उसका कुछ अंश नकल करना ।
 (५) उखाड़ना ।

उद्धरणी—संज्ञा स्त्री. [सं. उद्धरण+हि. ई (प्रत्य.)]
(१) पाठ का अभ्यास । (२) अभ्यास, रटना ।

उद्धरन—वि. [सं. उद्धरण, हि. उद्धार, उद्धरना]
उद्धार करनेवाले । उ.—(क) गए तरि लै नाम केते,
पतित हरि-पुर-धरन । जासु पद-रज-परस गौतम-
नारि-गति उद्धरन—१-३०८ । (ख) भक्तबल्लल
कृपा-रन असरन-सरन पतित-उद्धरन कहै वेद
गाई-८-९ । (ग) देखि देखि री नंदकुल के
उधारी । मातु पितु दुरित उद्धरन, ब्रज उद्धरन
धरनि उद्धरन सिर मुकुट धारी—१४०३ ।

उद्धरना—क्रि. स. [सं. उद्धरण] उद्धार करना ।
क्रि. अ.—मुक्त होना, छूटना ।

उद्धरि—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हि. उद्धरना] तर गयी,
मुक्त हो गयी । उ.—जे पद परसि सिला उद्धरि
गई, पांडव गृह फिरि आए—५६८ ।

उद्धरिहौ—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हि. उद्धार] उबरोगे,
मुक्त होगे, छुटकारा पाओगे । उ.—सुति पढि कै
तुम नहि उद्धरिहौ । विद्या बेचि जीविका करिहौ
—४-५ ।

उद्धरौ—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हि. उद्धरना] उद्धार
करो, उबारो । उ.—और जो मो पर किरपा करौ ।
तौ सब जीवनि कौ उद्धरौ—७-२ ।

उद्धव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्सव । (२) कृष्ण के
सखा, ऊधव ।

उद्धार—संज्ञा. पुं. [सं.] (१) मुक्ति, छुटकारा, मरण,
निस्तार, दुख-निवृत्ति । उ.—(क) अब मिथ्या तप,
जाप ज्ञान सब, प्रगट भई ठकुराई । सूरदास उद्धार
सहज गति, चिता सकल गँवाई—१-२०७ । (ख)
धन्य भाग्य, तुम दरसन पाए । मम उद्धार करन
तुम आए—१-३४१ । (ग) बाल गोप बिहाल गाई
करत कोटि पुकार । राख गिरिधर लाल सूरज नाथ
बिनु उद्धार—सा. ३० । (२) सुधार, उन्नति ।
(३) ऋण से छूटना ।

उद्धारन—संज्ञा. पुं. [सं. उद्धार] मुक्ति, छुटकारा,
निवृत्ति, निस्तार ।

उद्धारना—क्रि. स. [सं. उद्धार] मुक्त करनी,
छुटकारा देना ।

उद्धारि—क्रि. स. [सं. उद्धार, हि. उद्धारना] उद्धार
करके, मुक्त करके । उ.—संखासुर मारि कै, वेद
उद्धरि कै, आपदा चतुरमुख की निवारी—८-१७ ।

उद्धारिहौ—क्रि. स. [सं. उद्धार, हि. उद्धारना] उद्धार
या मुक्त करूँगा, छुटकारा दूँगा । उ.—कंस कौ
मारिहौ, धरनि निवारिहौ, अमर उद्धारिहौ उरग-
धरनी—५५१ ।

उद्धारे—क्रि. स. [सं. उद्धार, हि. उद्धारना] तार दिबे,
मुक्त किये । उ.—दोउ जन्म ज्यौ हरि उद्धारे । सो
तौ मै तुमसौ उच्चारे—१०-२ ।

उद्धृत—वि. [सं.] किसी पुस्तक-पत्र आदि से नकल
किया हुआ (अंश) ।

उद्बुद्ध—वि. [सं.] (१) खिला हुआ, विकसित । (२)
जगा हुआ । (३) चेतयुक्त, सजग ।

उद्बुद्धा—संज्ञा स्त्री. [सं.] उपपत्ति से स्वयं प्रेम करने
वाली परकीया नायिका ।

उद्बोधक—वि. [सं.] (१) ज्ञान करानेवाला, सचेत
करनेवाला । (२) सूचित करनेवाला । (३) उत्तेजित
करनेवाला । (४) जगानेवाला ।

उद्बोधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चिताना, ध्यान दिलाना ।
(२) उत्तेजित करना । (३) जगाना ।

उद्बोधिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] उपपत्ति की इच्छा समझ
कर प्रेम करनेवाली परकीया नायिका ।

उद्भट—वि. [सं.] (१) श्रेष्ठ, उत्तम । (२) उच्च विचार
वाला ।

उद्भव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्पत्ति, सृष्टि । (२) वृद्धि,
उन्नति, बढ़ती ।

उद्भावन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मन में विचार लाना ।
(२) उत्पन्न होना ।

उद्भावना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कल्पना । (२)
उत्पत्ति ।

उद्भास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश, आभा । (२)
मन में कोई बात जन्मना ।

उद्भासित—वि. [सं.] (१) उत्तेजित । (२) प्रकट,
प्रकाशित । (३) प्रतीति, विदित ।

उद्भ्रांत—वि. [सं.] (१) घूमता या चक्कर खाता हुआ । (२) भूला-भटका । (३) भौंचक्का ।

उद्भिज—संज्ञा पुं. [सं. उद्भिज] पृथ्वी से पैदा होने-
वाले प्राणी, वनस्पति ।

उद्भिद्—संज्ञा पुं. [सं.] भूमि से पैदा होनेवाले प्राणी,
वनस्पति ।

उद्भूत—वि. [सं.] उत्पन्न ।

उद्भेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाशन । (२) एक
काव्यालंकार जिसमें गुप्त बात लक्षित की जाय ।

उद्भेदन—संज्ञा पुं. [सं.] तोड़ना, फोड़ना, भेदना ।

उद्यत—वि. [सं.] तैयार, उतारू, प्रस्तुत । (२) ताना
हुआ ।

उद्यम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रयास, प्रयत्न, उद्योग ।

उ.—(क) अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ, केहरि
भूल मरै । अनायास बिनु उद्यम कीन्है, अजगर
उदर भरे—१-१०५ । (ख) साधन, जंत्र, मंत्र,
उद्यम, बल, ये सब डारौ खोई । जो कछु लिखि
राखी नंदनंदन, मेटि सकै नहि कोई—१-२६२ ।

(ग) मम सरूप जो सब घट जान । मगन रहै तजि

उद्यम आन—१-१३ । (२) कामधंधा, व्यापार ।

उद्यमी—वि. [सं. उद्यमिन्] परिश्रमी, उद्योगी ।

उद्यान—संज्ञा पुं. [सं.] बगीचा, उषवन ।

उद्यापन—संज्ञा पुं. [सं.] किसी व्रत के समाप्त हो
जाने पर किये जानेवाले हवन, दान आदि कार्य ।

उद्युक्त—वि. [सं.] तैयार, तत्पर ।

उद्योग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रयत्न, प्रयास । (२)
काम-धंधा ।

उद्योगी—वि. [सं. उद्योगिन्] प्रयत्न करनेवाला ।

उद्योत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश, उजाला । उ.—

(क) सूरदास प्रभु तौ जीवहि देखहि रविहि उद्योत
—३३६० । (ख) दामिनी थिर धमघटा बर कबहुँ
है एहि भाँति । कबहुँ दिन उद्योत कबहुँ होत अति
कुहुराति—सा. उ. ५ । (२) चमक, झलक ।

उद्योतन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चमकना या चमकाना, प्रकट
या व्यक्त करना ।

उद्वेक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बढ़ती, अधिकता । (२)

एक काव्यालंकार जिसमें वस्तु के कई गुणों या
दोषों का एक के आगे मन्द हो जाना वर्णित होता
है ।

उद्विग्न—वि. [सं.] घबराया हुआ ।

उद्विग्नता—संज्ञा स्त्री. [सं.] घबराहट, व्याकुलता
या व्यग्रता ।

उद्वेग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घबराहट । (२) आवेश ।

(३) झोंक । (४) रसशास्त्र में वियोग की व्याकुलता ।

उद्वेजन—संज्ञा पुं. [सं.] घबड़ाना ।

उधर—क्रि. वि. [सं. उतर] उस ओर, दूसरी ओर ।

उधड़ना—क्रि. अ. [सं. उद्धरण=उखड़ना] उखड़ना,
तितर-बितर होना । (२) फटना, अलग होना ।

उधरत—क्रि. स. [उद्धरण, हि. उधरना] उद्धार पाता
है, मुक्त होता है, छूटता है । उ.—धर्म कहैं, सर-

सयन गंग-सुत, तेतिक नाहि सँतोष । सुत सुमिरत
आतुर द्विज उधरत, नाम भयौ निर्दाप—१-२१५ ।

(ख) उधरत लोग तुम्हारे नाम—११-५ ।

उधरना—क्रि. स. [सं. उद्धरण] मुक्तहोना, छुटकारा पाना ।
क्रि. स.—मुक्त करना, छुटकारा देना ।

उधराइ—क्रि. अ. [हि. उधराना] हवा में इधर उधर
उड़कर, बिखरकर । उ.—लोक सकुच मर्यादा कुल
की छिन ही में बिसराइ । व्याकुल फिरति भवन वन
जहँ तहँ तूल आक उधराइ—पृ० ३२१ ।

उधराना—क्रि. अ. [सं. उद्धरण] (१) हवा में इधर-
उधर उड़ना, बिखरना । (२) उधम मचाना ।

उधरी—क्रि. स. स्त्री. [सं. उद्धरण, हि. उद्धार, उधरना]
उद्धार पा गयी, मुक्त हो गयी । उ.—गीध व्याध-
गज-गनिका उधरी, लै लै नाम तिहारौ—१-१७८ ।

उधरै—क्रि. अ. [सं. उद्धरण, हि. उधरना] उद्धार या
छुटकारा पावे, मुक्त हो । उ.—(क) भक्त सकामी हू
जो होइ । क्रम-क्रम करिकै उधरै सोइ—३-१३ ।

(ख) राज-लच्छमी मद नहि होइ । कुल इन्हीस लौ
उधरै सोइ । ७-२ । (ग) बिना गुन क्यौ पुहुमि
उधरै यह करत मन डौर—२६०६ ।

क्रि. स.—उद्धार या मुक्त करे, छुटकारा दिलावे ।

उं.—सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन मैं लै उधरै
—६-६ ।

उधरौ—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हिं. उद्धरना] उद्धार
करूँ, उबारूँ, रक्षा करूँ । उ.—छीर-समुद्र-मध्य तैं
यौ हरि दीरघ बचन उचारा । उधरौ धरनि, असुर-
कुल-मारौ, धरि नर-तन अवतारा—१०-४ ।

उधरगौ—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हिं. उधरना] उद्धार
या छुटकारा पाया, मुक्त हुआ । उ.—तिन मैं कहौ
एक की कथा । नारायन कहि उधरयौ जथा—
—६-३ ।

उधार—संज्ञा पुं. [सं. उद्धार] उद्धार, मुक्ति, निस्तार ।
उ.—इहि सराप सौ मुक्ति ज्यौ होइ । रिषि कृपालु
भाषौ अब सोइ । बह्यौ जुधिष्ठिर देखै जोइ । तब
उद्धार नृप तेरौ होइ—६-७ ।

संज्ञा पुं. [सं. उद्धार=विना व्याज का ऋण]
ऋण ।

उधारक—वि. [सं. उद्धारक] मुक्त करनेवाला ।

उधारन—संज्ञा पुं. [सं. उद्धार, हि. उधारना] उद्धार
करनेवाले, उद्धारक । उ.—(क) अब कहाँ लौ कहाँ
एक मुख या मन के कृत काज । सूर पतित, तुम
पतित उधारन, गहौ विरद की लाज—१-१०२ ।
(ख) काँपन लागी धरा, पाप तैं ताड़ित लखि जदुराई ।
आपुन भए उधारन जग के, मै सुधि नीके पाई
—१-२०७ ।

उधारनहारे—संज्ञा पुं. [हि. उधारन+हारे] उद्धारक,
उद्धार करनेवाले । उ.—अब मोसौँ अलसात जात
हौ अधम-उधारनहारे—१-२५ ।

उधारना—क्रि. स. [सं. उद्धरण] मुक्त करना, उद्धार
करना ।

उधारा—रज्ञा पुं. [सं. उद्धार] उद्धार, मुक्ति, छुटकारा ।
उ.—सूरदास सब तजि हरि भजिये जब कब करै
उधारा—१०उ.-३६ ।

उधारि—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हिं. उधारना] उद्धारो,
मुक्त करो, पार लगाओ । उ.—अब कै नाथ, मोहि
उधारि । मगन हौ भव-अंशुनिधि मै, कृपासिंधु
मुरारि—१-६६ ।

उधारी—वि. [सं. उद्धारिण] उद्धार करनेवाला, उद्धारक ।

उ.—देखि देखि री नंदकुल के उधारी । मातु पितु
दुरित उद्धरन ब्रज उद्धरन धरनि उद्धरन सिर मुकुट-
धारी—१४०३ ।

उधारे—क्रि. स. बहु. [सं. उद्धरण, हि. उद्धार] तार
दिये, मुक्त किये, (उनका) उद्धार किया । उ.—क)
गज, गनिका अरु विप्र अजामिल, अगनित अधम
उधारे—१-१२५ । (ख) अवगाहौ पूरन गुन स्वामी,
सूर से अधम उधारे—१-१६७ ।

उधारै—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हि. उधारना] उद्धार या
मुक्त करे । उ.—जो-जो मुख हरि-नाम उचारै ।
हरि-गन तिहि तिहि तुरत उधारै—६-४ ।

उधारै—क्रि. स. [सं. उद्धार, हि. उद्धारना] उद्धार करे,
मुक्त करे, छुटकारा दिलावे । उ.—तुम बिनु करुना-
सिंधु और को पृथी उधारै—३-११ ।

उधारौ—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हि. उधारना] उद्धार
करूँ, मुक्त करूँ । उ.—नारद-साप भए जमलार्जुन,
तिनकौँ अब जु उधारौ—१०-३४२ ।

उधारौ—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हि. उधारना] उद्धार
करो, मुक्त करो । उ.—(क) संतत दीन, महा अपराधी,
काहँ सूरज कूर बिसारौ ? सोकहि नाम रख्यौ प्रभु
तेरौ, बनमाली, भगवान, उधारौ—१-१७२ । (ख)
प्रभु मेरे मोसौ पतित उधारौ—१-१७८ । (ग) नाथ
सकौ तौ मोहि उधारौ—१-१३१ ।

उधारयौ—क्रि. स. [हि. उधारना] उद्धारा, मुक्त किया,
रक्षा की । उ.—(क) संकट तैं प्रह्लाद उधारयौ,
हरिनाकसिपु-उदर नख फारी—१-२२ । (ख) धरनी-
धर विधि वेद उधारयौ मधु सौँ सत्रु हयौ—२२६४ ।

उधेड़ना—क्रि. स. [सं. उद्धरण=उखाड़ना] (१) अलग
करना, उखाड़ना । (२) सिलाई खोलना । (३)
बिखराना ।

उधेड़बुन—संज्ञा पुं. [हिं. उधेड़ना + बुनना] (१) सोच-
विचार, ऊहापोह । (२) युक्ति सोचना ।

उनंत—वि. [सं. उन्नयन] भुका हुआ ।

उन—सर्व. [हि. 'उस' का बहु.] उन्होंने । उ.—उम

तौ करी पाछिले की गति, गुन तोरथौ बिच धार—
१-१७५ ।

उनइ—क्रि. अ. [हि. उनवना] छा जाना, घिरकर,
उमडकर । उ.—आजु घन स्याम की अनुहारि ।
उनइ आए सोंवरे ते सजनी देखि रूप की आरि—
२८२६ ।

उनई—क्रि. अ. [हि. उनवना] घिरी, छा गयी, उमडी ।
उ.—माया देखत ही जु गई । " । सुत-सतान-
स्वजन-बनिता-रति, घन समान उनई । राखे सूर
पवन पाखंड हति, करी जो प्रीति नई—१-५० ।

उनईस—वि. [हि. उन्नीस] बीस से एक कम । उ.—
जपत अठारहो भेद उनईस नहि बीसहू बिसो ते
सुखहि पैहै—१२७८ ।

उनचास—वि. [स. एकोनपंचाशत; पा. एकोनपंचास,
उनपंचास] पचास से एक कम ।

उनतीस—वि. [स. एकोनत्रिशत, पा. एकुंतीसा,
उन्तीसा] तीस से एक कम ।

उनतै—सर्व. [हि. 'उड' का बहु. 'उन' + तै (प्रत्य.)]
उनसे ।

उनदा—वि. [सं. उन्निद्र] नींद से भरा, उनींदा ।

उनदौहाँ—वि. [सं. उन्निद्र, हि. उनींदा] नींद से
ऊँघता हुआ ।

उनमत—वि. [सं. उन्मत्त] उन्मत्त, मतवाला । उ—
(क) निद्रा-बस जो कबहूँ सोवै । मिलि सो अविद्या
सुधि-बुधि खोवै । उनमत ज्यो सुख-दुख नहि
जानै । जागै वहै रीति पुनि ठानै—४-१२ । (ख)
बहुरौ भरतहि दै करि राज । रिषम ममत्व देह कौ
त्याग । उनमत की ज्यौ विचरन लागे । असन-
बसन की सुरतिहि त्यागे—५-२ ।

उनमत्त—वि. [सं. उन्मत्त] मतवाला, मदांध । उ.—
माधौ जू, मन सबही बिधि पोंच । अति उनमत्त,
निरंकुश, मैगल, चितारहित, असोच—१-१०२ ।

उनमद—वि. [सं. उद्+मद] उन्मत्त, मतवाला ।

उनमना—वि. [हि. अनमना] उदास, खिन्न, उचाट
चित्त का ।

उनमाथना—क्रि. स. [सं. उन्मथन] मथना ।

उनमाथी—वि. [हि. उनमाथना] मथनेवाला,
बिलोनेवाला ।

उनमाद—संज्ञा पुं. [सं. उन्माद] मतवालापन, पागल-
पन । उ.—भानुतन किसान ग्रह के रच्छातक
आप । मद्ध ठाढो होत नंदनंदन कर उनमाद—
सा. ११६ ।

उनमान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनुमान, ध्यान, समझ ।
उ.—(४) कहिबे मै न कछू सक राखी । बुधि
बिबेक उनमान आपने मुख आई सो भाखी
—३४६६ । (ख) सुनि खवन उनमान करति हौ
निगम नेति यह लखनि लखी री—२११३ ।
(२) अटकल ।

संज्ञा पुं. [सं. उद्+मान] (१) नाप, थाह,
परिणाम । उ.—आगम निगम नेति करि गायौ,
सिख उनमान न पायौ । सूरदास बाजक रसलीला
यह अभिलाष बढ़ायौ । (२) शक्ति, सामर्थ्य,
योग्यता ।

वि.—तुल्य, समान । उ.—(क) तुव नासापुट
गात मुक्तफल अधर बिब उनमान । गंजाफल
सबके सिर धारत प्रकटी मीन प्रमान । (ख) उरग-
इंदु उनमान सुभग भुज पानि पदुम आयुध
राजै—१-६६ ।

उनमानना—क्रि. स. [हि. उनमान] अनुमान करना,
सोचना, समझना ।

उनमीलत—वि.—[सं. उन्मीलित] स्पष्ट, प्रकट, खुला
हुआ । उ.—बाँसुरी तें जान मोहो परो ना सुत
सोइ । सूर उनमीलत निहारो कहैं का मति भोइ—
सा. ७७ ।

संज्ञा पुं.—एक काव्यालंकार जिसमें दो वस्तुओं
की बहुत अधिक समानता हो, पर केवल थोड़ी बात
का ही उनमें भेद दिखायी दे ।

उनमुना—वि. [सं. अन्यमनस्क, हि. अनमना] मौन
चुप ।

उनमुनी—संज्ञा स्त्री. [सं. उन्मनी] हठयोग की एक

मुद्रा जिसमें भौं को ऊपर चढ़ाते और दृष्टि को नाक की नोक पर गड़ाते हैं ।

उन्मूलना—क्रि. स. [सं. उन्मूलन] उखाड़ना ।

उन्मेखना—क्रि. स. [सं. उन्मेख] (१) आँख-खुलना ।
(२) खिलना, फूलना ।

उन्मेद—संज्ञा पुं. [सं. उद्+मेद=चरबी] पहली वर्षा के पश्चात् जल में उत्पन्न जहरीला फेन जिससे मछलियाँ मर जाती हैं, माँजा । उ.—इंद्री-स्वाद विवस निसि बासर आपु अपुनपौ हारयौ । जल उन्मेद मीन ज्यौ बपुरो पाँव कुल्हारो मारयौ ।

उनय—क्रि. अ. [हि. उनवना] झुकती है, लटक रही है ।

उनयो—क्रि. अ. [हि. उनवना] छाये, घिर आये । उ—
(क) आजु सखी अरुनोदय मेरे नैनन धोख भयौ ।
की हरि आजु पंथ यहि गौने कीधौ स्याम जलद उनयो—१६२८ । (ख) नेक मोहि मुसुकात जानि मनमोहन मन सुख आन्यौ । मानो दव द्रुम जरत आस भयो उनयो अंबर पान्यो—२२७५ ।

उनरत—क्रि. अ. [हिं. उनरना] उठता है, उभड़ता है ।

उनरना—क्रि. अ. [सं. उन्नरण] उठना, उभड़ना ।

उनरी—क्रि. अ. [हि. उनरना] उमड़ी, उमड़-उमड़ कर आयी ।

उनरोगी—क्रि. अ. [हि. उनरना] उठेगी, उमड़ेगी, झुकोगी, प्रवृत्त होगी ।

उनवत—क्रि. अ. [हि. उनवना] घिरकर, चारों ओर छा जाती है ।

उनवना—क्रि. अ. [सं. उन्नमन] (१) झुकना, लटकना ।
(२) छा जाना, घिर आना । (३) ऊपर गिरना, दूट पड़ना ।

उनवर—वि. [सं. ऊन = कम] कम, तुच्छ ।

उनवा—क्रि. अ. [हि. उनवना] दूट पड़ा, ऊपर आ पड़ा ।

उनवान—संज्ञा पुं. [सं. अनुमान] सोच, ध्यान, समझ ।

उत्सठ—वि. [सं. एकोनषष्टि, प्रा. एकुन्नसठि, उनसठि] पचास और नौ ।

उनहार—वि. [सं. अनुसार प्रा. अनुहार] समान, तुल्य, सदृश । उ.—नैनन निपट कठिन ब्रत ठानी । १०० ।
समुझि समुझि उनहार स्याम को अति सुन्दर बर सारंगपानी । सूरदास ए मोहि रहे अति हरि मूरति मन मोंझ समानी—३०३७ ।

उनहारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. उनहार] समानता, एकरूपता ।

वि.—समान, सदृश । उ. तामै एक छबीलो सारंग अध सारंग उनहारि—सा. उ. २ ।

उनहीं—सर्व. ['उस' का बहु.] उन्हीं ।

उनाना—क्रि. स. [सं. उन्नमन] (१) झुकाना । (२) प्रेरित या प्रवृत्त करना । (३) सुनना, ध्यान देना (४) आज्ञा मानकर काम करना ।

उनि—सर्व. [हि. उन] उन्होंने । उ.—कह्यौ, सरमिष्ठा सुत कहँ पाए ? उनि कह्यौ, रिषि किरपा तैं जाए—९१७४ ।

उनिहारि—संज्ञा स्त्री. [सं. अनुसार, प्रा. अनुहारि] समानता, एकरूपता ।

उनिहारी—वि. [सं. अनुसार, प्रा. अनुहार, हि. उनहार] सदृश, समान । उ.—तब चितामनि चितै चित्त इक बुधि बिचारी । बालक बच्छ बनाइ रचे वेही उनिहारी—४९२ ।

उनिहारे—संज्ञा स्त्री. [सं. अनुसार, प्रा. अनुहारि, हि. उनहार] समानता, एकरूपता ।

उनींदा—वि. [सं. उन्निद्र] नींद से भरा हुआ, ऊँघता हुआ ।

उनींदे—वि. बहु. [हि. उनींदा] नींद से भरे हुए, ऊँघते हुए । उ.—(क) बछरा-बृद घेरि आगै करि जन-जन सुंग बजाए । जनु बन कमल सरोवर तजिकै, मधुप उनींदे आए—४३२ । (ख) स्याम उनींदे जानि, मातु रचि तेज बिछाई । तापर पौढ़े लाल अतिहि मन हरष बढ़ाई—४३७ ।

उनै—सर्व. सवि. [हि. उन] उनसे, उनको ।

क्रि. अ. [सं. उन्नमन, हि. उनवना] उमड़ उमड़ कर, घिरकर, चारों ओर छाकर । उ.—उनै घन बरपत चव उर सरित सलिल भरी—१८१४ ।

उन्नत—वि. [सं.] (१) ऊँचा, ऊपर उठा हुआ। उ.—(क) गोविंद कोपि चक्र कर लीन्हों । । कछुक अंग तैं उड़त पीतपट, उन्नत बाहु विसाल—१-२७३। (ख) आवहु बेगि सकल दुहुँ दिसि तैं कत डोलत अकुलाने। सुनि मृदु बचन देखि उन्नत कर, हरषि सबै समुहाने—५०३। (२) बढ़ा हुआ। (३) श्रेष्ठ, बढ़ा।

क्रि. वि.—ऊपर की ओर। उ.—हुतासन ध्वज उमँगि उन्नत चलेउ हरि दिसि वाउ—२७१५।
उन्नति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ऊँचाई, चढ़ाव। (२) वृद्धि, बढ़ती।

उन्नाय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऊपर ले जाना, उठाना। (२) सोच-विचार।

उन्नायक—वि. [सं.] (१) ऊपर उठानेवाला। (२) बढ़ाने वाला।

उन्निद्र—वि. [सं.] (१) निद्रा रहित। (२) जिसे निद्रा न आयी हो। (३) खिला हुआ, फूला हुआ।

उन्नैना—क्रि. अ. [सं. उन्नयन] झुकना।

उन्मत्त—वि. [सं.] (१) मतवाला, मदांध। उ.—ते दिन बिसरि गए इहाँ आए। अति उन्मत्त मोह-मद छाक्यौ, फिरत केस बगराए—१-१२०। (२) जो आपे में न हो, बेसुध। (३) पागल, बावला, मतवाला।

उन्मत्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मतवालापन।

उन्मनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] हठयोग की एक मुद्रा जिसमें दृष्टि को नाक की नोक पर गढ़ाते और भौंह को ऊपर चढ़ाते हैं।

उन्माद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पागलपन। (२) एक संचारी भाव जिसमें वियोग, दुख आदि के कारण चित्त ठिकाने नहीं रहता।

उन्मादक—वि. [सं.] (१) पागल बनानेवाला। (२) नशा करनेवाला।

उन्मादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मतवाला करने की क्रिया। (२) कामदेव का एक वाण।

उन्मादी—वि. [सं. उन्मादिन्] उन्मत्त, पागल।

उन्मार्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुमार्ग। (२) बुरा आचरण।
उन्मार्गी—वि. [सं. उन्मार्गिन्] बुरे आचरणवाला, कुमार्गी।

उन्मीलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नेत्र का खुलना। (२) खिलना, विकसित होना।

उन्मीलना—क्रि. स. [सं. उन्मीलन] खोलना।

उन्मीलित—वि. [सं.] खुला हुआ।

संज्ञा पुं.—एक काव्यालंकार जिसमें दो वस्तुओं की बहुत अधिक समानता वर्णित हो और अंतर केवल एक छोटी बात का रह जाय।

उन्मुख—वि. [सं.] (१) ऊपर मुँह करके ताकना हुआ। (२) उत्सुक। (३) तैयार, प्रस्तुत।

उन्मूलक—वि. [सं.] जड़ से नाश करनेवाला।

उन्मूलन—संज्ञा पुं. [सं.] जड़ से नाश करना।

उन्मेष—संज्ञा पुं. [उन्मेष] (१) आँख का खुलना। (२) फूल खिलना। (३) प्रकाश।

उन्मेष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आँख का खुलना। (२) खिलना। (३) थोड़ा प्रकाश।

उन्हानि—संज्ञा स्त्री. [हिं. उन्हारि] समता, बराबरी।

उपंग—संज्ञा पुं. [सं. उपाग] (१) एक बाजा, नस तरंग। उ.—(क) उघटत श्याम नृत्यत नारि। धरे अधर उपंग उपजै लेत हैं गिरिधारे—पृ. ३४६ (४५)। (ख) बीन मुरज उपंग मुरली भाँझ भालरि ताल। पढ़त होरी बोलि गारी निरखि कै ब्रजला त—२४१५। (ग) डिमडिमी पतह ढोल डफ बीणा मृदंग उपंग चंग तार। गावत है प्रीति सहित श्री दामा बाढ़्यौ है रंग अपार—२४४६ (१) ऊधव के पिता एक यादव।

उपँगसुत } संज्ञा पुं. [सं.] उपंग का पुत्र, ऊधव जो
उपँगसुत } श्री कृष्ण का सखा था। उ.—(क) हि गोकुल की प्रीति चलाई। सुनहु उपँगसुत मोहि न बिसरत ब्रजनिवास सुखदाई। (ख) कहत हरि सुन उपँगसुत यह कहत हौं रसरीति—१६१६।

उपंत—वि. [सं. उत्पन्न, प्रा. उपन्न] उत्पन्न, पैदा, जन्मा।

उप—[सं.] समीपता, सामर्थ्य, न्यूनता आदि अर्थों का द्योतक एक उपसर्ग।

उपकरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधन, सामग्री । (२)

छत्र चँवर आदि राजचिह्न ।

उपकरण—संज्ञा पुं. [सं. उपकरण] सामग्री, सामान ।

उपकरना—क्रि. स. [सं. उपकार] भल ई करना ।

उपकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भल ई । (२) लाभ ।

उपकारिनि—संज्ञा स्त्री. [सं. उपकारिणी] उपकार करनेवाली । उ.—तोसी नही और उपकारिनि यह बसुधा सब बुधि करि हेरी—२७५२ ।

उपकारी—वि. [सं. उपकारिन्] (१) भलाई करनेवाला । (२) लाभ पहुँचाने वाला ।

उपकूल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किनारा, तट । (२) किनारे या तट की भूमि ।

उपक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कार्यारंभ । (२) भूमिका । (३) तैयारी ।

उपक्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आरंभ, उठान । (२) तैयारी । (३) भूमिका ।

उपक्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] भलाई ।

उपखान—संज्ञा पुं. [सं. उपाख्यान] पुरानी कथा, पुराना वृत्तांत । उ.—मोसा बात सुनहु ब्रजनारि । एक उपखान चलत त्रिभुवन मे तुमसा आजु उधारि—१०६९ ।

उपगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्राप्ति । (२) ज्ञान ।

उपचय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वृद्धि, उन्नति । (२) संचय ।

उपचर्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सेवा, पूजा । (२) चिकित्सा ।

उपचरना—संज्ञा पुं. [सं. उपचरण] (१) पास जाना । (२) सेवा या पूजा करना ।

उपचार—संज्ञा पुं. [सं.] चिकित्सा, दवा, इलाज । उ.—(क) जा कारन तुम यह बन सेयौ, सो तिय मदन-भुअगम खाई । . . . ताहि कछू उपचार न लागत, कर मीडैं सहचरि पछिनाई—७६८ । (ख) दिसिअति कलिदो अति कारी । अहो पथिक कहियो उन हरि सो भई बिरह-उर जारी । . . . तट बारू उपचार चूर जल पशीप्रसेद पनारी—२७२८ । (ग) आपुन को उपचार करौ कछु तब औरन सिख

देहु । बड़ो रोग उपज्यौ है तुमको मौन सवारे लेहु—

३०१३ । (घ) आगम सुख उपचार बिरह ज्वर

बासर ताप नसावते—२७३५ । (२) सेवा । (३)

व्यवहार, प्रयोग । (४) पूजा के सोलह अंग—

आवाहन, आसन, अर्घपाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान,

वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गंध (चंदन), पुष्प, धूप,

दीप, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा, दंडना । (५)

खुशामद । (६) घूस ।

उपचारना—क्रि. स. [सं. उपचार] (१) काम में लाना । (२) विधान करना ।

उपचारे—क्रि. स. [हि. उपचारना] (१) चिकित्सा करे, इलाज करे । उ.—बिरही कहाँ लौ आपु

सँभारे । । सूँदास जाके सब अँग बिछरे

केहि विद्या उपचारे—३१८९ । (२) विधान करे ।

उ.—घर घर ते आई ब्रज सुन्दरि मंगत काज

सँवारे । हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मत्र

उपचारे । (३) काम में लाये, व्यवहार करे ।

उपचित—वि. [सं.] (१) बढा हुआ । (२) संचित ।

उपज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्पत्ति, पैदावार । (२) नयी

उक्ति, सूक्त । (३) मनगढ़ंत । (४) गान में राग की

निश्चित तानों के अतिरिक्त नयी ताने अपनी ओर से

मिलाना । उ.—उर बनमाला सा है सुन्दर बर गोपिन

के संग गावै । लेत उपज न गर-नागरि संग बिच

बिच तान सुनावै—पृ. ३५१-(७०) ।

उपजत—क्रि. अ. [हि. उपजना] उत्पन्न होता है, पैदा

होता है, मिलता है । उ.—मोहन के मुख ऊपर

वारी । देखत नैन सबै सुख उपजत, बार बार ताँतै

बलिहारी—१-३० ।

उपजति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उपजना] पैदा होती है,

उत्पन्न होती है । उ.—चितवत चलत अधिक रुचि

उपजति, भँवर परति सब अंग—६२८ ।

उपजना—क्रि. अ. [सं. उपज] उगना, पैदा होना ।

उपजाइ—क्रि. अ. [हि. उपजाना] (१) उत्पन्न करता

है, पैदा करके । उ.—यह बर दै हरि कियो उपाइ ।

नारद-मन संसय उपजाइ—१-२२६ । (२) ध्यान में

लगाकर । उ.—रौ जतन, न भंजौ तुमको, कछुक

मन उपजाइ । सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ—१-४५ ।

उपजाई—क्रि. स. स्त्री. [हि. 'उपजना' का स. रूप, 'उपजाना'] उत्पन्न की, पैदा की । उ.—अजहुँ लौं मन मगन काम सौं, बिरति नाहि उपजाई—१-१८७ ।

उपजाऊँ—क्रि. स. [हि. उपजाना] उत्पन्न या पैदा करूँ । उ.—संकट परे जो सरन पुकारौं, तौ छत्री न कहाऊँ । जन्महि तैं तामस आराधौ, कैसैं हित उपजाऊँ—१-१९२ ।

उपजाऊ—वि. [हि. उपज+आऊ (प्रत्य.)] जिसमें अच्छी उपज हो, उर्वरा ।

उपजाए—क्रि. स. [हि. उपजाना ('उपजना' का स. रूप)] (१) उत्पन्न किये, पैदा किये । उ.—गो सुत अरु नर-नारि मिले अति हेत लाइ गई । प्रेम सहित वे मिलत हैं जे उपजाए आहु—४३७ । (२) प्रदान किया, दिया । उ.—गिरि कर धारि इंद्र-मद मद्यौ, दासनि सुख उपजाए—१-२७ ।

उपजाना—क्रि. स. [हि. 'उपजना' का सक.] उत्पन्न करना ।

उपजाया—क्रि. स. भूत. [हि. उपजाना] उत्पन्न किया, रचा । उ.—पंचतत्त्व तैं जग उपजाया—१०-३ ।

उपजायौ—क्रि. स. भूत. [हि. 'उपजना' का स. रूप 'उपजाना'] उत्पन्न किया, पैदा किया । उ.—नर-तन, सिंह-बदन, बपु कीन्हौ, जन लागि भेष बनायौ । निज जन दुखी जानि भय तैं अति, रिपु हति, सुख उपजायौ—१-१६० ।

उपजावत—क्रि. स. [हि. 'उपजना' का स. रूप 'उपजाना'] उत्पन्न करता है, पैदा करता है, स्थिति-विशेष उपस्थित करता है । उ.—(क) मन्त्री काम-क्रोध निज, दोऊ अपनी-अपनी रीति । दुविधा-दुंद रहै निसि-बासर, उपजावत बिपरीति—१-१४१ । (ख) नैदन्नैदन विनु कपट कथा एकत कहि रुचि उपजावत—२६८६ ।

उपजावहु—क्रि. स. [हि. उपजाना] उत्पन्न करो, पैदा करो । उ.—तारी देहु आपने कर की परम प्रीति उपजावहु—१०-१७९ ।

उपजावै—क्रि. स. [हि. उपजना का स. रूप उपजाना] उत्पन्न करता है । उ.—(क) परम स्वाद सबही सु निरन्तर अभित तोष उपजावै—१-२ । (ख) पुरुष वीर्य सौं तिय उपजावै—३-१३ । (ग) मन मे रुचि उपजावै, भावै, त्रिभुवन के उजियारे—४१९ ।

उपजि—क्रि. अ. [सं. उपज, हि. उपजना] उत्पन्न होकर, पैदा होकर । उ.—उपजि परधौ, सिसु कर्म-पुन्य-फल, समुद-सीप जौ लाल—१०-१३८ ।

मुहा—उपजि परी—सामने आयी, ज्ञात हुई, जान पड़ी । उ.—तनु आत्मा समर्पित तुम कहँ पाछे उपजि परी यह बात—१० उ.—११ ।

उपजीं—क्रि. अ. बहु. [हि. उपजना] जन्मीं, पैदा हुई । उ.—दच्छ के उपजी पुत्री सात—४-३ ।

उपजी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उपजना] उत्पन्न हुई, पैदा हुई । (क) भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया मैं दीनों—१-६५ । उ.—(ख) काढ़ि काढ़ि थाक्यौ दुस्सासन, हाथनि उपजी खाज—१-२५५ । (ग) विषय-विकार दवानल उपजी, मोह-ब्यारि लई—१-२९६ । (घ) सूरदास मोहन सुख निरखत उपजी सकल तन काम गुँभी—१४४६ ।

उपजे—क्रि. अ. बहु. [हि. उपजना] (१) उत्पन्न हुए, जन्मे, पैदा हुए । उ.—दस सुत मनु के उपजे और । भयौ इच्छवाकु सबनि सिरमौर—१-२ । (२) उपजने पर, उत्पन्न होने पर । उ.—समुक्ति न परत तुम्हारी ऊधो । ज्यौ त्रिदोष उपजे जक लागत बोनत बचन न सूधो—३०१३ ।

उपजै—संज्ञा पुं. [सं. उपज] गाने में राग की निश्चित तानों के अतिरिक्त नयी ताने मिलाना । उ.—धरि अधार उमंग उपजै लेत हैं गिरिधारि—पृ. ३४६ (४५) ।

उपजै—क्रि. अ. [हि. उपजना] उपजता है, उत्पन्न होता है । उ.—(क) जाकौ नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२६ । (ख) प्रेम-कथा अनुदिन सुनै (रे) तऊन उपजै ज्ञान—१-३२५ । (ग) ज्ञानी-संगति उपजै ज्ञान—३-१३ ।

उपजैहै—क्रि. स. [हि. उपजाना] उत्पन्न करेगा ।

उ.—बान सखी सुत है पुत्री के मदन बहुत उपजैहै
—सा. ८१ ।

उपजौ—क्रि. अ. [हि. उपजना] उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ । उ.—अब मेरी राखी लाज सुगरी । संकट मैं
इक संकट उपजौ, कहै मिरग सौ नारी—१-२२१ ।

उपज्यौ—क्रि. अ. [हि. उपजना] उत्पन्न किया हुआ ।
जन्मा, पैदा हुआ । उ.—(क) गनिका उपज्यौ पूत
सो कौन कौ वहावै २-६ । (ख) बड़ो रोग उपज्यौ
है तुमको मौन सवारे लेहु—३०१३ ।

उपटना—क्रि. अ. [सं. उत्पट=पट के ऊपर अथवा
उत्पतन+ऊपर उठना] (१) चिन्ह बनना, निशान
पडना । (२) उखडना ।

उपटाना—क्रि. अ. [हि. 'उपटना' का प्रे०] उबटन
लगवाना ।

क्रि. स. [सं. उत्पाटन] उखाडना ।

उपटाय—क्रि. स. [हि. उपटाना] उखाडकर, तोडकर ।
उ.—द्विरद कौ दंत उपटाय (उपठाय) तुम लेत हौ
उहै बल आज काहे न सँभारथौ—२६०२ ।

उपटारना—क्रि. स. [सं. उत्पटन] उठाना, हटाना ।

उपटारि—क्रि. स. [हि. उपटारना] उठाकर, हटाकर ।
उ.—कोकिल हरि को बोल सुनाव । मधुवन तैं उपटारि
(उपठारि) स्याम को यहि ब्रज लै करि आव
—२८५१ ।

उपठाय—क्रि. स. [सं. उत्पाटन, हि. उपटाना] उखाड
कर । उ. द्विरद को दंत उपठाय (उपटाय) तुम
लेत हौ उहै बल आज काहे न सँभारथौ—२६०२ ।

उपठारि—क्रि. स. [सं. उत्पटन, हि. उपटारना]
उठाकर, हटाकर । उ.—कोकिल हरि को बोल
सुनाव । मधुवन से उपठारि (उपटारि) स्याम को
यहि ब्रज लै करि आव—२८५१ ।

उपदंस—संज्ञा पुं. [सं. उपदंश] मद्य की ऊपरी वस्तु,
चाट । उ.—राधिका हरि अतिथि तुम्हारे । अधर
सुधा उपदंस सीक सुचि बिधु पूरन मुख बास
सँचारे ।

उपदेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हित की बात, शिक्षा ।
(२) दीक्षा, गुरुमंत्र ।

उपदेशना—क्रि. स. [सं. उपदेश] (१) शिक्षा देना । (२)
दीक्षा देना ।

उपदेस—संज्ञा पुं. [सं. उपदेश] शिक्षा । उ.—सतगुरु
हृदय धरि, जिन अम सकल निवारथौ—१-३३६ ।

उपदेसत—क्रि. स. [सं. उपदेश, हि. उपदेशना] सिखाते
हैं, शिक्षा देते हैं । उ.—(क) गोविन्द-भजन करौ
इहि बार । संकर पारवती उपदेसत, तारक मंत्र लिख्यौ
सुति-द्वार—२-३ । (ख) जद्यपि अलि उपदेसत
ऊँधो पूरन ज्ञान बखानि । चित चुभि रही मदन
मोहन की जीवन मृदु मुसुकानि—३२१४ ।

उपदेसना—क्रि. स. [सं. उपदेश+ना (प्रत्य.)] शिक्षा
देना ।

उपदेसैं—संज्ञा पुं. [हि. उपदेशना] उपदेश देने पर,
उपदेशों से । उ.—जैसे अंधौ अंध कूप मैं गनत न
खाल-पनार । तैसेहि सूर बहुत उपदेसैं सुनि सुनि मे
कै बार—१-८४ ।

उपदेसौं—क्रि. अ. [सं. उपदेश, हि. उपदेशना] उपदेश
या शिक्षा दूँ, समझाऊँ । उ.—अब मैं याकौ दृढ़
देखौ । लखि बिस्वास, बहुरि उपदेसौ—४-६ ।

उपदेस्यौ—क्रि. स. [हि. उपदेशना] शिक्षा दी,
सिखलाया । उ.—तुम हमको उपदेस्यौ धर्म । ताको
कछू न पायौ मर्म—१८१२ ।

उपद्रव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उद्यम, गडबड़ । उ.—
इहाँ सिव-गननि उपद्रव कियौ—४-५ । (२) उत्पात,
हलचल, विप्लव ।

उपधरना—क्रि. अ. [सं. उपधरण=अपनी ओर
आकर्षित करना] अपनाना, शरण में लेना ।

उपधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सहारे की चीज । (२)
तकिया, गेडुआ । (३) प्रेम ।

उपनंद—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रजाधिप नंद के छोटे भाई ।

उपनना—क्रि. अ. [हि. उपजना] पैदा होना ।

उपनय—संज्ञा पुं. [सं.] पास ले जाना ।

उपनयन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पास ले जाना । (२)
यज्ञोपवीत संस्कार ।

उपना—क्रि. अ. [सं. उत्पन्न] पैदा होना ।

उपनियाँ—क्रि. अ. [हि. उपनना] पैदा हुई, उपजी,
उपन्न हुई, जन्मी । उ.—कुटिल भृकुटि, सुख की

निधि आनन, कल कपोल की छवि न उपनियौ
—१०-१०६।

उपनिषद्—संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मण ग्रंथों का वे अंतिम भाग जिनमें आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध निरूपण मिलता है। इनकी संख्या के सम्बन्ध में मतभेद है। कोई इन्हें १८ मानता है तो कोई १०८।

उपपत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मेल मिलाना, चरितार्थ होना। (२) युक्ति।

उपप्लव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्पात, हलचल। (२) विघ्न, बाधा।

उपवन—संज्ञा पुं. [सं. उपवन] (१) बाग, बगीचा। (२) छोटे-मोटे जंगल।

उपभोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वस्तु के व्यवहार का आनन्द। (२) सुख या विलास की वस्तु।

उपमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सादृश्य, समानता, तुलना, मिलान। उ.—(क) सूरदास-प्रभु भक्त-बछल हैं, उपमा कौ न धियौ—१-३८। (ख) परम सुसील सुरचछन जोरी, विधि की रची न होइ। काकी तिनकौ उपमा दीजै, देह धरें धौ कोइ—९-४५। (ग) अजिर पद-प्रतिविम्ब राजत चलत उपमा-पुंज। प्रति चरन मनु हेम बसुधा, देति आसन कंज—१०-२१८। (२) एक अलंकार जिसमें दो भिन्न वस्तुओं में समान धर्म बताया जाय।

उपमाइ—संज्ञा स्त्री. [सं.] उपमा, सादृश्य, तुलना, पटतर। उ.—सुक्लमाल विसाल उर पर, कछु कहौ उपमाइ। मनौ तारा-गननि बेधित गमन निसि रह्यौ छाइ—१०-२३४।

उपमान—संज्ञा पुं. [सं.] वह वस्तु जिस से उपमा दी जाय। उ.—प्रथम डार उपमान कहा मुख बैठी मंत्र सु डारो—सा. २०।

उपमेय—संज्ञा पुं. [सं.] वह वस्तु जिसकी उपमा दी जाय। उ.—(क) तीन दम कर एक दोऊ आप ही में (दौर) पंच को उपमान लीनो दाव आपुन तौर—सा. १०१। (ख) भामिन आजु भवन में बैठी। मानिक निपुन बनाय नीकन में धनु उपमेय उमेठी—सा. ११२

उपयुक्त—वि. [सं.] ठीक, उचित।

उपयोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रयोग, व्यवहार। (२) योग्यता। (३) आवश्यकता।

उपर—क्रि. वि. [सं. उपरि हि. ऊपर] पर, ऊपर। उ.—(क) नैन कमल-दल विसाल, प्रीति-वापिका मराल, मदन ललित बदन उपर कोटि वारि डारे—१०-२०५। (ख) सूर प्रभु नाम सुनि मदन तन बल भयो अंग प्रति छवि उपर रमा दासी—१८९४।

उपरना—संज्ञा पुं. [हि. ऊपर+ना. प्रत्य.] ओढ़ना, दुपट्टा, चद्दर। उ.—(क) पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहे (हो)—१-४४। (ख) लियो उपरना छीनि दूरि डारनि अटकायो—११२४।

क्रि. स. [सं. उत्पन्न] उखडना।

उपरफट—वि. [सं. उपरि+स्फुट] ऊपरी, इधर-उधर का, व्यर्थ का, निष्प्रयोजन। उ.—बाहँ तुम्हारी नैकु न छाँड़ौ, महर खीझिहैं हमकौ। मेरी बाहँ छाँड़ि दै राधा, करत उपरफट बातै। सूर स्याम नागर नागरि सौ करत प्रेम की घातै—६८१।

उपरफट्ट—वि. [सं. उपरि + स्फुट] (१) ऊपर का, अलग का। (२) व्यर्थ का, निष्प्रयोजन।

उपरांत—क्रि. वि. [सं.] अनंतर, बाद।

उपराग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रंग। (२) वासना, विलास की इच्छा। (३) चन्द्र या सूर्य-ग्रहण। उ.—बिनु परवहि उपराग आजु हरि तुम है चलन कह्यौ। को जानै उहि राहु रमापति कत है सोध लह्यौ—२५२७।

उपरागा—संज्ञा पुं. [सं. उपराग] चन्द्र या सूर्य-ग्रहण।

उपराज—संज्ञा स्त्री. [हि. उपज] पैदावार।

उपराजना—क्रि. स. [सं. उपार्जन] (१) पैदा करना, उपजाना। (२) बनाना, रचना। (३) उपार्जन करना।

उपराजा—क्रि. स. [हि. उपराजना] रचा, बनाया।

उपराजी—क्रि. स. [हि. उपराजना] पैदा की, उत्पन्न की। उ.—बाँधो सुरति सुहाग सबन को हरि मिलि प्रीति उपराजी—३०६४।

उपराजै—क्रि. स. [हि. उपराजना] (१) उत्पन्न करे। (२) उपार्जन करे।

उपराणा—क्रि. अ. [सं. उपरि] (१) प्रकट होना । (२) उत्तराना ।

क्रि. स.—उठाना, ऊपर करना ।

उपराम—संज्ञा पुं. [सं.] () त्याग, विरक्ति । (२)

आराम, विश्राम । (३) छुटकारा ।

उपरात्ता—संज्ञा पुं. [हिं. ऊपर + ता (प्रत्य.)] सहायता, रक्षा ।

उपरावटा—वि. [सं. उपरि + आवर्त्त] गर्व से सिर ऊँचा किये हुआ, अकडता हुआ ।

उपराहना—क्रि. स. [देश.] बड़ाई करना ।

उपराही—क्रि. वि. [हिं. ऊपर] ऊपर ।

वि.—श्रेष्ठ, बढकर ।

उपरि—क्रि. वि. [सं.] ऊपर ।

उपरी-उपरा—संज्ञा पुं. [हिं. ऊपर] (१) एक वस्तु के लिए कई आदमियों का प्रयत्न । (२) होड, स्पर्द्धा, प्रतियोगिता ।

उपरैना—संज्ञा पुं. [हिं. ऊपर + ना (प्रत्य.)] दुपट्टा, चदर ।
उ.—(क) सिर पर मुकुट, पीत उपरैना, भृगु-पद उर, भुज चारि धरे—१०-८ । (ख) तब रिस धरि सोई उत मुख करि झुके भाँक्यो उपरैना माथ —२७३६ ।

उपरैनी—संज्ञा स्त्री. [सं. उत् + परणी] ओढनी ।

उपरोध—संज्ञा पु. [सं.] (१) रुकावट, अटकाव । (२) ढकना, आड ।

उपरौना—संज्ञा पुं. [हिं. उपरना] दुपट्टा, चादर ।

उपल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पत्थर । उ.—हिम के उपल सलाई अंत ते याके जुगुत प्रकासो—सा. १०५ ।
(२) ओल्ला । (३) मेघ ।

उपलक्ष्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संकेत । (२) उद्देश्य ।

उपलै—संज्ञा पुं. [सं. उपल] पत्थर, उपल । उ.—इहि विधि उपलै तरत पात ज्यौ, जदपि सैल अति भारत ।
बुद्धि न सकति सेतु रचना रचि, राम-प्रताप विचारत—६-१२३ ।

उपवन—संज्ञा पुं. [सं.] बाग, फुलवारी । उ.—उपवन बन्धो चहुँधा पुर के अति ही मोको भावत—२५५९ ।

उपवना—क्रि. अ. [सं. उ + यमन] उड़ जाना, लौप हो जाना ।

क्रि. अ. [सं. उदय] उगना, उदय होना ।

उपवास—संज्ञा पुं. [सं.] भोजन न करना ।

उपवीत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जनेऊ । (२) यज्ञोपवीत संस्कार ।

उपशम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वासना को दबाना, इंद्रियों को वश में करना । (२) निवारण करना, दूर करना ।

उपसंहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समाप्ति । (२) पुस्तक का अंतिम अध्याय । (३) सार, सारांश ।

उपसुद—संज्ञा पुं. [सं.] एक दैत्य जो सुंद का छोटा भाई था । ये दोनों परस्पर युद्ध करके एक दूसरे के हाथ से मारे गये थे ।

उपस्थान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सामने आना । (२) खडे होकर स्तुति या पूजा करना । (३) पूजा का स्थान । (४) सभा ।

उपस्थित—वि. [सं.] (१) सामने या पास आया हुआ । (२) विद्यमान, मौजूद ।

उपहार—संज्ञा पुं. [सं.] भेंट, नजराना । उ.—(क) सुन्दर कर आनन समीप, अति राजत रहि आकार ।
जलरुह मनौ बैर बिधु सौ तजि मिलत लए उपहार—३८३ । (ख) आये गोप भेंट लै लै के भूषन-वसन सोहाए ।
नाना विधि उपहार दूध दधि आगे धरि सिर नाए ।

उपहास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हँसी, ठट्ठा । (२) निंदा, बुराई । उ.—(क) निंदा जग उपहास करत, मग बंद्गीन जस गावत ।
हठ, अन्याय, अधर्म सूर नित नौबत द्वार बजावत—१-१४१ । (ख) सूरदास स्वामी तिहुँ पुर के, जग-उपहास डराइ—९-१६१ ।
(ग) घेरि राखे हमहि नहि बूझे तुमहि जगत मे कहा उपहास तैहौ—२६०५ । (घ) हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ । ।
गुरुजन कानि अग्नि चहुँदिसि नभ तरति ताप बिनु देखे । पिवत धूम उपहास जहाँ तहँ अपयस खवन अलेखे—३०१४ ।

उपहासी—संज्ञा स्त्री. [सं. उपहास] (१) हँसी । (२) निंदा ।

उपही—संज्ञा पुं. [हि. ऊपरा] अपरिचित या अजनबी व्यक्ति ।

उपांग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंग का भाग । (२) तिलक, टीका । (३) एक प्राचीन बाजा ।

उपाइ—संज्ञा पुं. [सं. उपाय] (१) युक्ति, साधन, उपाय । उ.—(क) अन्नकी बार मनुष्य-देह धरि, कियौ न कछु उपाइ—१-१५। (ख) यह बर दै हरि कियौ उपाइ । नारद मन-ससय उपजाइ—१-२२६ । (२) शत्रु पर विजय पाने का साधन या युक्ति । उ.—जब तै जन्म लियौ ब्रज-भीतर तब तै यहै उपाइ । सूर स्याम के बल-प्रताप तै, बन-वन चारत गाइ—५०८ ।

क्रि. स. [सं. उत्पन्न, पा. उत्पन्न, हिं. उपाना] उत्पन्न की, उपजायी । उ.—सकल जीव जल-यल के स्वामी चीटी दई उपाइ । सूरदास प्रभु देखि ग्वालिनी, भुज पकरे दोउ आइ—१०-२७८ ।

उपाई—संज्ञा पुं. [सं. उपाय] उपाय, युक्ति, साधन । उ.—(क) गुरु-हत्या मौतै हूँ आई । कह्यौ सो छूटै कौन उपाई—१-२६१ । (ख) पृथ्वी हित नित वरै उपाई—१२-३ ।

क्रि. स. [सं. उत्पन्न, प्रा. उत्पन्न, हि. उपाना] (१) उत्पन्न की । उ.—(क) सूरदास सुरपति रिस पाई । कीड़ी तनु ज्यो पाँख उपाई—१०४१ । (ख) ब्रह्मा मन सो भली न भाई । सूर सृष्टि तब और उपाई—३-७ । (२) संषादन की, की । उ.—(क) तबहि स्याम इक युक्ति उपाई—३८३ । (ख) सुने जदुनाथ इह बात तब पथिक सौँ धर्मसुत के हृदय यह उपाई—१० उ.-५० । (ग) प्रीति तिनकी सुमुरि भय अनुकूल हरि सत्यभामा, हृदय यह उपाई—१० उ.-३१ ।

उपाउ—संज्ञा पुं. [सं. उपाय] युक्ति, तदबीर । उ.—सखी मिल करहु कछु उपाउ—सा. उ.-४० ।

उपाऊँ—क्रि. स. [हि. उपाना] उत्पन्न करूँ, पैदा करूँ । उ.—(क) अब मैं उनकोँ ज्ञान सुनाऊँ । जिहि तिहि विधि बैराग्य उपाऊँ—१-२८४ । (ख) जैसी तान तुम्हारे मुख की तैसिय मधुर उपाऊँ—पृ. ३११ ।

(ग) सुनहु सूर प्यारी हृदय रस बिरह उपाऊँ—पृ. ३१२ ।

उपाए—क्रि. स. [हि. उपाना] उत्पन्न किये । उ.—तीनि पुत्र तिन और उपाए । दच्छिन राज करन सो पठाए—६-२ ।

उपाख्यान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्राचीन कथा । (२) वृत्तांत । (३) कथा के अंतर्गत प्रासांगिक कथा ।

उपाटत—क्रि. स. [हि. उपाटना] उखाड़ता है, नष्ट करता है, नोचता है । उ.—जन के उपजत दुख किन काटत ? जैसे प्रथम अषाढ ओंजु तृन, खेतिहर निरखि उपाटत—१-१०७ ।

उपाटना—क्रि. स. [सं. उत्पाटन] उखाड़ना ।

उपाटि—क्रि. स. [हि. उपाटना] उखाड़ कर । उ.—तरु-वर तब इक उपाटि हनुमत कर लीन्हौ—६-६६ ।

उपाटी—क्रि. स. [हि. उपाटना] उखाड़ या खोद ली । उ.—जोजन बिस्तार सिला पवन-सुत उपाटी—६-६६ ।

उपाती—संज्ञा स्त्री. [सं. उत्पत्ति] जन्म, उपज ।

उपादान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रहण, स्वीकार । (२) ज्ञान, बोध । (३) इंद्रियनिग्रह ।

उपादेय—वि. [सं.] (१) स्वीकार करने योग्य । (२) उत्तम, श्रेष्ठ । (३) उपयोगी ।

उपाधा—संज्ञा पुं. [सं. उपाधि] उपद्रव, उत्पात । उ.—संगति रहति सदा पिय प्यारी क्रीड़त करत उपाधा । कोक कला वितपन्न भई है कान्ह रूप तनु आधा—१४३७ ।

उपाधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) छल, कपट । (२) कर्तव्य का विचार, धर्मचिंता । (३) प्रपंच, माया, संकट । उ.—(क) मन-वच-कर्म और नहि जानत, सुमिरत और सुमिरावत । मिथ्यावाद-उपाधि-रहित हूँ, विमल-विमल जस गावत—२-१७ । उ.—(ख) क्रम-क्रम क्रम सौं पुनि करै समाधि । सूर स्याम भजि मिटै उपाधि—२-२१ । (४) प्रतिष्ठासूचक पद । (५) उपद्रव, उत्पात ।

उपाधी—वि. [सं. उपाधिन्] उत्पात करनेवाला, उपद्रवी ।

उपानत्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जूता, पनही । (२) खडाऊँ ।

उपानह—संज्ञा पुं. [सं.] जूता ।

उपाना—क्रि. स. [सं. उत्पन्न, पा. उत्पन्न] (१) पैदा करना, उपजाना । (२) विचार सूझना, सोचना । (३) करना ।

उपाय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधन, युक्ति । (२) पास पहुँचना, निकट आना ।

उपायन—संज्ञा पुं. [सं.] भेंट, उपहार ।

उपाया—क्रि. स. [हि. उपाना] उत्पन्न किया, रचा, बनाया । उ.—तुम्हारी माया जगत उपाया—१० उ.-१२६ ।

उपायौ—क्रि. स. [हि. उपाना] (१) किया, संपादन किया । उ.—(क) ता रानी सौ नृप-हित भयौ । और तियनि कौ मन अति तयौ । तिन सबहिनि मिलि मंत्र उपायौ । नृप त-कुँवरि कौ जहर पियायौ—६-५ । (ख) धर्मपुत्र जब जज्ञ उपायौ द्विज मुख है पन लीन्हौ—१-२६ । (२) उत्पन्न किया । उ.—(क) तिन प्रथमहि महत्त्व उपायौ । तातैं अहंकार प्रगटायौ—३-१३ । (ख) तातैं कीने और ब्रह्म-नाल उपायौ—४३७ ।

उपारत—क्रि. स. [हि. उपारना, उपाटना] उखाड़ते समय, उखाड़ने में । उ.—मंदराचल उपारत भयौ स्तन बहुत, बटुरि लै चलन कौ जब उठायौ—८-८ ।

उपारना—क्रि. स. [सं. उत्पादन हि. उपाटना] उखाड़ना ।

उपारि—क्रि. स. [हि. उपाटना, उपारना] उखाड़ कर, अलग करके । उ.—(क) स्वर्ग-पताल माहिं गम ताकौ, व हियै कहा बनाइ । केतिक लंक उपारि बाम कर, लै आवै उचकाइ—९-७४ । (ख) कहौ तौ सैल उपारि पेड़ि तै, दै सुमेरु सौ मारौ—६-१०७ । (ग) कंध उपारि डारिहौ भूतल सूर सकल सुख पावत—६-१३३ ।

उपारी—क्रि. स. [हि. उपाटना, उपारना] उखाड़ ली । उ.—(क) सिव है क्रोध इक जटा उपारी । बीरभद्र उज्यौ बलभारी—४-५ । (ख) क्रुद्ध होइ इक

जटा उपारी—६-५ । (ग) पटक्यो भूमि फेरि नहिं मटक्यो लीन्है दंत उपारी—२५६४ ।

उपारे—क्रि. स. [हि. उपारना, उपाटना] उखाड़ लिये । उ.—रजक धनुष जोधा हति दंतगज उपारे—२६०१ ।

उपारौ—क्रि. स. [हि. उपारना, उपाटना] उखाड़ूँ, नोचूँ, तोड़ूँ । उ.—(क) जारौ लंक छेदि दस मस्तक, सुर संकोच निवारौ । श्रीरघुनाथ-प्रताप-चरन करि, डर तै भुजा उपारौ—९-१३२ । (ख) प्रबल कुवलिया दंत उपारौ—११६१ ।

उपारौ—क्रि. स. [हि. उपाटना] उखाड़ लो, (किसी वस्तु से) अलग कर लो । उ.—गउ चटाइ, मम त्वचा उपारौ । हाइनि कौ तुम बज्र सँगरौ—६-५ ।

उपार्जन—संज्ञा पुं. [सं.] पैदा करना, प्राप्त करना ।

उपारयौ—क्रि. स. [सं. उत्पादन, हि. उपाटना, उपारना] उखाड़ लिया, नोच-खसोट लिया । उ.—बीरभद्र तब दच्छहि मारयौ । अरु भृगु रिषि कौ केस उपारयौ—४-५ ।

उपालंभ—संज्ञा पुं. [सं.] उल्लाहना ।

उपाव—संज्ञा पुं. [सं. उपाय] उपाय, साधन, युक्ति । उ.—(क) अति उनमत्त मोह-माया-वस, नहिं कछु बात बिचारौ । करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटौ-खारौ—१-१५२ । (ख) कहौ पितु, मोसौ सोइ सतिभाव । जातै दुरजोषन-दल जीतौ, किहि बिधि करौ उपाव—१-२७५ ।

उपावै—क्रि. स. [हि. उपाना] उत्पन्न करें, रचे, बनावे । उ.—बहुरो ब्रह्मा सृष्टि उपावै—१२-४ ।

उपास—संज्ञा पुं. [सं. उपवास] भोजन न करना, लंघन ।

उपासक—वि. [सं.] भक्त, सेवक ।

उपासन—संज्ञा पुं. [सं.] सेवा, पूजा, आराधना । उ.—जौ मन कबहुँक हरि कौ जाँचै । आन प्रसंग-उपासन छोडै, मन-बच-क्रम अपनै उर सँचै—२-११ ।

उपासना—संज्ञा स्त्री. [सं. उपासन] आराधना, पूजा । क्रि. स.—पूजा-सेवा करना, भजना ।

क्रि. अ. [सं. उपवास] निराहार रहना ।

उपासी—वि. [सं. उपासिन्] सेवक, भक्त । उ.—(क) नाम गोपाल जाति कुल गोपक गोप गोपाल उपासी —३३१४ । (ख) हम ब्रज बाल गोपाल उपासी —३४४२ ।

उपासे—क्रि. स. [हि. उपासना] भजे, सेवा की ।

उपास्य—वि. [सं.] पूजा-सेवा के योग्य, पूज्य, सेव्य, आराध्य ।

उपेंद्र—संज्ञा पुं. [सं. उप + इंद्र] वामन, विष्णु, कृष्ण ।

उपेक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चित्त का हटना, विरक्ति । (२) घृणा, तिरस्कार ।

उपै—क्रि. अ. [सं. उप + यमन, हिं उपवना] लोप होना, उड़ जाता है, विलीन होता है ।

उपैना—वि. [सं. उ + पहव] खुला हुआ, नग्न ।

क्रि. अ. [देश.] उड़ना, लोप हो जाना ।

उपैनी—वि. स्त्री. [हि. उपैना] खुली हुई, नंगी, आच्छादन रहित । जय जय जय माधव-वैनी । जगहित प्रगट करी करुणामय, अगतिनि कौ गति दैनी । जानि कठिन कलिराल कुटिल नृप, संग सजी अघ-सैनी । जनु ता लागि तरवारि त्रिविक्रय, धरि धरि कोप उपैनी—६-११ ।

उपैहौं—क्रि. स. [सं. उत्पन्न, पा. उत्पन्न, हि. उपाना] करूंगा, संपादन करूंगा । उ.—स्याम तुम्हारी कुसल जानि एक मंत्र उपैहौं—६३३(४) ।

उफड़ना—क्रि. अ. [हि. उफनना] उबलना, उफान खाना ।

उफनत—क्रि. अ. [सं. उत् + फेन, हि. उफनना] उबलता है, उफनता है । उ.—(क) उफनत छीर जननि करि व्याकुल इहि विधि भुजा छुड़ाई—१०-३४२ । (ख) एक दुहनी दूध जावत को सिरावत जाहि । एक उफनत ही चली उठि धरथौ नही उतारि—पृ. ३३६ (८४) । (ग) उतसहकंठा हरि सो बड़ी । उफनत दूध न धरथौ उतारि । सीमो थूली चूल्हे दारि—१८०३ ।

उफनना—क्रि. अ. [सं. उत् + फेन] (१) उबलना, उफान आना । (२) अंकित होना, चिह्न पड़ना ।

उफनात—क्रि. अ. [हि. उफनाना] (१) उबलता है, फेन उड़ता है । (२) उमड़ता है, हिलोरें मारता है ।

उफनाना—क्रि. अ. [सं. उत् + फेन] (१) आँच या गरमी से फेना उठना । (२) हिलोरा मारना, उमड़ना ।

उफनि—क्रि. अ. [हि. उफनना] उबलकर, उफान आकर फेना उठ कर, छिटक कर । उ.—छलकति तक्र उफनि अँग आवत नहि जानति तेहि कालहि सो—११८० ।

उफान—संज्ञा पुं. [हि. उफनना] उबाल, फेना उठना ।

उबट—संज्ञा पुं. [सं. उद्बाट] ऊबड़खाबड़ मार्ग ।

वि.—ऊँचा नीचा, ऊबड़खाबड़ ।

उबटन—संज्ञा पुं. [सं. उद्बर्त्तन, पा. उबटन] बटन, अभ्यंग । उ.—क्यों हूँ जतन जतन करि पाए । तन उबटन तेल लगाए—१०-१८३ ।

उबटना—संज्ञा पुं. [हि. उबटन] सुगन्धित लेप, बटना । उ.—एक दुहावत ते उठि चली । । तेल उबटना त्यागो दूरि । भागन पाई जीवन मूरि ।

क्रि. अ.—बटना मलना, उबटन लगाना ।

उबटनो—संज्ञा पुं. [हि. उबटन] बटना, उबटन । उ.—तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते—२७०७ ।

उबटनौ—संज्ञा पुं. [हि. उबटन] उबटन, बटना, अभ्यंग । उ.—(क) तब महारि बाहँ गहि आनै । लै तेल उबटनौ सानै—१०-१८३ । (ख) केसरि कौ उबटनौ बनाऊँ रचि रचि मैल छुडाऊँ—१०-१८५ ।

उबटि—क्रि. अ. [हि. उबटना] बटना मलकर, उबटन लगाकर । उ.—(क) जननी उबटि न्हवाइ कै (सिसु क्रम सौ लीन्हे गोद—१०-४२ । (ख) जसुमति उबटि न्हवाइ कान्ह कौ, पट-भूषन पहराइ—१०-८९ । (ग) इक उबटि खौरि सुंगारि सखिअन कँअरि चोरी आनियो—पृ. ३४८ (५८-१) ।

उबरते—क्रि. अ. [हि. उबरना] मुक्त होते, बचते, छुटकारा पाते । उ.—यह कुमाया जो तबही वरते । तौ कत इन ये जिवत आनु लौ या गोकुल के लोग उबरते—२७३८ ।

उबरन—क्रि. अ. [हि. उबरना] उद्धार पाना, मुक्त होना । छुटकारा या निस्तार पाना । उ.—सुनि याके उतपात कौ, सुक सनकादिक भागे (हो) । बहुत कहौ लौ बरनिपे, पुरुष न उबरन पावै (हो)—१-४४ ।

संज्ञा, स्त्री—रक्षा, बचाव, मुक्ति । उ.—बड़े भाग्य

हैं महर महरिके । लै गयौ पीठि चढाइ असुर इक,
कहा कहौ उबरन या हरि के—६०७ ।

उबरना—क्रि. स. [सं. उद्धारण, पा. उब्धारन] (१)
मुक्त होना, छूटना । (२) बच रहना, बाकी बचना ।

उबरा—वि. [हि. उगरना] (१) बना हुआ । (२)
जिसका उद्धार हुआ हो ।

उबरिबो—क्रि. अ. [हि. उबरना] छुटकारा पाना, बच
सकना । उ.—मिलहु लो रूपति छोड़ि कै हरि होरी
है । नाहि उबरिबो निदान अहो हरि होरी है
—२४१५ ।

उबरिहौ—क्रि. अ. [हि. उबरना] उद्धार, मुक्ति या
छुटकारा पाओगे । उ.—उनकै क्रोध भस्म है जैहौ,
करौ न सीता चाउ । तब तुम काकी सरन उबरिहौ,
सो बलि मोहि बताउ—६-७८ ।

उबरी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उबरना] मुक्त हुई, उद्धार
हुआ, रक्षा हुई, बची । उ.—(क) सभा मँझार दुष्ट
दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी । सुमिरत पट कौ कोट
बढ़्यौ तब, दुखसागर उबरी—१-१६ । (ख) सूरदास
प्रभु सों यों कहियो केला पोष सँग उबरी बेरि—
३२५८ । (ग) जाति स्वभाव मिटै नहि सजनी अंतत
उबरी कुबरी—३१८८ ।

वि. स्त्री.—(१) मुक्त, जिसका उद्धार हुआ हो ।
(२) बची हुई, शेष ।

संज्ञा स्त्री. [सं. विवर, हि. ओबरी] कोठरी,
छोटा कमरा । उ.—बिलग मति मानहु ऊधो प्यारे ।
वह मथुरा काजरि की उबरी जे आवै ते कारे
—३१७५ ।

उबरे—क्रि. अ. [सं. उद्धारण, पा. उब्धारण, हि.
उबरना] बच गये, मुक्त हुए । उ.—(क) बड़े
भाग्य हैं नंद महर के, बड़ भागिनि नदरानी । सूर
स्यास उर ऊपर उबरे, यह सब घर-घर जानी—१०-
५३ । (ख) तात कहि तब स्याम दौरै, महर लियौ
अंकवारी । केसौ उबरे बृच्छतर तै सूर है बलिहारी
—३८७ ।

उबरै—क्रि. अ. [हि. उबरना] बच जायँ, मुक्त रहें,
निस्तार पा जायँ । उ.—कैसहुँ ये बालक दोउ उबरै,
पुनि पुनि सोचति परी खभारे—५६५ ।

उबरै—क्रि. अ. [हि. उबरना] (१) उद्धार पा सकता है,
मुक्त हो सकता है, छूट सकता है, निस्तार पा सकता
है । उ.—(क) सूरदास भगवंत-भजन करि, सरन गए
उबरै—१-३७ । (ख) इहि कलिकाल-ब्याल-मुख-
ग्रासित सूर सरन उबरै—१-११७ । (२) रक्षित
रहेगा, बच जायगा, छुटकारा पा जायगा ।
उ.—(क) रे मन, राम सौ करि हेत । हरि-भजन
की बारि करि लै, उबरै तेरौ खेत—१-३११ । (ख)
सुनत धुनि सब ग्वाल डरपे अब न उबरै स्याम ।
हमहि बरजत गयौ, देखौ, किए कैसे काम—४२७ ।

उबरो—क्रि. अ. [हि. उबरना] (१) मुक्त हुआ, छूटा ।
(२) बाकी रहा, शेष रहा । उ.—भली करी हरि
माखन खायौ । इहौ मान लीन्ही अपने सिर उबरो
सो ढरकायौ—११२८ ।

उबरौगे—क्रि. अ. [हि. उबरना] निस्तार पाओगे,
छूटोगे, बचोगे, उद्धार पाओगे । उ.—अपनौ पिंड
पोषिबे कारन, कोटि सहस जिय मारे । इन पापनि
तै क्यौ उबरौगे, दामनगीर तुम्हारे—१-३३४ ।

उबर्यौ—क्रि. अ. [हि. उबरना] (१) मुक्त हुआ,
रक्षित, रहा, उद्धार या निस्तार पाया । उ.—(क)
गाए सूर कौन नहि उबर्यौ, हरि परिपालन पन रे
—१-६६ । (ख) उबर्यौ स्याम, महरि बड़भागी ।
बहुत दूर तैं आइ पर्यौ घर, धौं कहुँ चोट न लागी
—१-७६ । (२) जीवित बचा, बाकी रहा । उ.—
मारे मल्ल एक नहि, उबर्यौ—२६४३ (३) काम
न आया, बाकी बचा, शेष रहा । उ.—(क) फोरि
भौड़ दधि माखन खायौ, उबर्यौ सो डार्यौ रिस
करिकै—१०-३१८ । (ख) माखन खाइ, खवायौ
ग्वालनि, जो उबर्यौ सो दियौ लुढाई—१०-३०३ ।

उबलना—क्रि. अ. [सं. उद् + वलन = जाना] (१)
उफनना । (२) उमड़ना ।

उबहना—क्रि. स. [सं. उद्बहनी, पा. उब्बहन = ऊपर
उठना] (१) शस्त्र उठाना, शस्त्र खींचना । (२) पानी
उलीचना ।

वि. [सं. उपानह] बिना जूते का, नंगे पैर ।

क्रि. अ. [सं. उद्बहन] ऊपर उठना ।

उबहने—वि. [हि. उबहना] बिना जूता पहने ।

उबहे—क्रि. स. [हि. उबहना] शल उठाया ।

उबाँट—संज्ञा स्त्री. [सं. उद्भात] उलटी, बमन, कै ।

उबाना—वि. [हि. उबहना] नंगे पैर ।

उबार—संज्ञा पुं. [सं. उद्धारण, हि. उद्धार] उद्धार, निस्तार छुटकारा, बचाव, रक्षा । उ. (क) अब उबार नहि दीसत कतहूँ सरन राखि को लेइ—५२८ । (ख) यासों मेरो नहीं उबार । मोहि मारि मारै परिवार—५८५ । (ग) भरभराति भहराति लपट अति, देखियत नहीं उबार—५९३ ।

उबारन—संज्ञा पुं. [हि. उबारना] उबारने वाले, उद्धारकर्ता । उ. —संत-उबारन, असुर-संहारन दूरि करन दुख-दंदा—१०-१६२ ।

उबारना—क्रि. स. [सं. उद्धारण] उद्धार करना, रक्षा करना, मुक्त करना ।

उबारा—संज्ञा पुं. [हि. उबार] उद्धार, छुटकारा ।

उबारि—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धार या मुक्त करके, रक्षा या विस्तार करके । उ. —करि बल-बिगत उबारि दुष्ट दें, ग्राह प्रसत बैकुंठ दियौ—१-२६ ।

उबारी—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धार किया, रक्षा की, मुक्त किया, बचाया । उ. —द्रुपद-सुता जब प्रगट पुकारी । गहत चीर हरि-नाम उबारी—१-२८ ।

उबारे—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धार किया, रक्षा की, मुक्त करे, छुड़ाये । उ. —(क) लाखागृह तैं जरत पांडु-सुत बुधि-बल नाथ, उबारे—१-१० । (ख) तुम्हारी कृपा बिनु कौन उबारे—१-२५७ ।

उबारैं—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धार करें, छुटकारा दिलाएँ, बचाएँ । उ. —जाइ मिलि अंध दसकन्ध, गहि दंत तून, तौ भलैं मृत्यु-मुख तैं उबारैं—६-१२६ ।

उबारै—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धार करे, मुक्ति दे, छुटकारा दे । उ. —हुहूँ भौंति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारै प्रान—१-९७ ।

उबारौ—क्रि. स. [हि. उबारना] रक्षा करूँ, बचाऊँ । उ. —कंस बंस कौ नास करत है, कहँ लौं जीव उबारौ—१०-४ ।

उबारौ—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धारो, छुड़ाओ, निस्तारो, मुक्त करो । उ. —अब मोहि मज्जत क्यों न

उबारौ । दीनबन्धु, कसनामय, स्वामी, जन के दुःख निवारौ—१-२०६ ।

उबार्यौ—क्रि. स. [हि. उबारना] मुक्त किया, उद्धार किया, रक्षा की । उ. —(क) सरन गए को को न उबार्यौ । जब जब भीर परी संतनि कौ, चक्र सुदरसन तहाँ सँभार्यौ—१-१४ । (ख) ततकालहि तब प्रगट भए हरि, राजा जीव उबार्यौ—१-१०६ ।

उबाल—संज्ञा पुं. [हि. उबलना] (१) उफान । (२) जोश, खोभ, झुंझलाहट ।

उबासी—संज्ञा स्त्री. [सं. उश्वास] जँभाई ।

उबाहना—क्रि. स. [हि. उबहना] हथियार उठाना ।

उबीठना—क्रि. स. [सं. अब, पा. औ + सं. इष्ट, पा. इष्ट = ओइष्ट] अरुचि हो जाना, मन भर जाना । क्रि. अ. —ऊबना, घबराना ।

उबीठे—क्रि. स. [हि. उबीठना] अहंभक्ति हुए, न भाये । उ. —सुठि मोती लाडू मीठे । वै खात न बबहुँ उबीठे—१०-१८३ ।

उबीधना—क्रि. अ. [सं. उद्विद्ध] (१) फँसना । (२) गड़ना ।

उबीधा—वि. [हि. उबीधना] (१) घँसा हुआ, गड़ा हुआ । (२) काँटों से युक्त ।

उबेना—वि. [हि. उ=नहीं + सं. उपानह=जूता] नंगे पैर, बिना जूते का ।

उभइ—वि. [सं. उभय] दोनों ।

उबटना—क्रि. अ. [हि. उभरना] अभिमान करना ।

उभइना—क्रि. अ. [सं. उद्भिदन, अथवा उद्भरण, प्रा. उब्भरण] (१) प्रकट होना, उत्पन्न होना । (२) बढ़ना, अधिक होना ।

उभय—वि. [सं.] दोनों ।

उभरौहौ—वि. [हि. उभार + औहौ (प्रत्य.)] उभरा हुआ ।

उभाड़—संज्ञा पुं. [हि. उभड़ना] (१) उठना (२) ओज, वृद्धि ।

उभाना—क्रि. अ. [हि. अभुआना] हाथ पैर पटकना और सिर हिलाना जिससे सिर पर भूत आना समझा जाता है ।

उभिटना—क्रि. अ. [हिं. उब्रीठना] हिचकना, ठिठकना ।

उभिट्टे—क्रि. अ. [हिं. उभिटना] ठिठके, हिचके ।

उभै—वि. [सं. उभय] दोनों । उ.—मनु उभै अंभोज-
भाजन, लेत सुधा भराइ—६२७ ।

उमंग, उमंग—संज्ञा स्त्री. [सं. उद्=ऊपर+मंग=चलना,
हिं. उमंग] (१) उल्लास, मौज, आनंद । उ.—
(क) उमंगो ब्रजनारि सुभग, कान्ह बरष-गाँठि-उमंग,
चहति बरष बरषनि—१०-६६ । (ख) बसे जाय
आनंद उमंग सौ गैयाँ सुखद चरावै । (२) उभाड़,
उभड़ना । (३) अधिकता, पूर्णता ।

उमंगना—क्रि. अ. [हिं. उमंग+ना (प्रत्य.)] (१)
उमड़ना, बढ़ चलना । (२) हुलसना, आनंद में
होना ।

उमंगि—क्रि. अ. [हिं. उमंगना] (१) सोल्लास,
हुल्लास-सहित, जोश में आकर । उ.—(क) भ्रात-
मुख निरखि राम बिलखाने । मुंडित केस-सीस,
बिहवल दोउ, उमंगि कंठ लपटाने—१-५२ । (ख)
आनंद भरी जसोदा उमंगि अंग नृ माति, आनंदित
भई गोपी गावति चहर के—१०-३० । उमड़ कर,
ऊपर उठकर । उ.—भरत गात सीतल है आयौ,
नैन उमंगि जल धारे । सूरदास प्रभु दर्ई पाँवरी, अवध
पुरी पग धारे—१-५४ ।

उमंगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. उमंग] (१) मौज, उल्लास,
आनंद । (२) उभाड़ । (३) अधिकता, पूर्णता ।

वि.—अधिक, बहुत, ज्यादा, अपार । उ.—पारथ
तिय कुरराज सभा मे बोलि बरन चहै नंगी । खवन
सुनत करुना-सरिता भए, बढ़्यौ बसन उमंगी—
१-२१ ।

उमंगी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. उमंग+ना (प्रत्य.)]
उभड़ने लगी, उमड़ी ।

वि. स्त्री.—उमड़ी हुई, उमड़ कर प्रवाहित होती
हुई । उ.—उमंगी प्रेम-नदी-छवि पावै । नंद नंदन-
सागर कौ धावै—१०-३२ ।

उमंगे—क्रि. अ. [हिं. उमंग+ना (प्रत्य.)] (१)
उमड़ने लगे, उमड़ चले, बढ़ चले । उ.—सूरदास
उमंगे दोउ नैना, सिधु-प्रवाह बह्यौ—१-२४७ ।

(२) आनंदित होकर, हुल्लास से भरकर । उ.—
उमंगे लोग नगर के निरखत, अति सुख सबहिनि
पाइ—१-२६ ।

उमंगै—क्रि. अ. [हिं. उमंग+ना (प्रत्य.)=उमंगना]
उमड़े, उभड़े, उमड़ कर बढ़ चले । उ.—उमंगै
प्रेम नैन-मग हैंके, कापै रोक्यौ जात री—१०-१३६ ।

उमंग—संज्ञा स्त्री. [हिं. उमंग] (१) आनंद, उल्लास ।
(२) अधिकता ।

उमंगन—संज्ञा स्त्री. [हिं. उमंग] आनंद, उल्लास ।

उमंगना—क्रि. अ. [हिं. उमंग+ना] (१) उमड़ना ।
(२) आनंदित होना ।

उमचना—क्रि. अ. [सं. उन्मञ्च = ऊपर उठना]
(१) तलुए को जोर देकर किसी वस्तु को दबाना,
हुमचना । (२) चौंकना, चौकन्ना होना ।

उमचि—क्रि. अ. [हिं. उमचना] चौंककर, चौकन्ना
होकर । उ.—चकृत भई बिचार करत यह बिसरि
गई सुधि गात । उमचि जात तबही सब संकुचति
बहुरि मगन है जाति । सूर स्याम सौ कहौ कहा यह
कहत न बनत लजाति—११९० ।

उमड़—संज्ञा स्त्री. [सं. उन्मंडन्] (१) बाढ़, बढ़ाव ।
उ.—फिरि फिरि उमकि भौंकत बाल । बहि-रिपु
की उमड़ देखत करत कोटिन ख्याल—सा. ३४ ।
(२) छाजन, धिराव । (३) धावा । उठान ।

उमड़ना—क्रि. अ. [हिं. उमंग] (१) द्रव पदार्थ के
अधिक होने से बढ़ चलना । (२) उठकर फैलना,
घेरना । (३) आवेशयुक्त होना, चुब्ध होना ।

उमड़ि—क्रि. अ. [हिं. उमड़ना] (द्रव की बहुतायत
के कारण) ऊपर उठकर, उतराकर । उ.—हा सीता,
सीता कहि सियगति, उमड़ि नयन जल भरि-भरि
ढारत—६६२ ।

उमड़ी—क्रि. अ. [हिं. उमड़ना] (१) द्रव पदार्थ
अधिक भर जाने से बढ़ चली । (२) आवेश में
भर गयी । (३) छा गयी, घेर लिया ।

उमड़े—क्रि. अ. [हिं. उमड़ना] फैलकर, चारों ओर

छा कर, धिरकर । उ.—अति आनंद भरे गुन गावत
उमड़े फिर अहीर—९२० ।

उमड़ै—क्रि. अ. [हि. उमंग] उतराकर बह चलता है ।
उ.—सरवर नीर भरै, भरि उमड़ै, सूखै, खेह उड़ाइ
—१०-२६५ ।

उमड़ौ—क्रि. अ. [हि. उमड़ना] (१) भर आया, उतरा
कर बह चला (२) उठकर फैला, छाया, घेरा ।
उ.—अब हौं कौन कौ मुख हेरौ ? रिपु-सैना-समूह-जल
उमड़्यौ, काहि साख लै फेरौ—९-१४६ ।

उमड़ना—क्रि. अ. [सं. उन्मद] (१) उमंग में भरना । (२)
उमड़ना ।

उमड़ात—क्रि. अ. [हि. उमड़ना] मतवाला होता है,
उन्मत्त होता है ।

उमड़ना—क्रि. अ. [सं. उन्मद, हि. उमड़ना] (१) मत-
वाला होना, उमंग में भरना । (२) आवेशयुक्त होना ।

उमड़—क्रि. अ. [हि. उमड़ना] उमड़ते हैं ।

उमराव—सं. पुं. [अ. उमरा] प्रतिष्ठित व्यक्ति, सरदार,
दरबारी । उ.—असुरपति अति ही गर्व धर्यौ ।
..... महा महा जो सुभट दैत्यबल बैठे सब उमराव ।
तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो मो सम्मुख को आव
—२३७७ ।

उमहना—क्रि. अ. [सं. उन्मथन, प्रा. उम्महन अथवा
स. उद् + मह = उमड़ना] (१) (द्रव पदार्थ की
अधिकता के कारण) बहना, उमड़ना । (२) घेरना,
छा जाना । (३) आवेशयुक्त होना ।

उमहायो—क्रि. अ. [हि. उमड़ना] द्रव पदार्थ की
अधिकता से) बह चला, उमड़ा । उ.—नहि स्तुति
सेस महेस प्रजापति जो रस गोपिन गायौ । कथा गंग
लागी मोहि तेरी उहि रस सिधु उमहायौ—३४६० ।

उमही—क्रि. अ. [हि. उमहना] (१) उमंग में भर गयी,
आवेशयुक्त हो गयी । उ.—(क) सिर मटुकी मुख
मौन गही । भ्रमि-भ्रसि बिबस भई नव ग्वालिन नवल
कान के रस उमही—१२१३ । (२) उमड़ पड़ी है ।
उ.—पालागौ तुमहीं बूझत हौं तुम पर बुधि उमही
—३३७० ।

उमहै—क्रि. अ. [हि. उमहना] छा गये, घेर लिया ।

उ.—सघन विमान गगन भरि रहे । कौतुक देखन
अम्मर उमहै—१८१६ ।

उमहै—क्रि. अ. [हि. उमहना] उमंग में आती है, आवेश
युक्त हो जाती है । उ. (क) पहिले अग्नि सुनत
चन्दन सी सती बहुत उमहै । समाचार ताते अरु
सीरे पाछे जाइ लहै—२७१३ ।

उमह्यो, उमह्यौ—क्रि. अ. [हि. उमहना] (१) छा गये,
एकत्र हुए । उ. (क) अनद अति सै भयौ घर-घर, नृत्य
ठाँवहि-ठाँव । नंद-द्वारै भेट लै लै उमह्यौ गोकुल
गाँव—१०-२६ । (ख) उमह्यौ मानुष घोष यों रंग
भीजी ग्वालिन—२४०५ । (२) उमंगयुक्त हुआ, उमड़
पड़ा । उ.—मदन गुपाल मिलन मन उमह्यौ कौन बसै
इह यदपि सुदेस । ३२२५ । (३) उमड़ पड़ा, उतराकर
बह चला—उ.—तौलौ भार तरंग महँ उदधि सखी
लोचन उमह्यौ—३४७० ।

उमा—राजा स्त्री. [सं.] शिव की स्त्री, पार्वती ।

उमाकना—क्रि. अ. [सं. उ = नहीं + मंक = जाना]
नष्ट करना ।

उमाकिनी—वि. स्त्री. [हि. उमाकना] खोद कर फेंक देने-
वाली ।

उमागुरु—राजा पुं. [सं.] पार्वती के पिता हिमाचल ।

उमाचना—क्रि. स. [सं. उन्मचना] (१) ऊपर उठाना ।
(२) निकालना ।

उमाची—क्रि. स. [हिं. उमाचना] निकाली है ।

उमाधव—राजा पुं. [सं.] पार्वती के पति, शिव ।

उमापति—राजा पुं. [सं.] महादेव, शंकर, शिव । उ.—
यहै कहहि पति देहु उमापति गिरिधर नन्द-कुमार
—७६६ ।

उमाह—राजा पुं. [सं. उद् + माह = उमगाना, उत्साहित
करना] उत्साह, उमंग ।

उमाहना—क्रि. अ. [हि. उमहना] (१) उमड़ना (२) उमंग
में आना ।

क्रि. स.—वेग से बढ़ाना ।

उमाहल—वि. [हिं. उमाह] उमङ्गयुक्त, उत्साहित । उ.—
ब्रज घर घर अति होत कोलहल । ग्वाल फिरत
उमँगे जहँ तहँ सब अति आनन्द भरे जु उमाहल ।

उमेठन—राज्ञा स्त्री. [स. उद्वेष्ठन] ऐंठन, बल, मरोड़।

उमेठी—वि. [हिं. उमेठना] (१) ऐंठी हुई, अप्रसन्न।
उ.—भामिनि आजु भवन में बैठी। मानिक निपुन बनाय नीकन मे धनु उपमेय उमेठी—सा. ११२।
(२) इतराती हुई, गर्व भरी। उ.—अंगदान बल कों दे बैठी। मन्दिर आजु आपने राधा अन्तर प्रेम उमेठी—सा १००।

उमेल—राज्ञा पुं. [स. उन्मीलन] वर्णन।

उमेलना—क्रि. स. [स. उन्मीलन] (१) खोलना, प्रकट, करना। (२) वर्णन करना।

उये—क्रि. अ. [स. उद्गमन, पा. उग्वन, हि. उगना]
उदय हुए, प्रकटे, उगे। उ.—नन्दनद न मुख देखौ माई। अग-अंग छवि मनहु उये रवि, ससि अरु समर लजाई—६२६।

उयौ—क्रि. अ. [हिं. उदयन, उअना] उदय हुआ, उगा।

उरग, उरंगम—राज्ञा पुं. [स.] साँप।

उर—संज्ञा पुं. [स. उरस्] (१) वक्षस्थल, छाती। उ.—
(क) भृगु कौ चरन गखि उर ऊपर बोले बचन सकल सुखदाई—१-३। (ख) दनुज दरथौ उर दरि सुरसौई—१-६।

मुहा.—उर आनना या लाना—छाती से लगाना, आलिंगन करना। लियो उर लाई—छाती से लगा लिया। उ.—महाराज कहि श्री मुख लियो उर लाई—२६१६।

(२) हृदय, मन, चित्त।

मुहा.—उर आनना या धरना—ध्यान करना, विचारना। उर धरना—ध्यान में रखना। उर धरी—मन में सोचा, निश्चय किया। उ.—सदा सहाय करी दासनि की, जो उर धरी सोइ प्रतिपारी—१-१६०।

उरई—संज्ञा स्त्री. [सं. उशीर] खस।

उरकना—क्रि. अ. [हि. रुकना] ठहरना।

उरग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साँप।

मुहा.—भई रीति हठि उरग छछूँदर—साँप

छछूँदर की गति होना, दुविधा या अजमंजस में पड़ना। उ.—जब वह सुरति होति है बात। सुनौ मधुप या वेदन कीरति मन जानै कै गात। रहत नहीं अतर अति राखे कहत नहीं कहि जात। भईरीति हठि उरग छछूँदरि छाँडै बनै न खात—३१२७।

(२) वेणी, चोटी, (क्योंकि इसकी उपमा साँप= उरग से दी जाती है।) उ.—हरि उर मोहनि बेलि लसी। तापर उरग असित तब सोभित पूरन अस ससी—सा. उ. २५।

उरग इंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] सर्पराज, वासुकी। उ.—
उरग-इंद्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजै—१-६६।

उरगना—क्रि. स. [सं. ऊरीकरण] मानना, स्वीकारना।

उरगाद—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड।

उरगारि—संज्ञा पुं. [स. उरग + अरि] साँप का शत्रु, गरुड।

उरगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. उरगी, हि. उरगिनी] सर्पिणी, नागिनी। उ.—सूर-प्रभु के बचन सुनत, उरगिनी कह्यौ, जाहि अब क्यों न, मति भई भरनी—५५१।

उरज—संज्ञा पुं. [सं. उरोज] कुच, स्तन। उ.—(क) दै-दै दगा बुलाइ भवन मै भुज भरि भेटति उरज कठोरी—१०-३०५। (ख) उरज भँवरी भँवर मानों मीन मनि की काति—१४१६।

उरजात—संज्ञा पुं. [सं. उरस् + जात] कुच, स्तन।

उरभना—क्रि. अ. [हि. उलभना] फँसना, अटकना।

उरभाई—क्रि. अ. [हि. उलभना] उलभकर, गुँथकर, फँसकर। उ.—मन चुभि रही माधुरी मूरति अंग अंग उरभाई—३३१७।

उरभाना—क्रि. स. [हि. उलभना] फँसाना, अटकाना।

उरभानो—क्रि. स. [हिं. उलभना] उलभ गया, फँसा, लिप्त हुआ। उ.—नवकिसोर मोहन मृदु मूरति तासों मन उरभानो—३०६४।

उरभि—क्रि. अ. [हि. उलभना] फँसकर, अटककर, उलभकर। उ.—पग न इत उत धरन पावत, उरभि मोह सिवार—१-९९।

उरभूयौ—क्रि. अ. भूत. [हि. उलभना] (१) उलभी, फँसी, अटकी । उ.—मोह्यौ जाई कनक-कामिनि-रस ममता-मोह बढ़ाई । जिह्वा-स्वाद मीन ज्यौ उरभूयौ, सूभी नहीं फँदाई—१-१४७ । (२) काम में फँस गया, लिस हुआ, लगा रहा । उ.—बात-चक्र-बासना प्रकृति मिलि, तन तन तुच्छ गह्यौ । उरभूयौ विवस कर्म-निरअंतर, लमि सुख-सरनि चह्यौ—१-१६२ ।

उरभे—क्रि. अ. [हि. उलभना] लिपटे, उलभ गये । उ.—उरभे संग अंग अंग प्रति बिरह बेलि की नाई—२८२१ ।

उरद—संज्ञा पुं. [सं. ऋद्ध, पा. उद्ध] एक अनाज । उ.—भूँग मसूर उरद चनदारी । कनक-फटक धरि फटकि पछारी—३६६ ।

उरध—क्रि. वि. [सं. ऊर्ध्व] ऊपर, ऊपर की ओर ।

उरधारना—क्रि. स. [हि. उधाड़ना] बिखराना, छितराना ।

उरधारी—वि. [हि. उधड़ना, उरधारना] बिखरी हुई । उ.—उरधारी लटै छूटी आनन पर भीजीं फुलेलन सों आली सँग केलि ।

उरवसी—संज्ञा स्त्री. [सं. उर्वशी] उर्वशी नाम की अप्सरा ।

उरमत—क्रि. अ. [हि. उरमना] लटकता है ।

उरमना—क्रि. अ. [सं. अवलंबन, प्रा. ओलंबन] लटकना ।

उरमाई—क्रि. स. [हि. उरमाना] लटकाया ।

उरमाना—क्रि. स. [हि. उरमना] लटकाना ।

उरला—वि. [हि. विरल] विरला, निराला ।

उरविज—संज्ञा पुं. [सं. उर्वी = पृथ्वी + ज = उत्पन्न] मंगल ग्रह ।

उरवी—संज्ञा स्त्री. [सं. उर्वी] पृथ्वी ।

उरहन—संज्ञा पुं. [हि. उरहना, उलाहना] उलाहना । उ.—(क) उरहन दिन देउँ काहि, काहै तू इतौ रिसाइ । नाहीं ब्रजबास, सास, ऐस बिधि मेरौ—१०-२७६ । (ख) ग्वालिनि उरहन कै मिस आई । नंदनंदन तन-मन हरि-लीन्हौ, बिनु देखे छिन रह्यौ न जाइ—१०-३०३ । (ग) वृथा ब्रज की नारि नित प्रति देख उरहन आन—सा. ११४ ।

उरहने—संज्ञा पुं. [हि. उरहना] उलाहना । उ.—आवति सूर उरहने कै मिस, देखि कुँवर मुसुकानी—१०-३११ ।

उरहनो, उरहनौ—संज्ञा पुं. [हि. उरहना, उलाहना] उलाहना । उ.—नैननि भुली सुमन मै हँसी नागरि उरहनौ देत रुचि अधिक बाढ़ी—१०-३०७ ।

उरस—वि. [स. कुरस] फीका, नीरस । उ.—तू कहि भोजन कर्यौ कहा री । बेसन मिले उरस मैदा सों अति कोमल पूरी है भारी ।

संज्ञा पुं. [स.] (१) छाती, वक्षस्थल । (२) हृदय, चित्त ।

उरसना—क्रि. अ. [हि. उड़सना] ऊपर नीचे करना, हिलाना । उ.—जसुदा मदन-गुनाल सोवायै । . . .

स्वॉस उदर उरसति (उरसित) यौ मानो दुग्ध-सिधु छवि पावै—१०-६५ ।

उरसिज—संज्ञा पुं. [स.] स्तन ।

उरस्क—संज्ञा पुं. [स.] वक्षस्थल, छाती ।

उरहना—संज्ञा पुं. [स. उपालम या अवलंबन, पा. ओलंबन, हि. उलाहना] उलाहना ।

उराना—क्रि. अ. [हि. ओर + आना (प्रत्य.)] समाप्त होना ।

उरारा—वि. [स. उरु] विस्तृत, विशाल ।

उराव—संज्ञा पुं. [स. उरस + आव] चाव, उमंग, चाह । उ.—जे पद-कमल सुरसरी परसे तिहूँ भुवन जस छाव । सूरस्याम पदकमल परसिहौँ मन अति बढ़्यौ उराव—२४८४ ।

उराहना—संज्ञा पुं. [स. उपालंम,] उलाहना ।

उराहनौ—संज्ञा पुं. [हि. उलाहना] उलाहना । उ.—(क) ओखै भरि लीनी उराहनौ देन लाग्यौ । तेरौ री सुवन मेरी, मुरली लै भाग्यौ ।—१०-२८४ । (ख) अब न देहि उराहनो जसुमतिहि आगे जाइ—२७५६ ।

उरोज—संज्ञा पुं. [सं.] कुच, स्तन, छाती ।

उरिन—वि. [सं. उच्छ्रय] ऋण से मुक्त ।

उरु—वि. [सं.] (१) लंबा-चौड़ा । (२) विशाल, बड़ा ।

संज्ञा पुं. [सं. ऊरु] जाँघ ।

उरुक्रम—वि. [सं.] (१) बली । (२) लंबे डग भरने वाला ।

संज्ञा पुं.—(१) वामन अवतार । (२) सूर्य ।

उरेह—संज्ञा पुं. [सं. उल्लेख] चित्रकारी ।

उरेहना—क्रि. स. [सं. उल्लेखन] (१) चित्र आदि सींचना, लिखना । (२) रँगना ।

उर्मिला—संज्ञा स्त्री. [सं. ऊर्मिला] सीताजी की छोटी बहन जो लक्ष्मण को ब्याही थीं ।

उर्वरा—संज्ञा पुं. [स.] (१) उपजाऊ भूमि । (२) पृथ्वी ।

वि.—उपजाऊ ।

उर्वशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक अप्सरा ।

उर्वी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी ।

उलंघना उल्लंघना—क्रि. स. [सं. उल्लंघन] (१) नाँघना, फाँदना, उल्लंघन करना । उ.—दसुधा त्रिपद करत नहि आलस तिनहि कठिन भयो देहरी उलंघना—१०-११३ । (२) न मानना, अवहेलना करना ।

उलंघि—क्रि. स. [हि. उलंघना] नाँघना, फाँदना, पार करना । उ.—कबहुँक तीनि पैग भुव नापत, कबहुँक देहरि उलंघि न जानी—१०-१४४ ।

उलंघी—क्रि. स. स्त्री. [हि. उलंघना] नाँघी, फाँदी, उल्लंघन की । उ.—घर अँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत । गिरि-गिरि परत, जात नहि उलंघी, अति सभ होत नँघावत—१०-१२५ ।

उलभन—संज्ञा पुं. [सं. अवलंघन, या ओरुज्जन] (१) अटकाव । (२) बाधा । (३) समस्या, चिंता ।

उलभना—क्रि. अ. [हिं. उलभन] (१) फँसना, अटकना । (२) लिपटना । (३) गुथ जाना । (४) लीन होना, रत होना । (५) प्रेम करना । (६) लड़ना, भगड़ना । विवाद करना । (७) कठिनाई में फँसना । (८) रुक जाना ।

उलभाना—क्रि. स. [हि. उलभना] (१) फँसाना, अटका देना । (२) अटकाये रखना ।

क्रि. अ.—उलभना, फँसना ।

उलभाव—संज्ञा पुं. [हि. उलभना] (१) अटकाव । (२) संभट । (३) समस्या, कष्ट ।

उलभौहाँ—वि. [हि. उलभना] (१) अटकानेवाला । (२) लुभाने वाला ।

उलटना—क्रि. अ. [सं. उल्लोठन] (१) औधा होना, पलटना । (२) घूमना, पीछे मुड़ना । (३) उलभ पड़ना, उमड़ आना । (४) अस्तव्यस्त हो जाना । (५) कुछ का कुछ हो जाना । (६) क्रुद्ध होना । (७) नष्ट होना । (८) अचेत होना, बेहोश होना । (९) इतराना ।

क्रि. स.—(१) औधा करना । (२) अस्तव्यस्त करना । (३) बात दोहराना । (४) खोद डालना । (५) नष्ट करना । (६) रटना, जपना ।

उलटहु—क्रि. अ. [हि. उलटना] लौट आओ, पलट आओ, वापस आजाओ । उ.—अब हलधर उलटहु काह तुम धावहु ग्वाल जोरि—२४४६ (३) ।

उलटाइ—क्रि. स. [हि. उलटाना] उलटाकर, चित करते, पेट के बल से पीठ के बल लिटा कर । उ.—महरिमुदित उलटाइ कै, मुख चूमन लागी—१०-६८ ।

उलटाना—क्रि. म. [हि. उलटना] (१) पीछे फेरना । (२) कुछ का कुछ कहना या करना ।

उलटावहु—क्रि. स. [हि. उलटाना] पलटाओ, लौटाओ, पीछे फेरो । उ.—बिहारीलाल आवहु आई छाक । भई अवार, गाइ बहुरावहु, उलटावहु दे हाँक—४६४ ।

उलटि—क्रि. अ. [हि. उलटना] (१) लौटकर, उलट कर, वापस आकर, पीछे मुड़कर, घूमकर । उ.—(क) उलटि पवन जब बावर जरियौ, स्वान चलयौ मिर भारी—१-२२१ । (ख) जैसे सरिता मिलै सिधु कौ उलटि प्रवाह न आवैहो—२८०४ । (ग) हम रुचिकरी सूर के प्रभु सौं दूजे मन न सुहाइ । उलटि जाहि अपने पुर माहीं बादिहि करत तराई—३११० । (घ) जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि न उलटि जगत मै नाचै—२-११ । (२) ऊपर-नीचे होकर, उलट पलट कर । उ.—नृत्यत उलटि गए अँग भूषण विधुरी अलक बाँधौ सँवारि—पृ. ३५२ (८४) । (३) ऊपर से नीचे गिर कर । उ.—मसि-सन्मुख जो धूरि उड़ानै, उलटि ताहि कै मुख परै—१-२३४ ।

उलटी—वि. [हि. उलटना] (१) औंधा, ऊपर का नीचे ।

(२) क्रम-विरुद्ध, इधर का उधर । (३) अनुचित, अंडबंड, अयुक्त । उ.—(क) इंद्री अजित, बुद्धि विषया रत, मन की दिन-दिन उलटी चाल—१-१२७ । (ख) हँसति रिसाति बोलावति बरजति देखहु उलटी चालहि—११८१ । (ग) अब समीर पावक सम लागत सब ब्रज उलटी चाल—३१५५ । (४) असमान, विरुद्ध, विपरीत ।

क्रि. वि.—लौटकर, पीछे की ओर पलटकर । उ.—जमुना उलटी धार चली बहि पवन थकित सुनि बेनु—पृ. ३४७ (५३) ।

मुहा.—उलटी परी—आशा के विरुद्ध हुआ, दूसरे को हानि पहुँचाने के प्रयत्न में स्वयं हानि उठायी या स्वयं नीचा देखा । उ.—अंबरीष को साप देन गयौ बहुरि पठायौ ताकौ । उलटी गाढ़ परी दुर्बासै दहत सुदरसन जाकौ—१-११३ । उलटी-पलटी—भली-बुरी, उचित-अनुचित । उ.—तब उलटी पलटी फबी जब सिसु रहे कन्हई । अब उहि कछु धोखैं करौ तौ छिनक माँह पति जाई—१०१० । उलटी-पुलटी—अंडबंड, बिना ठीक-ठिकाने । उ.—तुमहि उलटी कहौ तुमहि पुलटी कहौ, तुमहि रिस करति मै कछु न जानौ ।

उलटे—वि. [हि. उलटना, उलटा] (१) औंधे, पट, पेट के बल । उ.—(क) हँसे तात मुख हेरि कै, करि पग-चतुराई । किलकि भटकि उलटे परे, देवनि-मुनिगई १०-६६ । (ख) स्याम उलटे परे देखे, बढ़ी सोभा लहरि—१०-६७ । (२) पीछे करके, पीठ की ओर मोड़ कर । उ.—पलना पौढ़ाई जिन्हैं बिकट बाउ बाटै । उलटे भुज बाँधि तिन्हैं लकुट लिए डोटै—३४८ ।

उलटोइ—वि. सवि. [हि. उलटा + ही (प्रत्य.)] विपरीत, अयुक्त, अनुचित, विरुद्ध । उ.—उलटोइ ज्ञान सकल उपदेसत सुनि सुनि हृदय जरै—३३११ ।

उलटौ—वि. [हि. उलटा] उलटा, पट, पेट के बल । उ.—एक पाख त्रय मास कौ मेरौ भयौ कन्हई । पटकि रान उलटौ पर्यौ, मै करौ बधाई—१०-६८ ।

उलट्यौ—क्रि. स. [हि. उलटना] उलटा हो गया,

पीछे की ओर चला । उ.—अति थकित भयौ समीर । उलट्यौ जु जमुना-नीर—६२३ ।

उलथना—क्रि. अ. [सं. उत्थलन] ऊपर-नीचे होना । उलटना ।

क्रि. स.—उलट-पुलट करना ।

उलद—सज्ञा स्त्री. [हि. उलटना] वर्षा की झड़ी ।

उलदत—क्रि. स. [हि. उलटना] गिराता है, लौटाता है, बरसाता है ।

उलदना—क्रि. स. [हि. उलटना] गिराना, बरसाना ।

उलमना—क्रि. अ. [सं. अवलम्बन, पा. ओलम्बन = लटकना] लटकना, झुकना ।

उलसना—क्रि. म. [सं. उल्लसन] सोहना, शोभित होना ।

उलहना—क्रि. स. [सं. उल्लंभन] (१) निकलना, उगना । (२) हुलसना, प्रसन्न होना ।

संज्ञा पुं. [हि. उलाहना] उलाहना ।

उलाहना—संज्ञा पुं. [सं. उपालभन, प्रा. उवाहन] शिकायत, गिला ।

क्रि. स.—(१) गिला करना । (२) दोष देना ।

उलीचना—क्रि. स. [सं. उल्लुंचन] पानी फेंकना या उछालना ।

उलीचै—क्रि. स. [हि. उलीचना] उलीचती है, पानी फेंकती है । उ.—चिरिया कहा समुद्र उलीचै—१-२३४ ।

उलूक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उल्लू चिड़िया । (२) इंद्र ।

संज्ञा पुं. [सं. उलूक] लौ, लुक ।

उलूखल—संज्ञा पु. [सं.] (१) ओखली । (२) खल, खरल ।

उलेड़ना—क्रि. स. [हि. उडेलना] ढरकाना, एक पात्र से दूसरे में ढालना ।

उलेड़े—क्रि. स. [हि. उडेलना] उँड़ेले, ढरकाये । उ.—गारी होरी देत दिवावत । ब्रज में फिरत गोपिकन गावत । रुकि गए बाहन नारे पैँड़े । नयकैसर के माट उलेड़े ।

उल्लेख—संज्ञा स्त्री. [हि. कुलेल] उमंग, जोश ।

वि. - अलहड, बेपरवाह ।

उल्लंघन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लाँघना । (२) पालन न करना, नीति-विरुद्ध आचरण ।

उल्का—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रकाश, तेज । (२) लुक, लौ । (३) दिया, दीपक ।

उलकापात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तारा टूटना । (२) उत्पात, विघ्न ।

उल्लसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हर्ष करना । (२) रोमांच ।

उल्लापन—संज्ञा पुं. [सं.] खुशामद, ठकुरसुहाती ।

उल्लास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) झलक, प्रकाश । (२) हर्ष, उत्साह । उ.—हो चाहे तासो सब सीखबरसबस रिझवो कान । जागि उठी सुन सूर स्याम संग का उल्लास बखान—सा.—६८ । (३) एक अलंकार जिसमें एक के गुण-दोष से दूसरे में गुण-दोष आना वर्णित हो ।

उल्लासना—क्रि. स. [सं. उल्लासन] प्रकट करना, प्रकाशित करना ।

उल्लिखित—वि. [सं.] (१) लिखा हुआ । (२) खोदा हुआ । (३) चित्रित ।

उल्लेख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लिखना, लेख । (२) वर्णन, चर्चा । (३) एक अलंकार जिसमें एक वस्तु या व्यक्ति का अनेक रूपों में दिखायी पड़ना वर्णित हो । उ.—मुरली मधुर बजावहु मुख ते रुख जनि अनितै फेरो । सूरज प्रभु उल्लेख सबन को हौ पर पतनी हेरो—सा. ८ ।

उवत—क्रि. अ. [हि. उवना] उगता है, उदय होता है ।

उ.—अथवत आये गृह बहुरि उवत भान उठौ प्रान-नाथ महाजान मनि जानकी—१६०६ ।

उवना—क्रि. अ. [हि. उगना] उत्पन्न होना ।

उवनि—संज्ञा स्त्री. [हि. उवना] उदय, प्रकाश ।

उशीर—संज्ञा पुं. [सं.] खस ।

उषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रभात, ब्रह्मबेला । (२) सूर्योदय की लालिमा । (३) वाणासुर की पुत्री जो अनिरुद्ध को ब्याही थी ।

उषाकाल—संज्ञा पुं. [सं.] भोर, प्रभात ।

उष्णता—संज्ञा स्त्री. [सं.] गरमी, ताप ।

उष्णीष—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पगड़ी । (२) मुकुट ।

उष्ण—वि. [सं. उष्ण] तप्त, गरम । उ.—धर बिधंसि नल करत किरपि हल, बारि बीज बिथरै । सहि सन्मुख तउ सील उष्ण कौ से ई सुफल करै—१-११७ ।

संज्ञा पुं.—ग्रीष्म ऋतु ।

उस—सर्व [हि. वह] 'वह' का विभक्तियुक्त रूप ।

उसरना—क्रि. अ. [सं. उद् + सरण = जना] (१) दूर होना, चले जाना । (२) बीतना । (३) याद न रहना ।

उसरे—क्रि. अ. [हि. उमरना] बीतने पर, बीतती है ।

उ.—सघन कुंज ते उठे भोर ही स्याम घरे । जलद नवीन मिली मानो दामिनी बरषि निसा उसरे ।

उससत—क्रि. स. [हि. उससना] खिसकता है, हट जाता है । उ.—गोरे गात उमसत जो असित पट और प्रगट पहिचानै । नैन निरुट ताटंक की सोभा मंडल कविन बखानै ।

उससना—क्रि. स. [सं. उत् + सरण] (१) खिसकना, हट जाना । (२) साँस लेना ।

उससित—क्रि. स. [हि. उससना] साँस लेकर, दम लेकर, साँस से फूलकर । उ.—स्वास उदर उससित यौ मानौ दुग्ध सिधु छवि पावै—१०-६५ ।

उसारना—क्रि. स. [सं. उद् + सरण] (१) हटाना । (२) उखाड़ना ।

उसारौ—क्रि. स. [हि. उसारना] खोदना, तैयार करना, बनाना । उ.—नवग्रह परे रहे पाटी-तर, कूपहि काल उसारौ । सो रावन रघुनाथ छिनक मै, कियौ गीध कौ चारौ—९-१५६ ।

उसालना—क्रि. स. [सं. उत् + शालन] (१) उखाड़ना । (२) हटाना (३) भगाना ।

उसास—संज्ञा स्त्री. [सं. उत् + श्वास] लंबी साँस, ऊपर को चढती हुई साँस । उ.—(क) गई सकल मिलि संग दूरि लौ, मन न फिरत पुर-बाँस । सूरदास स्वामी के बिछुरत, भरि भरि लेत उसास—६-४१ । (ख) लेनि उसास नयन जल भरि भरि, धुकि सो परै धरि धरनी । सूर सोच जिय पोच निसाचर, रामनराम

की सरनी—६-७३ । (ग) त्रिजटी बचन सुनत वैदेही
अति दुख लेति उसास—६-८३ ।
उसासी—संज्ञा स्त्री. [हि. उसास] (१) ठंडी साँस, लंबी
साँस । उ.—कबहुँक आगे कबहुँक पाछे पग पग भरत
उसासी—१८१२ । (२) अवकाश, छुट्टी ।
उहँई—क्रि. वि. [हि. वहाँ + ई=ही] वहाँ ही, वहीं ।
उ.—सूरस्याम सुन्दर रस अटके हैं मनो उहँई छप
री—सा. उ. ७ ।
उहवाँ—क्रि. वि. [हि. वहाँ] वहाँ, उस जगह ।
उहाँ—क्रि. वि. [हि. वहाँ] वहाँ । उ.—उहाँ जाइ कुरु-
पति बल-जोग । दियौ छाँड़ि तन कौ संजोग—
१-२८४ ।
उहि—सर्व. [हि. वही] उसे, उन्हें । उ.—(क) दच्छ
तुम्हारौ मरम न पायौ जैसौ क्रियौ सो तैसो पायौ ।
अब उहि चाहिये फेरि जिवायौ—४५ । (ख) एक
बिटिनियाँ सँग मेरे ही, कारैं खाई ताहि तहाँ री ।
..... । कहत सुन्यौ नंद कौ यह बारौ, कछु पढ़ि कै
तुरतहि उहि भारी—६६७ ।
उहीं—सर्व. [हि. वही] वही, उसी । उ.—जसुमति बाल
बिनोद जानि जिय, उहीं ठौर लै आई—१०-१५७ ।
उहै—सर्व. [हि. वही] वही । उ.—फन-फन-निरतत नंद-
नंदन । ... । उहै काछनी कटि, पीतावर, सीस
मुकुट अति सोहत—५६५ ।

ऊ

ऊ—देवनागरी वर्णमाला का छठा अक्षर । ओष्ठ्य वर्ण ।
ऊँघ—संज्ञा स्त्री. [सं. अवाङ्=नीचे मुँह] ऊँघाई,
भूपकी ।
ऊँघना—क्रि. अ. [हि. ऊँघ] भूपकी लेना, नींद में
भूमना ।
ऊँच—वि. [सं. उच्च] (१) ऊँचा, ऊपर उठा हुआ ।
(२) बड़ा, श्रेष्ठ, उत्तम । उ.—अंबरीष, प्रह्लाद,
नृपति बलि, महा ऊँच पदवी तिन पाई—१-२४ ।
(३) कुलीन, उत्तम कुल का ।
यौ.—ऊँच-नीच—(१) छोटा-बड़ा । उ.—ऊँच-
नीच हरि गिनत न दोइ—१-२ । (२) भला-बुरा ।
ऊँचा—वि. [सं. उच्च] (१) ऊपर उठा हुआ । (२)
श्रेष्ठ, बड़ा । (३) जोर का, तेज ।

ऊँचाई—संज्ञा स्त्री. [हि. ऊँचा + ई (प्रत्य.)] (१)
ऊपर की ओर का विस्तार, उठान । (२) बड़ाई,
श्रेष्ठता ।
ऊँची—वि. [हि. ऊँचा] तेज, तीव्र । उ.—खवन
सुनाइ गारि दै गावति ऊँची तानि लेति प्रिय
गोरी—२४४८ (२) ।
ऊँचे, ऊँचै—क्रि. वि. [हि. ऊँचा] (१) ऊँचे पर,
ऊपर की ओर । (२) जोर से, जोर देकर । उ.—
सतगुरु कौ उपदेस हृदय धरि, जिन भ्रम सकल
निवारयौ । हरि भजि, बिलंब छाँड़ि सूरज सठ,
ऊँचें टेरि पुकारयौ—१-३३६ । (३) लंबे, बड़े,
देर तक खिंचनेवाले । उ.—उर ऊँचे उसाँस
तृणावर्त तिहि सुख सकल उडाइ दिये—३०७३ ।
ऊँचो—वि. [हि. ऊँचा] ऊँचा, ऊपरी ।
क्रि. वि.—ऊपर की ओर । उ.—भूसुतत्रिय
तलफत सफरी भो वार हीन तन हेरो । 'सूरज'
चितै नीच जल ऊँचो लयौ बिचित्र बसेरौ—
सा. ४२ ।
ऊँछ—संज्ञा पुं. [देश.] एक राग का नाम । उ.—
ऊँछ अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन ।।
करत बिहार मधुर केदारो सकल सुरन सुख दीन ।
ऊँट—संज्ञा पुं. [सं. उट्ट, पा. उट्ट] एक ऊँचा
चौपाया जो रेगिस्तानों में सर्वत्र होता है और
जिसके बिना वहाँ के निवासियों का काम कदाचित्
चल ही नहीं सकता । भारी बोझ लादने के यह
काम आता है । कवियों ने ऐसे लोगों की उपमा
इससे दी है जो नीरस जीवन का भार भर ढोया
करते हैं, कोई सार्थक काम नहीं करते । उ.—
सूरदास भगवंत भजन-बिनु मनौ ऊँट बृष-भैसों
—२-१४ ।
ऊँड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कुंड] तहखाना ।
वि.—गहरा, गम्भीर ।
ऊ—संज्ञा पुं.—(१) महादेव । (२) चंद्रमा ।
अव्य.—भी ।
सर्व.—वह ।
ऊअना—क्रि. अ. [सं. उदयन, हिं. उगना] उगना,
उदय होना ।

ऊआ—क्रि. अ. [हिं ऊअना] उगा, उदित हुआ ।

ऊआबाई—वि. [हि. आव, बाव । सं. वायु=हवा]
अंडबंड, निरर्थक, व्यर्थ । उ.—जनम गँवायौ
ऊआबाई । भजे न चरन-कमल जहुपति के, रह्यौ
बिलोकत छाई —१-३२८ ।

ऊक—संज्ञा पुं. [सं. उल्का] (१) दूटता तारा,
उल्का । (२) आँच, ताप, ताव । उ.—हृदय जरत
है दावानल ज्यो कठिन बिरह की ऊक ।

ऊकना—क्रि. अ. [हि. चूकना का अनु.] चूकना,
भूल जाना ।

क्र. स.—छोड़ जाना ।

क्रि. स. [सं. उल्का, हि. ऊक] जलाना,
भस्म करना ।

ऊख—संज्ञा पुं. [सं. इक्षु] ईख, गन्ना । उ.—
हरि-स्वरूप सब घट यौ जान्यौ । ऊख माहि उरौ
रस है सान्यौ—३-१३ ।

संज्ञा पुं. [सं. उष्ण] गर्मी, ताप ।

वि.—गरम, तप्त ।

ऊखम—संज्ञा स्त्री. [सं. ऊष्म] गरमी, तपन ।

ऊखल—संज्ञा पुं. [सं. उलूखल] (१) ओखली, काँडी,
हावन । (२) एक तरह का पत्थर ।

ऊखा—संज्ञा स्त्री. [सं. ऊष्मा] आग, ताप । उ.—और
दिनन ते आहु दहो हम ऊखा ल्याई । देखत ज्योति
बिलास दई मुख बचन डिठाई—११४१ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. उपा.] प्रातःकाल, उषाकाल ।

ऊगत—क्रि. अ. [हि. उगना] उदय होकर, उदय होते
होते । उ.—मानिक मध्य पास चहुँ मोती पंगति
पंगति भलक सिदूर । रेग्यो जनु तम तट तारागन
ऊगत घेर्यौ सूर—१८९६ ।

ऊगना—क्रि. अ. [हि. उगना] उदय होना, निकलना ।

ऊज—संज्ञा पुं. [सं. उद्धन] उपद्रव, अधम ।

ऊजड़—वि. [हि. उजड़ना] उजड़ा हुआ, सूनसान, बिना
बसा हुआ ।

ऊजर—वि. [हि. उजला] सफेद, उजला ।

वि. [हि. उजड़ना] उजाड़, बिना बसा हुआ ।

उ.—ज्यो ऊजर खेरे के देवन को पूजै को मानै । त्यों

हम बिनु गोपाल भए ऊधो कठिन प्रीति को जानै
—३३०६ ।

ऊजरा—वि. [हि. उजला] सफेद, उजला ।

ऊटना—क्रि. अ. [हि. औटना=खलबलाना] (१) उत्सा-
हित होना, उमंग में आना । (२) मोच-विचार
करना ।

ऊटपटाँग—वि. [हि. ऊँट + पर + टाँग] (१) बेढंगा,
बेमेल, टेढ़ा-मेढ़ा । (२) व्यर्थ, निरर्थक ।

ऊढ़ना—क्रि. स. [सं. ऊढ़] विचार करना ।

ऊढ़ना—क्रि. अ. [सं. ऊढ़ = सदेह पर विचार] सोच-
विचार करना, अटकल लगाना ।

ऊढ़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विवाहिता स्त्री । (२)
वह परकीया नायिका जो पति को छोड़ कर किसी
अन्य से प्रेम करे ।

ऊत—वि. [सं. अपुत्र] (१) जिसके पुत्र न हो, निपूता ।
(२) उजड़ ।

ऊतर—संज्ञा पुं. [सं. उत्तर] (१) उत्तर, जबाब । (२)
बहाना ।

ऊतला—वि. [हि. उतावला] चंचल, तेज ।

ऊतिम—वि. [सं. उत्तम] अच्छा, श्रेष्ठ ।

ऊदा—वि. [अ. ऊद अथवा फा. कबूद] बैंगनी रंग का ।
ऊधम—संज्ञा पुं. [सं. उद्धम=ध्वनित] उपद्रव, उत्पात,
हल्ला-गुल्ला ।

ऊधमी—वि. [हि. ऊधम] उत्पाती, उपद्रवी ।

ऊधव, ऊधो—संज्ञा पुं. [सं. उद्धव] श्रीकृष्ण के सखा एक
यादव जिन्हें ज्ञान का गर्व था और जो गोपियों को
ज्ञानोपदेश देने गये थे ।

ऊन—संज्ञा पुं. [सं. ऊर्ण] (१) भेड़ बकरी के रोएँ जिन
से गरम कपड़े बनते हैं । (२) दुख, ग्लानि ।

वि. [सं.] (१) कम, थोड़ा । (२) तुच्छ, हीन ।

ऊनता—संज्ञा स्त्री. [सं. ऊन] (१) कमी, घटी । (२)
हीनता, तुच्छता ।

ऊना—वि. [सं. ऊन] (१) कम । (२) हीन ।

ऊनी—संज्ञा स्त्री. [सं. ऊन] उदासी, ग्लानि ।

ऊनो, ऊनौ—वि. [सं. ऊन] (१) कम, थोड़ा । (२) तुच्छ,
हीन ।

ऊपर—क्रि. वि. [सं. उपरि] (१) ऊँचाई पर । (२) आधार पर, सहारे पर । उ.—(क) भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर बोले बचन सकल सुखदाई—१-३ । (ख) —मेरे हेत दुखी तू होत । वै अधर्म तो ऊपर होत —१-२६० । (ग) तुव ऊपर प्रसन्न मै भयौ—६-३ । (घ) दूत पठाइ देहु ब्रज ऊपर नन्दहिं अति डरपावहु —५२२ । (३) प्रकट में, प्रत्यक्ष में । (४) अतिरिक्त, पर ।

मुहा.—ऊपर (से)—इसके अतिरिक्त, इस के साथ-साथ । उ.—जय ऊरु वजय वर्म कह कीन्हौ, ब्रह्म सराप दिवायौ । कसूर-जो न ता ऊपर दीन्ही धर्म-उछेद करायौ—१-१०४ । ऊपर ऊपर—बिना किसी को बताये या जताये ।

ऊपरी—वि. [हि. ऊपर] (१) ऊपरी । (२) बाहरी, दिखाऊ ।

ऊब—संज्ञा स्त्री. [हि. ऊभ=हौसला, उमंग] उत्साह, उमंग । उ.—नननंदन लै गए हमारी अब ब्रज कुल की ऊब । सूरयाम तजि आरे सूझे ज्यो खेरे की दूब —३३६१ ।

संज्ञा स्त्री [हि. ऊबना] घबराहट, उद्वेग ।

ऊबट—संज्ञा पुं. [सं. उद् = बुरा + बर्तम, प्रा. बट्ट = मार्ग] अटपट रास्ता, कुमार्ग ।

वि — ऊँचा-नीचा ।

ऊबड़-खाबड़—वि. [अनु] जो समतल न हो, ऊँचा-नीचा, अटपट ।

ऊबना—क्रि. अ. [सं. उद्वेजन, पा. उब्बिजन, पु. हिं. उवियाना] उकताना, घबराना ।

ऊबर—संज्ञा पुं. [हि. उबरना] उबरने का भाव या क्रिया ।

वि — बचा हुआ, शेष ।

ऊबरना—क्रि. अ. [हि. उबरना] उबरना ।

ऊबरी—क्रि. अ. [हि. उबरना] मुक्त हुई, बच गयी, छुटकारा पा गयी । उ.—बड़ी करबरी टरी, सोंप सौ ऊबरी, बात कै बहत तोहि लगति जरनी—६६८ ।

ऊभ—वि. [हि. ऊभना=खड़ा होना] ऊँचा, उठा हुआ ।

संज्ञा स्त्री. [हि. ऊब] (१) उद्वेग, घबराहट । (२) हौसला, उमंग । (३) उमस, गरमी ।

ऊभचूभ—संज्ञा स्त्री. [हि. ऊभ] पानी में डूबना-उतराना ।

ऊभट—संज्ञा पुं. [हिं. ऊबड़, ऊबट] ऊबड़-खाबड़ मार्ग, कुमार्ग ।

वि.—ऊँचा-नीचा, अटपटा ।

ऊभना—क्रि. अ. [सं. उद्भवन = ऊपर होना] उठना, खड़ा होना ।

क्रि. अ.—[हि. ऊबना] घबराना, उकताना ।

ऊभीं—क्रि. अ. [हि. ऊभना] उठीं, उमड़ पड़ीं, खड़ी हुई । उ.—करुना करति मँदोदरि रानी । चौदहसइस सुन्दरी ऊभी (उमरी) उठै न कंत महा अभिमानी —६-१६० ।

ऊमक—संज्ञा स्त्री. [सं. उमंग] भोक, उठान, भूषेटा, वेग ।

ऊमना—क्रि. अ. [देश] उमड़ना, उमगना ।

ऊमर, ऊमरि—संज्ञा पुं. [सं. उदुंबर] गलर ।

ऊमस—संज्ञा स्त्री. [हि. उमस] गरमी, उमस ।

ऊर—संज्ञा पुं. [देश] ओर, मीमा ।

ऊरज—संज्ञा पुं. [हि. उरोज, उरज] स्तन, कुच । उ.—चारु वपोल पीक कहाँ लागी ऊरज पत्र लिखाई —२१२९ ।

वि. [सं. ऊर्ज] बली, शक्तिशाली ।

संज्ञा पुं. बल, शक्ति ।

ऊरध—वि. [सं. ऊर्ध्व] (१) ऊँचा, ऊपर का । उ.—(क) ऊरध स्वाँस चरन गति थाक्यो, नैनन नीर न रहाइ—२६५० । (ख) परी रहत ना बहत कबहू बछु भरि भरि ऊरध स्वाँस—रा०-२६ । (२) खड़ा ।

क्रि. वि.—ऊपर, ऊपर की ओर । उ.—अदभुत राम नाम के अंक ।.....। मुनि-मन-हंस-पन्छ-जुग, जाकै बल उड़ि ऊरध जात—१-६० ।

ऊरधरेता—वि. [सं. ऊर्ध्वरेता] इंद्रियों को वश में रखनेवाला, ब्रह्मचारी ।

संज्ञा पुं.—योगी ।

ऊरु—संज्ञा पुं. [सं.] जानु, जंघा ।

ऊर्ज—वि. [सं.] बली ।

संज्ञा पुं.—(१) बल । (२) एक काव्यालंकार

जिसमें सहायकों के न रहने पर भी उत्तम बने रहने या घमंड न करने का वर्णन रहता है।
 उर्जस्वल, उर्जस्वित, उर्जस्वी—वि. [सं.] (१) बली, शक्ति शाली। (२) प्रतापी, अोजयुक्त।
 उर्जित—वि. [सं. ऊर्ज] बली, शक्तिशाली।
 उर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] ऊन।
 ऊर्ध्व—वि. [सं. उद्ध्व] (१) उँची, उपर की। उ.—
 वहा पुरान जु पढे अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूँटे
 —२-१६। (२) खड़ा।
 क्रि. वि.—ऊपर की ओर।
 ऊर्ध्वगामी—वि. [सं.] (१) ऊपर की ओर जानेवाला।
 (२) युक्त।
 ऊर्ध्वद्वार—संज्ञा पुं. [सं.] दसवाँ द्वार, डहरंध्र।
 उर्ध्वबाहु—संज्ञा पुं. [सं.] भुजा उठाये रह कर तप करनेवाले तपस्वी।
 उर्ध्वरेता—वि. [सं.] इन्द्रियों को दश में रखनेवाला, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय।
 रक्षा पुं—(१) शिव। (२) भीष्म। (३) हनुमान (४) योगी।
 उर्मि, उर्मि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लहर, तरंग। (२) पीड़ा, दुख।
 उर्मिमाली—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र।
 उषा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रभात। (२) पौ फटने की लाली। (३) वाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को व्याही थी।
 उषाकाल—संज्ञा पुं. [सं.] प्रातःकाल।
 उषापति—संज्ञा पुं. [सं.] श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध।
 ऊष्म—संज्ञा पुं. [सं.] गरमी, तपन।
 वि.—गरम।
 ऊष्मवर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] श, ष, स और ह।
 ऊसर—संज्ञा पुं. [सं. ऊपर] वह भूमि जिसमें रेह की अधिकता के कारण कुछ न जमें। उ.—(क) एक अश पृथ्वी कौ दयौ। ऊसर तामै तातै भयौ—६-५। (ख) या ब्रज कौ बसिबौ हम छाँड़्यौ सो अपनै जिय जानी। सूरदास ऊसर की बरषा थोरे जल उतरानी
 —१०-३३७।

ऊह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विचार, अनुमान। (२) तर्क।
 अव्य.—दुख या आश्चर्यसूचक शब्द।
 ऊहा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोच-विचार। (२) तर्क-वितर्क।
 ऊहापोह—संज्ञा पुं. [सं. ऊह + अगोह] तर्क-वितर्क, सोच-विचार।

ऋ

ऋ—देवनागरी वर्णमाला का सातवाँ स्वर। इसका उच्चारण स्थान मूर्द्धा है।
 संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) देवताओं की माता अदिति। (२) बुराई, निंदा।
 ऋक्—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वेदमंत्र। (२) ऋग्वेद।
 ऋक्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धन। (२) सोना, स्वर्ण। (३) प्राप्त संपत्ति।
 ऋक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भालू। (२) नक्षत्र।
 ऋक्षपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भालुओं का नायक जांबवान। (२) नक्षत्रों का राजा चंद्रमा।
 ऋग्वेद—संज्ञा पुं. [सं.] चार वेदों में एक।
 ऋचा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वेदमंत्र, स्तुति। उ.—ब्रज सुन्दरि नहि नारि ऋचा स्तुति की सब आहि
 —१८६१।
 ऋच्छ—संज्ञा पुं. [सं. ऋक्ष] (१) भालू। (२) नक्षत्र।
 ऋच्छराज—संज्ञा पुं. [सं. ऋक्ष + राज] जांबवान।
 उ.—ऋच्छराज वह मनि तासो लै जाबवती को दीन्ही—१० उ.—२६।
 ऋजु—वि. [सं.] (१) जो टेढ़ा न हो, सीधा। (२) जो कठिन न हो, सरल। (३) सरल स्वभाववाला। (४) अनुकूल, प्रसन्न।
 ऋजुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सीधापन। (२) सुगमता। (३) सिध्दाई, सज्जनता।
 ऋण—संज्ञा पुं. [सं.] उधार, कर्ज।
 ऋणी—वि. [सं. ऋणिन्] (१) जिसने ऋण लिया हो। (२) उपकार माननेवाला।
 ऋत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मोक्ष। (२) जल। (३) कर्मफल।
 वि.—(१) दीप्त। (२) पूजित।
 ऋतु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रकृति की स्थिति के अनुसार वर्ष के विभाग। (२) यज्ञ। (३) रजोदर्शन के बाद का समय।

ऋतुचर्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] ऋतु के अनुसार खान-पान की व्यवस्था ।

ऋतुराज—संज्ञा पुं. [सं.] वसन्त ऋतु ।

ऋत्विज—संज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ करनेवाला ।

ऋद्ध—वि. [सं.] संपन्न, समृद्ध ।

ऋद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] समृद्धि, बढ़ती ।

ऋन—संज्ञा पुं. [सं. ऋण] (१) उधार, कर्ज । उ.—सबै कूर मोसौ ऋन चाहत कहौ वहा तिन दीजै—१-१९६ ।

(२) ऋण, उपकार । उ. जौ पै नाही मानत प्रभु बचन ऋन । तौ का कहिए सूर स्याम सिन—३३९४ ।

ऋनिया—वि. [सं. ऋणी] ऋणी, देनदार ।

ऋनी—वि. [सं. ऋणी] (१) जिसने ऋण लिया हो ।

(२) उपकार माननेवाला, उपकृत, अनुगृहीत । उ.—गर्भ देवकी के तन धरिहौ जसुमति को पय पीहौ । पूरव तप बहु कियो कष्ट करि इनको बहुत ऋनी हौ । —११८३ ।

ऋषभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बैल । (२) राम की सेना का एक बंदर । (३) संगीत के सात स्वरों में से दूसरा ।

ऋषभदेव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजा नाभि के पुत्र जो विष्णु के चौबीस अवतारों में माने जाते हैं । (२) जैन धर्म के आदि तीर्थाकर ।

ऋषभ-वज्र—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव ।

ऋपि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वेदमंत्रों का काश करनेवाला । (२) तत्त्वज्ञानी ।

ए

ए—देवनागरी वर्णमाला का आठवाँ स्वर । 'अ' और 'इ' के संयोग से बना है । कंठ और तालु से इसका उच्चारण होता है ।

ऐचपेच—संज्ञा पुं. [फा. पेच] (१) उलझन । (२) दौवपेच ।

ऐँडा-बेड़ा—वि. [हि. बेड़ा] अंडबंड, उलटा सीधा ।

ऐँडुआ—संज्ञा पुं. [हि. ऐडना] गेडुरी, कुंडली, बिडआ ।

ए—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु ।

अव्य.—एक अव्यय जिसका प्रयोग संबोधन के लिए किया जाता है ।

सर्व. [सं. एषः] यह, ये । उ.—(क) छौंड़त छिन में ए जो सरीरहि गहि कै ब्यथा जात हरि लैन

—२७६८ । (ख) लोचन लालच ते न टरै । हरि-मुख ए रग सग भिधे दाधौ फिरैं जरैं—२७७० ।

एई—सर्व. सवि. [सं. एष. + हि. ही] यह ही, ये ही ।

उ.—(क) अघा बका संहारन ऐई असुर संहारन आए—२५८१ । (ख) एई माधव जिन मधु मारे —२५६८ ।

एऊ—सर्व. सवि. [सं. एष. + हि. ऊ (प्रत्य.)] यह भी, ये भी । उ.—ताही ते मोहन विरहिनि को एऊ ढीठ करे—२८४१ ।

एकंग, एकंगी—वि. [हि. एक + अंग] एक तरफ का, एक पक्ष का ।

एकंन—वि. [सं. एकांत] जहाँ कोई न हो, सूना ।

एकांत—वि. [सं.] (१) अत्यन्त, नितांत । (२) अलग, पृथक ।

संज्ञा पुं. [सं.] निर्जन, एकांत । उ.—बैठि एकांत जेहन लगे पंथ सिव, मोहिनी रूप कब दै दिखाई —८-१० ।

एक वि. [सं.] (१) इकाइयों में सबसे पहली संख्या । (२) अकेला, अद्वितीय । उ.—प्रभुकौ देखौ एक सुभाई—१-८ । (३) एक ही प्रकार का, समान, तुल्य ।

मुहा.—ए टक लागि आशा रही—बहुत समय से आसरा बँधा था । उ.—जन्म ते एकटक लागि आमारही विगय विष खात नहि तृप्ति मानी—१-११० ।

एक अॉक (या अंरु)—पक्की बात । एकटक—दृष्टि गडाकर । एकताक—समान, बराबर । उ.—सखन संग हरि जैवत छाक । प्रेम सहित मैया दै पठयौ सबै बनाए

हैं एरु (इरु) ताक—४६६ । एकतार—(१) वि.—समान रूप-रंग-नाम का । (२) क्रि. वि.—सम भाव से । एरु एरु कर—अलग अलग, अकेले-अकेले ।

उ—आजु हौ एक-एक करि टरिहौं । कै तुमही कै हमहीं, माधौ, अपने भरोसे लरिहौं—१-१३४ ।

एकचक्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य का रथ जिसमें एक ही चक्र माना गया है । (२) सूर्य ।

वि.—चक्रवर्ती ।

एरुचित—वि. [सं. एकचित्त] (१) स्थिर या एकाग्र मन का (२) समान विचार का ।

एकछत्र—वि. [सं.] (१) अपने पूर्ण अधिकार से युक्त, निष्कण्टक ।

क्रि. वि.—प्रभुत्व के साथ ।

एकज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शूद्र । (२) राजा ।

वि. [सं. एक + एव, प्रा. ज्जेव] केवल एक, एक मात्र, अकेला ।

एकटक—वि. [हि.] जो पलक न भुपाये, अपलक ।

एकठी—वि. [हि. इकठा] एक स्थान पर, एक ठौर, एकत्र ।
उ.—इतहुँकी उतहुँकी सबै जुरी एकठी कहति राधा कहाँ जाति है री—१५२६ ।

एकत—क्रि. वि. [सं. एकत्र, प्रा. एवत] एक जगह इकठा, एकत्र ।

एकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मेल, एका । (२) समानता ।

एकतान—वि. [सं.] लीन, एकाग्रचित्त ।

एकत्र—क्रि. वि. [सं.] इकठा, एक जगह ।

एकत्रित—वि. [सं.] जो इकठा हुआ हो, जुटाया हुआ ।

एकदंत—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश ।

एकदेशीय—संज्ञा पुं. [सं.] एकही स्थान या समय से संबंध रखनेवाला, जो सदा न घटे ।

एकन, एकनि—सर्व. [सं. एक+हि. नि] किसी-किसी, कोई-कोई । उ.—एकनि कौ दरसन ठगै, एकनि के संग सोवै (हो) । एकनि लै मंदिर चढै, एकनि बिरचि बिगोवै (हो)—१-४४ ।

एकनिष्ठ—वि. [सं.] एक ही पर श्रद्धा या निष्ठा रखनेवाला ।

एकरस—वि. [सं.] एक ढंग का, सदा एक-सा रहने वाला, अपरवर्तनीय । उ.—(क) सिसु, किसोर, बिरबौ तनु होइ । सदा एकरस आतम सोइ—७-२ ।
(ख) अज-अनीह-अबिरुद्ध-एकरस, यहै अधिक ये अवतारी—१०-१७१ ।

एकरूप—वि. [सं.] (१) समान रूप-रंग का, एक सा, एक समान । (२) ज्यों का त्यों, जैसे का तैसा ।
उ.—एक रूप ऊधो फिरि आए हरि चरनन सिर नाथौ ।

एकरूपता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समानता । (२) सायुज्य मुक्ति जिसमें जीवात्मा परमात्मा से मिल जाता है ।

एकल—वि. [हि. एक] (१) अकेला । (२) एकता ।
(३) बेजोड़ ।

एकला—वि. [हि. एक] अकेला ।

एकलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव का एक नाम । (२) कुबेर ।

एकसर—वि. [हि. एक+सर(प्रत्य.)] (१) अकेला । (२) एक पक्षे या पक्ष का ।

एकहिं—वि. [सं. एक+हि. ही (प्रत्य.)] केवल एक, एक ही । उ.—सूरदास कंचन अरु काँचहि, एकहि धगा पिगोयौ—१-४३ ।

एकांगी—वि. [सं.] (१) एक ओर का, एकपक्षीय । (२) हठी ।

एकांत—वि. [सं.] (१) अति, अत्यन्त । (२) अलग, अकेला ।

संज्ञा पुं.—सूना स्थान ।

एकांतिक—वि. [सं. एकांत] एक स्थान से सम्बन्ध रखनेवाला, एकदेशीय ।

एका—संज्ञा पुं. [सं. एक] मिलकर रहना, एकता ।

एकाएकी—क्रि. वि. [हि. एक] सहसा, अचानक ।
वि. [सं. एकाकी] अकेला, एकाकी ।

एकाकी—वि. [सं. एकाकिन्] अकेला ।

एकाक्ष—वि. [सं.] एक आँख का, काना ।

संज्ञा पुं.—(१) शुक्राचार्य । (२) कौआ ।

एकाग्र—वि. [सं.] (१) एक ओर लगा हुआ । (२) एक ओर ध्यान रखनेवाला ।

एकात्मता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक होना । (२) एकता ।

एकादशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवीं तिथि । इस दिन वैष्णव मतावलम्बी व्रत रखते हैं ।

एकादस—वि. [सं. एकादश] ग्यारह ।

संज्ञा पुं.—(१) ग्यारह का संख्याबोधक अंक ।

(२) ग्यारहवीं राशि अर्थात् कुम्भ । इससे अर्थ निकला उरोज, स्तन । उ.—नवमी छोड़ अवर नहि ताकत दस निज राखै साल । एकादस लै मिलो बेगई

जानहु नवल रसाल—सा. २९ ।

एकादसी—संज्ञा स्त्री. [सं. एकादशी] प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवीं तिथि । इस दिन वैष्णव लोग अनाहार अथवा फलाहार करते हैं । उ.—एकादसी करै-निराहार—६-५ ।

एकै—वि. [हि. एक] एकही, केवल एक, निश्चित रूप से यही । उ.—(क) एकै चीर हुतौ मेरे पर, सो इन हरन चह्यौ—१-२४७ । (ख) मेरै मात-पिता-पति-बंधू, एकै टेक हरी—१-२५४ ।

एको—वि. [हि. एक] एक भी । उ.—(क) सूरदास प्रभु बिनु ब्रज ऐसो एको पल न सुहाइ—२५३८ । (ख) सूरस्याम देखत अनदेखत बनत न एको बीर—सा. ८२ ।

एकौ—सर्व. [स. एक + हि. औ (प्रत्य.)] एक भी । उ.—माया देखत ही जु गई । ना हरि-हित, न तू-हित, इनमै एकौ तौ न भई—१-५० ।

एकौभा—वि. [हि. एक, अकेला] अकेला ।

एडियनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [हि. एड़ी] ऐडियों की । उ.—नान्हीं एडियनि, फल बिब न पूजै—१०-१३४ ।

एड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. एडुक=हड्डी] पैर की गद्दी का पीछे की ओर निकला हुआ भाग ।

एत—वि. [सं. इयत्] इतना (अधिक), इतनी (अधिक मात्रा का) । उ.—(क) कहि धौ री तोहि क्यौ करि आवै, सिसु पर तामस एत—३४६ ।

एतदर्थ—क्रि. वि. [सं.] इसके लिए ।

वि.—इस काम के लिए बना हुआ ।

एतदेशीय—वि [सं.] इस देश का, इस देश से संबंधित ।

एता—वि. [हि. एत] इतना, ऐसा । उ.—तनक दधि कारन जसोदा एता कहा रिसाही ।

एतिक—वि. स्त्री. [हिं. एती = इतनी + एक] इतनी (अधिक), इस मात्रा की । उ.—जेतिक सैल-सुमेरु धरनि मै, भुज भरि आनि मिलाऊँ । सत समुद्र देऊँ छाती तर, एतिक देह बढ़ाऊँ—९-१०७ ।

एती—वि. स्त्री. [हि. एता] इतनी, ऐसी । (संख्या-वाचक) उ.—(क) एती करबर है हरी, देवनि करी सहाय । तब तै अब गाढी परी, मो भौ कछु न सुभाई—५८६ । (ख) एती केती तुमरी उनकी कहत बनाइ बनाइ—३३२४ ।

एते—वि. [हि. एता] (१) इतने (अधिक, संख्यावाचक) । उ.—गोंउ बसत एते दिवसनि मै, आजु कान्ह मै देखे—१०-७३० । (२) इप मात्रा के । उ.—हौ तो कहत तिहारे हित की एते मो कत भरमत—३३८७ ।

क्रि. वि.—इतने पर भी, ऐसा होने पर भी । उ.—एते पर नहि तजत अत्रोडी कपटी कंस कुचाली—२५६७ ।

एतै—वि. [सं. इयत्] इस मात्रा का, इतना । उ.—(क) कहत सूर धिरथा यह देही, एतौ कत दतरात—१-३१३ । (ख) तनक दधि कारनै यसोदा, एतौ कहा रिसाही । (ग) सो सपून परिवार चलावै एतो लोभी धृग इनही—पृ. ३२२ ।

एरी—अव्य. [सं. अयि, हि. हे, ऐ + री] एक संबोधन । उ.—(एरी) आनन्द सौ दधि मथति जसोदा, धमकि मथनियो घूमै—१०-१४७ ।

एला—संज्ञा स्त्री. [सं. एलाम्] इलायची ।

एवं—क्रि. वि. [सं.] ऐसा ही, इसी प्रकार ।

एव—अव्य. [सं.] (१) ही । (२) भी ।

एवमस्तु—यौ. वा. [सं. एवं] ऐसा ही हो (शुभाशीर्वाद) । उ.—एवमस्तु निज मुख बह्यौ पूरन परमानंद—१८६१ ।

एषणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] () इच्छा । (२) छानबीन । (३) खोज ।

एषणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] इच्छा ।

एह, एहा—सर्व. [सं. एषः] यह, ये । उ.—भक्तनि हित तुम धारी देह । तरिहैं गाइ-गाइ गुन एह—७-२ ।

वि.—यह ।

एहि—सर्व. [हि. एह + हि (प्रत्य.)] यही ।

वि.—यही, इसी । उ.—(क) एहि थर बनी

क्रीड़ा गज-मोचन और अनन्त कथा सुति गाई—

१-६ । (ख) भूसुत आइगो एहि बेर—सा. ५४ ।

एहु—सर्ग. [हि. एह] यह । उ.—समय बिचारि

मुद्रिका दीजौ, सुनौ मंत्र सुत एहु—९-७४ ।

एहो—अव्य. [हि. हे, हो] हे, ऐ । (सम्बोधन शब्द) ।

ऐ

ऐ—देवनागरी वर्णमाला का नवाँ स्वर । कंठ और तालु से इसका उच्चारण होता है ।

ऐचत—क्रि. स. [पुं. हि. हींचना, हिं ऐचना = खींचना] खींचता है । उ.—इत-उत देखि द्रौपदी टेरी । ऐचत बसन, हँसत कौरव-सुत, त्रिभुवननाथ सरन हौ तेरी—१-२५१ ।

ऐचति—क्रि. स. [हि. ऐचना] खींचती है । उ.—अपनी रुचि जित ही जित ऐचति इंद्रिय-कर्म-गटी । हौं तितही उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी—१-९८ ।

ऐचना—क्रि. स. [हि. खींचना, पू. हि. हींचना] खींचना, तानना ।

ऐचि—क्रि. स. [हि. खींचना, ऐचना] उखाड़ कर, खींचकर । उ.—(क) नीरहू तै न्यारौ कीनौ, चक्र नक्र-सीस छीनौ, देवकी के प्यारे लाल ऐचि लाए थल मै—८-५ । (ख) नीलावर पट ऐचि लियो हरि मनु बादर ते चोद उतारथौ—४०७ । (ग) गहि पटकि पुहुमि पर नेक नहिं मटकियो दंत मनु मृनाल से ऐचि लीन्है—२५९६ ।

ऐछना—क्रि. स. [सं. उच्छन्न = चुनना] (१) साफ करना, झाड़ना । (२) बाल में कंधी करना ।

एठ—संज्ञा पुं. [हिं. ऐठन] (१) अकड़, ठसक । (२) गर्व, घमंड । (३) द्वेष, विरोध ।

ऐठति—क्रि. अ. [हि. ऐठना] टर्राती हैं, सीधी तरह बात नहीं करती । उ. अखियन तब ते बैर घरथौ । । तब ही ते उन हमही भुलाई गयी उतही को धाई । अब तो तरकि तरकि ऐठति हैं लेनी लेति बनाई ।

ऐठन—संज्ञा स्त्री. [सं. आवेष्टन] (१) घुमाव, लपेट, बल । (२) तनाव, खिंचाव ।

ऐठना—क्रि. स. [हि. ऐठन] (१) बटना, घुमाव या बल देना । (२) धोखा देकर ले लेना ।

क्रि. अ.—(१) बल खाना, खिंचना । (२, अकं-

ड़ना । (३) घमण्ड करना, इतराना । (४) टर्राना ।

ऐंठि—क्रि. स. [हि. ऐंठना] बल या घुमाव देकर, बटकर ।

उ.—भुजा ऐंठि रज-अंग चढ़ायो—२६०६ ।

ऐंठी—क्रि. अ. [हि. ऐंठना] तन गयी, खिंची, अकड़ी ।

उ.—चतुराई कहाँ गई बुद्धि कैसी भई चूक समुझे बिना भौह ऐंठी—१८७१ ।

वि.—जिसने मान किया हो, जो अप्रसन्न हो ।

ऐंठे—वि. [हि. ऐंठना] अभिमानी, गर्व भरे । उ.—बाँह कर बाज-बाग दाहन हैं बैठे । हाँकत हरि हाँक देत गरजत ज्यौ ऐंठे—१-२३ ।

ऐंठ्यो—क्रि. अ. [हि. ऐंठना] घमण्ड किया, अकड़ दिखायी ।

उ.—कुबलिया मल्ल मुष्टिक चानूर सो होउ तुम सजग कहि सबन ऐंठ्यो—२६६३ ।

ऐंड़—संज्ञा पुं. [हि. ऐंठ] ठसक, गर्व, शान ।

ऐंड़त—क्रि. स. [हि. ऐंड़ना] अँगड़ाई लेते हैं । उ.—ऐंड़त अंग जम्हात बदन भरि कहत सबै यह बानी—१८५४ ।

ऐंड़ना—क्रि. अ. [हि. ऐंठना] (१) बल खाना । (२) अँगड़ाई लेना । (३) घमंड दिखाना ।

ऐंड़ात—क्रि. अ. [हि. ऐंड़ना] (१) अँगड़ाई लेते हैं, बदन तोड़ते हैं । उ.—आलस हैं भरे नैन बैन अट-पटात जात ऐंड़ात जम्हात जात अंग मोरि बहियाँ भेलि—१५८२ । (२) इठलाते हैं ।

ऐंड़ाना—क्रि. अ. [हि. ऐंड़ना] (१) अँगड़ाई लेना । (२) ठसक दिखाना ।

ऐंड़ानी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. ऐंड़ाना] अँगड़ाई ली । उ.—बाँह उँचाइ जोरि जमुहानी ऐंड़ानी कमनीय कामिनी—२११७ ।

ऐंड़ावत—क्रि. अ. [हि. ऐंड़ाना] अँगड़ाई लेते हैं । उ.—(क) खेलत तुम निसि अधिक गई, सुत नैननि नीद भँगाई । बदन जँभात, अंग ऐंड़ावत, जननि पलोटाहि पाई—१०-२४२ । (ख) कबहुँक बाँह जोरि ऐंड़ावत बहुत जम्हात खरे—१६७४ ।

ऐड़ी—क्रि. अ. [हि. ऐंड़ना] घमण्ड करके, इठलाकर । उ.—जिनसों कृपा करी नँदनंदन सो काहे न ऐड़ी डोलै—३०६१ ।

ऐंड़ो, ऐंड़ौ—क्रि.अ. [हि. ऐठना, ऐडना] इतराकर, घमण्ड करके । उ.—धन-जोबन-मद ऐंड़ौ ऐंड़ौ, ताकत नारि पराई । लालच-लुब्ध स्वान-जूठनि ज्यौ, सोऊ हाथ न आई—१-३२८ ।

मुहा.—ऐंड़ो डोलै-इतराता फिरता है, अकड़ दिखाता घूमता है । उ.—जिन पर कृपा करी नंदनंदन सो ऐंड़ो काहे नहि डोलै—३०९१ ।

ऐ—संज्ञा—पुं. [सं.] शिव ।

अव्य. [सं.अयि या हि. हे] सम्बोधन-सूचक अव्यय ।

ऐक्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक होने का भाव । (२) एका, मेला ।

ऐगुन—संज्ञा पुं [सं. अवगुण] दोष, बुराई ।

ऐन—संज्ञा पुं. [सं. अयन] (१) गति, चाल । (२) मार्ग, राह । उ.—परम अनाथ, विवेक नैन बिनु, निगम-ऐन क्यों पावै ? पग-पग परत कर्म-तम-कूपहि, को करि कृपा बचावै—१-४८ । (३) स्थान । उ.—सोभा सिंधु समाइ कहाँ लौ हृदय साँकरे ऐन—२७६५ । (४) अंश । उ.—गग-तरंग बिलोकत नैन । '...। त्रिभुवन हार सिगार भगवती, सलिल चराचर जाके ऐन—९-१२ । (५) निधि, राशि, भंडार । उ.—(क) निरखत अंग अधिक रुचि उपजी नख-सिख सुन्दरता कौ ऐन—७४२ । (ख) हौ जल गई जमुना लेन । मदन रिस के आदि ते मिल मिली गुनगन ऐन—सा. ६६ । (६) समय, काल । उ.—उर बाँध्यौ तन पुलकि पसीज्यौ, बिसरि गए मुख-बैन । ठाढ़ी ही जैसेँ तैसेँ झुकि, परी धरनि तिहि ऐन—७४६ ।

ऐनु—संज्ञा पुं. [सं. अयन, हि. ऐन] (१) मार्ग, राह । उ.—त्रिविध पवन जहँ बहत निसादिन सुभग-कुंज-घर-ऐनु । सूर स्याम निज धाम बिसारत, आवत यह सुख लैनु—४४८ । (२) आश्रम, भवन । उ.—इहाँ रहहु जहँ जूठनि पावहु, ब्रजवासिनि कै ऐनु । सूरदास ह्यो की सरवरि नहि, कल्पवृच्छ, सुर-धैनु—४९१ । (३) अंश । उ.—आतपत्र मयूर चद्रिका लसति हैरवि ऐनु—२७५५ । (४) भाग, प्राप्य वस्तु । उ.—रह न कति सुरली मधु पीवत चाहत अपनो ऐनु—२३५५ ।

ऐनोखी—वि. [हि. अनोखी] अनोखी, विचित्र । उ.—लीन्हे

फिरति रूप त्रिभुवन को ऐनोखी बैनिजारिनि—१०४० ।
ऐपन—संज्ञा वि. [सं. लेपन] (१) चावल और हल्दी से बना एक मांगलिक द्रव्य जिसका छपा पूजा के अवसर पर दीवार, कलश आदि पर लगाते हैं । (२) सुनहरी कांति । उ.—ऐपन की सी पूतरी (सब) सखियनि कियौ सिगार—१०-४० ।

ऐबौ—क्रि. अ. [हि. आना] आना, आवेंगे । उ.—अंकम भरि भरि लेत सूर-प्रभु, काल्हि न इहि पथ ऐबौ—७७६ ।

संज्ञा पुं. [हि. आना] आना, आने की क्रिया । उ.—(क) बनत नही जमुना को ऐबौ । सुन्दर स्याम घाट पर ठाढ़े, कहौ कौन विधि जैबो—७७६ । (ख) सूरदास अब सोई करिषु बहुरि गोकुलहि ऐबो—३३७२ ।

ऐरापति—संज्ञा पुं. [सं. ऐरावत] ऐरावत हाथी । उ.—सुरगन सहित इंद्र ब्रज आवत । धवल बरन ऐरापति देख्यो उतरि गगन तै धरनि धँसावत ।

ऐरावत—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र का हाथी जो पूर्व दिशा का दिग्गज है ।

ऐल—संज्ञा पुं. [सं.] पुरुषा जो इला का पुत्र था ।

संज्ञा पुं. [हि. अहिला] (१) बाढ़ । (२) अधिकता । (३) शोरगुल, खलबली । (४) समूह ।

संज्ञा पुं [देश] एक कँटीली लता जिसकी पत्तियाँ लगभग एक फीट लंबी होती हैं ।

ऐलि—संज्ञा पुं. [देश, ऐल] एक कँटीली लता । उ.—फूले बेल निवारी फूली ऐलि फूले मरुवी मोगरो सेवती फूल बेल सेवती संतन हित ही फूल डोल—२४०५ ।

ऐश्वर्य—संज्ञा पु. [सं.] (१) धन-संपत्ति । (२) अधिकार, प्रभुत्व ।

ऐसनि—वि. [सं. ईदश, हि. ऐसा] ऐसे-ऐसे । उ.—तृना-वर्त से दूत पठाए । ता पाछै कामासुर धाए । बकी पठाइ दई पहिलैहीं । ऐसनि कौ बलवै सब लैहीं—५२१ ।

ऐसा—वि. [सं. ईदश] इस प्रकार का ।

ऐसिये—वि. सवि. [सं. ईदश, हि. ऐसा] ऐसाही, ऐसी । उ.—(क) ब्रह्मा कह्यौ, ऐसिये होइ—१७-२ । (ख) लागे लैन नैन जल भरि भरि तब मै कानि न तोरी । सूरदास प्रभु देत दिनहि दिन ऐसिये लरिकसलोरी—१०-२८६ ।

सूर हमै मारग जनि रोकहु घर तैं लीजै ओग ।

संज्ञा स्त्री. [हि. ओक] गोद ।

ओघ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह, ढेर । (२) बहाव, धारा । (३) संतोष, तुष्टि ।

ओछत - क्रि. स. [हि. ओछना] बालों में कंधी करता है ।

ओछना—क्रि. स. [हिं. ऊँछना] बाल सँवारना, कंधी करना ।

ओछनि—वि. [हिं. ओछा + नि (प्रत्य.)] तुच्छ व्यक्ति, क्षुद्र मनुष्य, खोटे । उ.—ऐसे जनम-करम के ओछे ओछनि हूँ व्यौहारत—१-१२ ।

ओछा—वि. [सं. तुच्छ, प्रा. उच्छ] (१) क्षुद्र, नीच, खोटा । (२) छिछोरा, कम गहरा । (३) हल्का ।

ओछाई—संज्ञा स्त्री. [हि. ओछा] नीचता, छिछोरापन, क्षुद्रता । उ.—हमहि ओछाई भई जवहि तुमको प्रतिपाले । तुम पूरे सब भौंति मातु पितु संकट घाले —११३७ ।

ओछी—वि. स्त्री. [हिं. ओछा] क्षुद्र, तुच्छ, बुरी । उ.—ओछी बुद्धि जसोदा कीन्ही—३९१ ।

ओछे—वि. [हि. ओछा] जो गंभीर या उच्चाशय न हो, तुच्छ, क्षुद्र, छिछोरा, बुरा, खोटा । उ.—इन बातन कहूँ होति बड़ाई । डरत, खात देत नहि काहू ओछे घर निधि आई ।

ओज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तेज, प्रताप । (२) उजाला, प्रकाश । (३) काव्य का एक गुण जिससे सुननेवाले के चित्त में उत्साह उत्पन्न होता है ।

ओजना—क्रि. स. [सं. अवसंधन, प्रा. ओरुज्जन, हि. ओभक्त] (भार) ऊपर लेना, सहन करना ।

ओजस्विता—संज्ञा स्त्री. [सं.] तेज, कांति, प्रभाव ।

ओजस्वी—वि. [सं. ओजस्विन्] तेजयुक्त, प्रतापी, ओजपूर्ण ।

ओभ, ओभर—संज्ञा पुं. [सं. उदर, हि. ओभर] (१) पेट । (२) आँत ।

ओम्हा—संज्ञा पुं. [सं. उपाध्याय, प्रा. उवज्भाग्रो, उवज्भाय] (१) ब्राह्मणों की एक जाति । (२) भूत-प्रेत भाडनेवाला ।

ओट—संज्ञा स्त्री. [सं. उट = घासफूस] (१) रोक, आड़, अंतर, व्यवधान, ओझल । उ.—(क) ना हरि-हित, ना तू हित, इनमें एकौ तौ न भई । ज्यौ मधु माखी सँचति निरन्तर, बन की ओट लई—१-५० । (ख) बसन ओट करि कोट बिसंभर, परन न दीन्हौ भौंको —१-११३ । (ग) ममता-घटा मोह की बूँदै, सरिता मैन अपारौ । बूझत कतहुँ थाह नहि पावत, गुरुजन ओट अधारौ—१-२०६ । (घ) पलक भरे की ओट न सहती अब लागे दिन जान—२७४७ । (ङ) सगुन सुमेर प्रगट देखियत तुम तून की ओट दुरावत—३११५ । (च) ललना लै लै उछंग अधिक लोभ लागै । निरखति निदति निमेष करत ओट आगै—१०-६० । (छ) सूरदास प्रभु दुरत दुराये डुँगरनि ओट मुमेरु—४५८ । (२) शरण, रक्षा । उ.—(क) बड़ी है राम नाम की ओट । सरन गये प्रभु काढि देत नहि करत कृपा कै कोट—१-२३२ । (ख) भागी जिय अपमान जानि जनु सकुचाने ओट लई—१७९१ ।

ओटना—क्रि. स. [सं. आवर्तन, पा. आवट्ठन] (१) कपास के बिनौले अलग करना । (२) अपना ही बात बार बार कहना । (२) स्वयं (आपत्ति, बात आदि) सहन करना ।

ओड़न—संज्ञा पुं. [हि ओड़ना] (१) बार रोकने की वस्तु । (२) ढाल ।

ओड़ना—क्रि. स. [हि. ओट] (१) रोकना, आड़ करना (२) सहन करना, झेलना । (३) फेलाना, पसारना । (४) धारण करना, पहनना ।

ओड़हु—क्रि. स. [हि. ओड़ना] फैलाओ, पसारो । उ.—लेहु मातु, सद्दिदानी मुद्रिका, दई प्रीति करि नाथ । सावधान है सोक निवारहु, ओड़हु दच्छिन हाथ—६-८३ ।

ओड़ि—क्रि. स. [हि. ओड़ना] (अपने) ऊपर ले, स्वीकार कर, भागी बन जा, सहन कर । उ.—बोल्हो नहीं, रह्यौ दुरि बानर, द्रुम मै देहि छपाइ । कै अपराध ओड़ि तू मेरौ, कै तू देहि दिखाइ—६-८३ ।

ओड़िये—क्रि. स. [हि. ओड़ना] आड़ करो, रोको, सहो । उ.—ओड़िये नंदनंद जू के चलत ही दगवान । राखिये दग मद्ध दीजै अनत नाही जान—सा. १०७ ।

ओढ़ें—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] रोकता है, सहता है।

उ.—नृप भूषण कपि पितु गज पहिलो आस बचन की छोड़ै। तिथि नछत्र के हेतु सदाई महाविपति तन ओढ़ें—सा. ४३।

ओढ़—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] अपने ऊपर ले, भागी बने, सहन करे। उ.—कै अपराध ओढ़ (ओढ़ि) अब मेरौ, कै तू देहि दिखाइ—१-८३।

ओढ़त—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] ओढ़ता है, (वस्त्र से शरीर) ढकता है। उ.—पीताबर यह सिर तै ओढ़त, अंचल दै सुसुवात—१०-३३८।

ओढ़न—संज्ञा स्त्री. [हि. ओढ़ना] ओढ़ने की क्रिया। उ.—डासन कौंस कामरी ओढ़न बैठन गोप सभा की—२२७५।

ओढ़ना—क्रि. स. [सं. उपवेष्टन, प्रा. ओवेड्ढन] (१) किसी वस्त्र से ढकना (२) अपने सिर लेना, भागी बनना। संज्ञा पुं.—ओढ़ने का कपड़ा।

ओढ़नि, ओढ़नी—संज्ञा स्त्री. [हि. ओढ़ना] स्त्रियों के ओढ़ने का वस्त्र, उपरैनी, चादर, फरिया। उ.—(क) पीतांबर काकै घर बिसरथौ, लाल ढिगनि की सारी आनी। ओढ़नि आनि दिखाई मोकौ, तरुनि नि की सिखई बुधि ठानी—६६५। (ख) सूरदास जसुमति सुत सौ कहै, पीत ओढ़नी कहाँ गँवाई—६६१।

ओढ़र—संज्ञा पुं. [हि. ओढ़ना] बहाना, मिस।

ओढ़ावा—क्रि. स. [हि. ओढ़ना, ओढ़ाना] ढकना, आच्छादित करना।

ओढ़िए—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] देह ढकिए।

मुहा.—ओढ़िये पीठ—(अवसर और स्थिति के अनुकूल) काम कीजिए। उ.—सूरदास के प्रिय प्यारी आपुहीं जाइ मनाइ लीजै जैसी बयारि बहै तैसी ओढ़िए जु पीठि—२०७५।

ओढ़ें—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] वस्त्र से) शरीर ढके, पहने हुए। उ.—पियरी पिछौरी भीनी, और उपमा न भीनी, बालक दामिनि मानौ ओढ़े बारौ बारि-धर—१०-१५१।

ओढ़ें—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] देह ढके।

मुहा.—ओढ़ें कि बिछावै—क्या करें, किस काम

में लावें। उ.—दुस्सह बचन हमें नहिं भावें। जोग कथा ओढ़ें कि बिछावें।

ओढ़ौनी—संज्ञा स्त्री. [हि. ओढ़ना] ओढ़ने की चादर, ओढ़नी।

ओत—संज्ञा स्त्री. [सं. अवधिः] (१) आराम, चैन। (२) आलस्य (३) मितव्ययता।

संज्ञा स्त्री. [हि. आवत] प्राप्ति, लाभ।

संज्ञा पुं. [सं.] ताने का सूत।

वि.—डुना हुआ, गुथा हुआ।

ओत-ओत—वि. [सं.] गुथा हुआ, बहुत मिला-जुला।

ओता, ओतो, ओत्ता—वि. [हि. उतना] उतना।

ओद—वि. [सं. उद = जल] (१) गीला, तर, नम। (२) मग्न, निमग्न, लीन। उ.—आनंदवद, सबल सुख-दायक, निसि दिन रहत, केलि-रस-ओद—१०-१६६। संज्ञा पुं.—नमी तरी।

ओदन—संज्ञा पुं. [सं.] पका हुआ चावल, भात। उ.—(क) दधि ओदन दोना भरि दैहौं, अरु भाइन मैं थपिहौं—११६४। (ख) ओदन भोजन दै दधि काँवरि, भूख लगे तै खैहौं—४१२। (ग) व्यंजन बर कर बर पर राखत, ओदन मधुर दह्यौ—४८६।

ओदर—संज्ञा पुं. [सं. उदर] पेट।

ओदरना—क्रि. अ. [हि. ओदारना] (१) फटना। (२) गिर पडना, नष्ट होना।

ओदा—वि. [सं. उद = जल] गीला, नम।

ओदारना—क्रि. स. [सं. अवदारण] (१) फाड़ना। (२) गिराना, ढाना, नष्ट करना।

ओदे—वि. [सं. उद् = जल] गीले, नम, तर। उ.—उत्तम विधि सौ मुख पखरायौ, ओदे दसन अँगोछि—६०६।

ओधना—क्रि. अ. [सं. आबंधन] (१) फँसना, उलझना। (२) काम में व्यस्त होना।

ओधें—संज्ञा पुं. [सं. उपाध्याय] स्वामी, अधिकारी।

ओनंत—वि. [सं. अनुन्नत] झुका हुआ, नत।

ओनवना—क्रि. अ. [हि. उनवना] (१) झुकना, नत होना। (२) धिर आना, उमडना।

ओनाना—क्रि. स. [हि. उनाना] कान लगाकर नसुनाना।

ओप—संज्ञा. पुं. [हि. ओपना] (१) चमक, दीप्ति, शोभा । उ.—(क) सूरदास प्रभु प्रेम हेम ज्यों अधिक ओप ओपी—३४८७ । (ख) राधे तैं बहु लोभ करथौ । लावन रथ ता पति आभूषन आनन-ओप हरथौ—सा. उ.—१४ । (२) गौरव, सम्मान । उ.—रघुकुल-कुमुद-चंद चितामनि प्रगटे भूतल महियाँ । आए ओप देन रघुकुल कौं, आनँदनिधि सब कहियाँ—६-१९ ।

ओपना—क्रि. स. [हि. ओप] साफ करना, चमकाना, स्वच्छ करना ।

क्रि. अ.—भलकना, चमकना ।

ओगनिवारी—वि. [हिं. ओप] चमकनेवाली ।

ओपनी—संज्ञा स्त्री. [हि. ओप] पत्थर या ईंट का टुकड़ा जिससे कोई वस्तु माँजी या (घिसकर) साफ की जाय ।

ओपो—क्रि. अ. स्त्री. [हि. ओपना] भलकने लगी, चमकी । उ.—जेती हती हरि के अवगुन की ते सबई तोपी । सूरदास प्रभु प्रेम हेम ज्यों अधिक ओप ओपी—३४८७ ।

ओबरी—संज्ञा स्त्री. [सं. विवर] छोटा कमरा, कोठरी । उ.—बिलग मति मानौ ऊधो प्यारे । वह मथुरा काजर की ओबरी (उबरी) जे आवैं ते कारे —३१७५ ।

ओभा—संज्ञा स्त्री. [हि. आभा] कांति, चमक । उ.—देखो री भलक कुंडल की ओभा—२६५२ ।

ओर—संज्ञा पुं. [सं. अवार = किनारा] (१) अंत, सीमा, सिरा, छोर, किनारा । उ.—सोभा-सिधु अंग-अंगनि प्रति, बरनत नाहिंन ओर री—१०-१३९ ।

मुहा.—ओर (निवाह्यौ) निवाहे—अंत तक कर्तव्य का पालन किया । उ.—(क) और पतित आश्रित न आँखि-तर देखत अपनौ साज । तीनों पन भरि ओर निवाह्यौ तऊ न आयौ बाज—१-६६ । (ख) तीन्यौ पन मैं ओर निवाहे, इहै स्वर्ग कौं काछै । सूरदास कौं यहै बड़ो दुख परत सबनि के पाछै—१-१३६ । ओर आयो—अंत निकट आ गया ।

(२) आदि, आरम्भ । उ.—हरि जू की आरती बनी । । नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर-नर-असुर अनी । काल-कर्म गुन-ओर-अंत नहि, प्रभु इच्छा रचनी—२-२८ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. अवार = किनारा] (१) दिशा, तरफ । (२) पक्ष । उ.—यादव बीर बराह बटाई इक हलधर इक आपै ओर—१० उ.—६ ।

ओरती—संज्ञा स्त्री. [हि. ओलती] (१) ढलुआ छप्पर के किनारे का वह भाग जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है । (२) वह भाग जहाँ यह पानी गिरे ।

ओरमना—क्रि. अ. [सं. अवलंबन] लटकना ।

ओरहना—संज्ञा पुं. [हिं. उरहना] उलाहना ।

ओरा—संज्ञा पुं. [हि. ओला] ओला, पत्थर ।

ओराना—क्रि. अ. [हि. ओर = अंत + आना] चुक जाना, समाप्त होना ।

ओराहना—संज्ञा पुं. [हि. उराहना] उलाहना ।

ओरी—संज्ञा स्त्री. [हि. ओलती] छप्पर का वह भाग जहाँ से पानी नीचे गिरे ।

अव्य. [हि. ओ + री] स्त्रियों के लिए संबोधन ।

सर्व. [हिं. ओर] और कोई, दूसरी, अन्य ।

उ.—यह उपदेश सुनहि ते ओरी—३३४५ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ओर] (१) ओर, दिशा, तरफ ।

उ.—मनहुँ प्रचंड पवनसँ पंकज गगन धूरि सोभित चहुँ ओरी—२४०४ (२) पक्ष ।

ओरे—संज्ञा पुं. [हिं. ओला, ओरा] ओला । उ.—अपराधी मतिहीन नाथ हौ, चूक परी निज भोरे । हम कृत दोष छमौ करुनामय, ज्यौ भू परसत ओरे —४८८ ।

ओरै—संज्ञा पुं. [हि. ओर] अंत, सिरा, छोर, किनारा । उ.—कागद धरनि, करै द्रुम लेखनि, जल-सायर मसि घोरै । लिखै गनेस जनम भरि मम कृत, तऊ दौष नहि ओरै—१-१२५ ।

ओलंबा, ओलंभा—संज्ञा पुं. [सं. उपालंब] उलाहना ।

ओल—संज्ञा स्त्री. [सं. ओड़] (१) गोद । (२) आड, ओढ़ । (३) वह वस्तु या व्यक्ति जो कोई शर्त पूरी

न होने तक किसी दूसरे के पास रहे या रखा जाय ।
उ.—बने बिसाल अति लोचन लोल । चितै चितै
हरि चारु बिलोकनि मानौ मोंगत हैं मन ओल—
६३० । (४) शरण, रक्षा । (५) बहाना, मिस ।

वि. [हि. ओला] गीला, तर ।

ओलती—संज्ञा स्त्री. [हि. ओलमना] (१) छप्पर का
वह किनारा जहाँ से बरसा हुआ पानी नीचे गिरता
है । (२) वह स्थान जहाँ यह पानी गिरता है ।

ओलना—क्रि. स [हि. ओल = आड़] (१) परदा
करना, ओट या आड़ में करना । (२) सहन करना,
अपने ऊपर लेना ।

क्रि. स. [हि. हूल] घुसाना, चुभाना ।

ओलरन—क्रि. अ. [हि. ओल, ओलना] सोना, लेटना ।

ओलराना—क्रि. स. [हि. ओल, ओलना] सुझाना,
लिटाना ।

ओला—संज्ञा पुं. [सं. उपल] मेह के जमे हुए पत्थर
या गोले ।

संज्ञा पुं. [हि. ओल] (१) परदा, ओट । (२)
भेद, रहस्य ।

ओलिक—संज्ञा पुं. [हि. ओल = आड़] ओट, परदा ।

ओलियाना—क्रि. स. [हि. ओल, ओला] गोद में
भरना ।

क्रि. स. [हि. हूलना] घुसाना, प्रवेश कराना ।

ओली—संज्ञा स्त्री. [हि. ओल] (१) गोद । (२)
अंचल । (३) ओली ।

मुहा.—ओली ओड़ना—आँचल पसार कर
याचना करना ।

ओलै—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रोड़, हि. ओल] (१) गोद ।
(२) शरण, आश्रय । उ.—जाकै मीत नंदनंदन से,
ढकि लइ पीत पटोलै । सूरदास ताकौ डर काकौ,
हरि गिरिधर के ओलै १-२५६ । (३) आड़, ओट ।
(४) जमानत-रूप में रखी हुई वस्तु या व्यक्ति ।

ओल्यौ—संज्ञा पुं. [हि. ओल] बहाना, मिस ।

ओषधि, ओपधी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वनस्पति
या जड़ी-बूटी जो दवा के काम की हो । (२) फलने
के बाद सूखे हुए पौधे । (३) दवा ।

ओषधीश—संज्ञा पुं. [सं. ओषधि + ईश] (१) चंद्रमा ।
(२) कपूर ।

ओष्ठ—संज्ञा पुं. [सं.] होंठ, ओठ ।

ओष्ठ्य—वि. [सं.] (१) ओठ का । (२) जिन (अक्षरी)
का उच्चारण ओठ से हो । (उ ऊ प फ ब भ म
ओष्ठ्य वर्ण हैं ।)

ओस—संज्ञा स्त्री. [स. अवश्याय, पा. उस्साव] हवा
से मिली हुई भाप जो उससे अलग होकर गिर
जाती है ।

मुहा.—ओस का मोती—शीघ्र नष्ट हो जानेवाला ।

ओसारा—संज्ञा पुं. [स. उपशला] (१) दालान ।
(२) छाजन, सायबान ।

ओह—अव्य. [अनु.] दुख या आश्चर्यसूचक अव्यय ।

ओहट—संज्ञा स्त्री. [हि. ओट] ओट, ओभल ।

ओहार—संज्ञा पुं. [सं. अवधार] रथ या पालकी का
परदा ।

ओहि—सर्व. [हि. वह] उसे । उ.—ठाढे बदत बात
सब हलधर, माखन प्यारौ तोहि । ब्रज प्यारौ, जाकौ
मोहि गारौ, छोरत काहे न ओहि—३७५ ।

औ

औ—देवनागरी वर्णमाला का ग्यारहवाँ स्वर जो अ और
ओ के संयोग से बना है । इसका उच्चारण कंठ और
ओष्ठ से होता है ।

औंगा—वि. [हि. औगी] जो बोल न सके, गूँगा ।

औगी—संज्ञा स्त्री. [सं. अवाड्] चुप्पी, गूँगापन ।

औघना—क्रि. अ. [सं. अवाड्] अलसाना, झपकी
लेना ।

औघाई—संज्ञा स्त्री. [हि. औघना] झपकी, उँघाई,
आलस्य ।

औघाना—क्रि. अ. [हि. औघना] ऊँघना, झपकी
लेना ।

औछि—क्रि. स. [हि. पोछना, ओछना] पोंछकर, झाड़-
पोंछकर, हाथ फेरकर । उ.—दोउ भैया कछु करौ
कलेऊ, लई ब्लाड कर औछि—६०९ ।

औजना—क्रि. अ. [सं. आवेजन=व्याकुल होना]
ऊबना, अकुलाना, घबराना ।

औठ संज्ञा स्त्री. [सं. ओष्ठ, प्रा. ओट्ठ] उठा हुआ किनारा, बारी ।

औड़—संज्ञा पुं. [सं. कुंड=गड्ढा] गड्ढा खोदनेवाला, बेलदार ।

औड़ा—वि. [सं. कुंड] गहरा, गम्भीर ।

वि. [हि. औड़ना, उमड़ना] उमड़ता हुआ, चढ़ा या बढ़ा हुआ ।

औड़े—वि. [हि. औड़ा] गहरा, गम्भीर ।

वि. [हि. औड़ना, उमड़ना] बढ़ा हुआ, चढ़ा हुआ । उ.—इन्द्री-स्वाद-त्रिवस निसि बासर, आपु अपुनपौ हारौ । जल औड़े में चहुँ दिसि पैरयौ, पाउँ कुल्हारौ मारौ—१-१५२ ।

औड़ना—क्रि. अ. [सं. उन्माद या उद्विग्न] (१) उन्मत्त हो जाना । (२) घबराना, आकुल होना ।

औड़ाना—क्रि. अ. [सं. उद्वेलन] (१) उबना । (२) दम घुटने से घबराना ।

औधना—क्रि. अ. [हि. औधा] उलट जाना ।

क्रि. स.—उलटा कर देना ।

औधा—वि. [सं. अधोमुख] (१) उलटा, पेट के बल, पट । (२) जिस (पात्र) का मुँह नीचे हो । (३) नीचा ।

औधाता—क्रि. स. [हि. औधा] (१) उलटना, पलट देना । (२) (पात्र का) मुख नीचे करके (द्रव आदि) गिराना । (३) नीचे लटकाना ।

औ—अव्य. [सं. अपर, प्रा. अवर, हि. और] और ।

उ.—मन बच-कर्म और नहि जानत सुमिरत औ सुमिरावत—२-१७ ।

संज्ञा पुं. [सं.] अनंत, शेष ।

संज्ञा स्त्री.—पृथ्वी ।

औकन—संज्ञा स्त्री. [देश.] राशि, ढेर ।

औगत—संज्ञा स्त्री. [सं. अव + गति] दुर्तशा, दुर्गति ।

वि. [हि. अवगत] जाना हुआ, विदित ।

औगाहना—क्रि. अ. [सं. अवगाहना] (१) नहाना । (२)

घुसना, धँसना, प्रवेश करना । (३) प्रसन्न होना ।

क्रि. स.—(१) छानबीन करना । (२) गति उपपन्न

करना । (३) धारण करना । (४) सोचना-विचारना ।

औगाह्यौ—क्रि. अ. [सं. अवगाहन हि. अवगाहना] ग्रहण किया, अपनाना सीखा, छानबीन की ।

उ.—सब आसन रेचक अरु पूरक कुंभरु सीखे पाइ । बिनु गुरु निरुट सँदेसन कैसे यह औगाह्यौ जाइ—३१३४ ।

औगुन—संज्ञा पुं. [सं. अवगुण] (१) दोष, दूषण । (२) अपराध, बुराई, खोटाई ।

औगुनी—वि. [सं. अवगुणिन्] (१) निर्गुणी (२) दोषी ।

औघट—संज्ञा पुं.—कठिन या दुर्गम मार्ग ।

औघड़—संज्ञा पुं. [सं. अघोर = भयानक] (१) अघोरी, अघोरपंथी । उ.—औघड़-असत कुचीलनि सौ मिलि, माया-जल मे तरतौ—१-२०३ । (२) मनमौजी ।

वि.—अटपट, उलटा-पलटा ।

औघर—वि. [सं. अव + घट] (१) उलटा-पलटा, अंड बंड । (२) अनोखा, विचित्र । उ.—(क) बलि-हारी वा रूप की लेति सुघर औ औघर ताम्र दै चुम्बन आकर्षति प्रान । (ख) मोहन मुरली अधर धरी ।..... औघर तान बंधान सरस सुर अरु रस उमगि भरी ।

औचक—क्रि. वि. [सं. अव + चक = भ्रांति] अचानक, एकाएक, सहसा । उ.—(क) यह सुनतहि जसुमति रिस मानी । कहीं ~~औचक~~ मपानी । खेलत हैं औचक हरि आए । ~~औचक~~ पकरि बैठाए—१६१ । (ख) गढ़-राज रवि तनया कै तट, अंग लसति चन्दन की खोसी । औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिएरोरी—६२७ ।

औचट—क्रि. वि. [सं. अ = नहीं + हि. उचटना = हटना] सकट, कठिनता, संकरा । उ.—लग्यौ फिरत सुरभी ज्यौ सुत-संग, औचट गुनि गृह बन को—१-९ ।

क्रि. वि. (१) अचानक, अकस्मात् । (२) भूल से, अनचीते में ।

औचित—वि. [सं. अव = नहीं + चिन्ता] निश्चित ।

औचिती—संज्ञा स्त्री. [सं. औचित्य] उचित बात या रीति ।

औचित्य—संज्ञा पुं. [सं.] उपयुक्तता ।

औज—संज्ञा पुं. [सं. ओज] (१) तेज, बल । (२) प्रकाश ।

औजक—क्रि. वि. [हि. औचक] अचानक, सहसा ।

औजड़—वि. [सं. अव + जड़] उजड़, अनाड़ी ।

औझड़, औझर—क्रि.वि. [सं. अव + हि. झड़] लगा-
तार, निरंतर ।

औटन—संज्ञा स्त्री. [हि. औटना] उबाल, ताव ।

औटना—क्रि. स. [सं. आवर्तन, प्रा. आवटन] (१)
किसी द्रव को आग पर खौलाना या गाढ़ा करना ।
(२) घूमना, भटकना । (३) तप करना ।

औटाइ—क्रि. स. [हि. औटाना] औटा कर, खौला कर ।
उ.—रस लै लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई
—१-६३ ।

औटाए—क्रि. स. [हि. औटाना] औटाने पर, खौलाने
पर । उ.—फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तै खोई
न होई—१-६३ ।

औटाना—क्रि. स. [हि. औटना] आँच पर खौलाना
या गाढ़ा करना ।

औटि—क्रि. स. [हि. औटाना] औटाकर, खौला कर,
गर्म करके । उ.—(क) आछौ दूध औटि घौरी कौ,
लै आई रोहिनि महतारी—१०-२२७ । (ख) ग्वाल
सखा मबहीं पय अँचयौ । नीकैं औटि जसोदा रचयौ
—३९६ ।

औट्यौ—क्रि. स. भूत. [हि. औटाना] औटाया,
खौलाया । उ.—आछैं औट्यौ मेलि मिठाई, रुचि
करि अँचवत क्यौ न नन्हैया—१०-२२९ ।

वि.—औटा हुआ, खौला हुआ, पका हुआ ।

उ.—औटायौ दूध, सद्य दधि, मधु, रुचि सौ खाहु
लला रे—४२९ ।

औठपाय—संज्ञा पु. [सं. उत्पात] नटखटी, शरारत ।

औठर—वि. [सं. अव + हि. ठार या ढाल] (१) मन-
मौजी । (२) शीघ्र ही या थोड़े ही में प्रसन्न हो जाने
वाला ।

औतरना—क्रि. अ. [हि. अवतरना] अवतार लेना ।

औतरै—क्रि. अ. [सं. अवतार, हि. अवतरना] अवतार
ले, जन्म ग्रहण करे । उ.—याकीं कोखि औतरै जो
सुत, करै प्रान-परिहारा—१०-४ ।

औतार—संज्ञा पु. [सं. अवतार] शरीर ग्रहण करना,
जन्मना, सृष्टि, अवतार ।

औत्सुक्य—संज्ञा पु. [सं.] उत्सुकता, उत्कंठा ।

औथरा, औथरो—वि. [सं. अवस्थल] उथला, छिछला ।

औदकना—क्रि. अ. [हि. उदकना] (१) कूदना । (२)
चौकना ।

औदसा—संज्ञा स्त्री. [सं. अवदशा] बुरी दशा, दुख ।

औदार्य—संज्ञा पु. [सं.] उदार होने की क्रिया या भाव ।

औद्योगिक—वि. [सं.] उद्योग-धन्धों से संबंधित ।

औध—संज्ञा पु. [सं. अवध] अवध, कौशल देश ।

औध, औधि—संज्ञा स्त्री. [सं. अवधि] (१) समय,
अवसर, काल । उ.—कहँ लगि समुझाऊँ सूरज सुनि,
जाति मिलन की औधि टरी—८०६ । (२) निर्धारित
समय, मियाद । उ.—सिसिर बसन्त सरद गत सजनी
बीती औधि करी—२८१४ ।

औधारना—क्रि. स. [हि. अवधारना] ग्रहण करना,
धारण करना ।

औनि—संज्ञा स्त्री. [सं. अवनि] भूमि, पृथ्वी ।

औनिप—संज्ञा पु. [सं. अवनि + प] पृथ्वी का पालक,
राजा ।

औम—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह तिथि जिसकी हानि हो
गयी हो ।

और—अव्य. [सं. अपर, प्रा. अवसर] एक संयोजक शब्द;
दो शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों को जोड़नेवाला
शब्द । उ.—एहि थर बनी क्रीड़ा गज-मोचन और
अनंत कथा सुति गाई—१-६ ।

वि. (१) दूसरा, अन्य, भिन्न । उ.—हरि सौ
ठाकुर और न जन कौ—१-६ । (२) कुछ । उ.—
कानन सुनै आँखि नहि सूझै । कहै और और कछु
बूझै—४-१२ ।

मुहा.—भई और की और (औरै)—विशेष परि-
वर्तन हो गया, भारी उलट-फेर हो गया, कुछ का
कुछ हो गया । उ.—(क) कहत हे आगै जपिहैं राम ।
बीचहि भई और की औरै, परथौ काल सौं काम
—१-५७ । (ख) बीचहि भयी और की औरै, भयौ
शत्रु को भायौ—६-१४६ । (ग) हम सौ कहत और

की औरै इन बातनु मन भावहुगे—१६७८ । (घ)
अब ही और की और होत कछु लागै बारा—१०
उ.—८ । और की औरई (औरै)—कुछ का कुछ ।
उ.—(क) कहति और की औरई मैं तुमहि दुरैहौ
—२१०२ । (ख) तै अलि कहत और की औरै
सुतिमात की उर लीनी—३३८० ।

(३) अधिक, ज्यादा ।

औरस—वि. [सं.] जो संतान विवाहिता पत्नी से उत्पन्न
हो । उ.—मैं हूँ अपने औरस पूत बहुत दिननि मैं
पायौ—१०-३३६ ।

औरसना—क्रि. अ. [सं. अव = बुरा + रस] नष्ट होना,
उदासीन होना ।

औरासा—वि. पुं. [हि. औरसना] विचित्र, बेढंगा ।

औरासी—वि. [हि. औरसना] सष्ट, उदासीन ।

वि.—विचित्र, बेढंगा । उ.—बिसरो सूर बिरह
दुख अपनो अब चली चाल औरासी—२८७७ ।

औरेब—संज्ञा पुं. [सं. अव = विरुद्ध या उलटी + रेव
• = गति] (१) तिरछी चाल । (२) चाल भरी
बातें, छल-कपट की घात ।

औरै—वि. सवि. [हि. और] और को, दूसरे को ।
उ.—कृपन, सूम, नहि खाइ खवावै, खाइ मारि के
औरै—१ १८६ ।

औरौ—वि. [हि. और] (१) और भी, अन्य, अनेक ।
उ.—(क) जो प्रभु अजामील कौं दीन्हो, सो पाटौ
लिखि पाऊँ । तौ बिस्वास होइ मन मेरै, औरौ
पतित बुलाऊँ—१-१४६ । (ख) अबहिं निवछरौ
समय, सुचित है, हम तौ निधरक कीजे । औरौ आइ
निकसिहैं तातैं, आगै हैं सो लीजै—१-१६१ । (२)
अन्य, दूसरा । उ.—औरौ देडदाता कोउ आहि ।
हम सौ क्यों न बतावौ ताहि—६-४ ।

औलना—क्रि. अ. [हि. जलना] गरमी पडना, तप्त-
होना ।

औपध—संज्ञा स्त्री. [सं.] रोग दूर करने वस्तु, दवा ।
उ.—बिन जानै कोउ औपध खाइ । ताकौ रोग
सफल नसि जाइ—६-४ ।

औषधि, औपधी—संज्ञा स्त्री. [सं. औषध] दवा,
औषधि । उ.—तुम दरसन इक बार मनोहर, यह
औषधि इक सखी लखाई—७४८ ।

औसर—संज्ञा पुं. [सं. अवसर] समय, काल । उ.—
(क) हरि सौ मीत न देख्यौ कोई । विपति काल
सुमिरत तिहि औसर आनि तिरीछौ होई—१-१० ।
(ख) गए न प्रान सूरता औसर नंद जतन करि रहे
घनेरो—२५३२ ।

मुहा.—औसर हारथौ—मौका चूक गये । उ.—
औसर हारथौ रे तै हारथौ । मानुष-जनम पाइ नर
बौरे, हरि कौ भजन दिसारथौ—१-३३६ ।

औसान—संज्ञा [सं. अवसान] (१) अंत । (२) परि-
णाम । उ.—जेहि तन गोकुलनाथ भज्यौ । ऊँधो
हरि बिछुरत ते बिरहिनि सो तनु तबहि तज्यो ।
अब औसान घटत कहि कैसे उपजी मन परतीति ।

संज्ञा पुं.—सुध-बुध, धैर्य । उ.—सुरसरि-सुवन
रनभूमि आए । बान वर्षा लागे करन अति क्रोध
है पार्थ औसान (अवसान) तब सब भुलाए
—१-२७३ ।

औसाना—क्रि. स. [हि. औसना] फल पाल में रखकर
पकाना ।

औसि—क्रि. वि [सं. अवश्य] जरूर, अवश्य ।

औसेर—सं. स्त्री. [सं. अवसेर = बाधक, हि. अवसेर]
चिंता, व्यग्रता । उ.—गोपिन बैठि औसेर कीनो
—२४३२ (४)

औहत—संज्ञा स्त्री. [सं. अपघात, अवहन = कुचलना,
कूटना] दुर्गति, अपमृत्यु ।

औहाती—वि. स्त्री. [सं. अहिवाती] सोहागिन,
सौभाग्यवती ।

प्रथम खंड समाप्त ।

